शिवसागर मिश्र

प्रभात
प्रकाशन,
दिल्ली

प्रकाशक : प्रभात प्रकाशन, चावड़ी बाजार, दिल्ली-११०००६

संस्करण : १९८०
मूल्य : पच्चीस रुपये
मुद्रक : रूपक प्रिंटर्स, दिल्ली-११००३२

SALIB DHOTE LOG (novel) *by* Shiv Sagar Mishra Rs. 25.00

प्रकाशकीय

श्री शिवसागर मिश्र के नाम से प्रत्येक हिन्दी-प्रेमी परिचित है। यह उनका अप्रतिम उपन्यास है। इसका नायक एक ऐसा व्यक्ति है जो साधारण होते हुए भी महान है, प्रेमी होते हुए भी संन्यासी है, चाकर होते हुए भी स्वाभिमानी है और दुनिया में रहते हुए भी दुनिया से दूर है! यह एक व्यक्ति की ही नहीं, वरन बदलती हुई व्यवस्था की भी कहानी है—स्वतन्त्रता के बाद भारतीय ग्राम्य-जीवन के परिवर्तन, प्रत्यावर्तन और सामाजिक घात-प्रतिघात की कहानी।

स्वतन्त्रता का असर बेशक देहात पर भी पड़ा है। अभी तक समुद्र-मन्थन हो रहा है। फेन, बुद्बुद, विष, वारुणी—पहले यही सब निकलेंगे। 'सलीब ढोते लोग' में विष, वारुणी और फेन के साथ-साथ अखण्ड आस्था का प्रच्छन्न सन्देश भी है—संघर्ष, आसक्ति और परिस्थिति की प्रचण्ड लहरों में भी आशा-दीप प्रज्वलित रहता है—मानवोचित मूल्य और मर्यादा की प्रतिष्ठा होकर रहती है।

उपन्यास के पात्र साधारण, सजीव और दिलचस्प हैं; कथानक विद्युन्मय; घटनाएं सहज और सजी हुई; भाषा प्रवाहमय और शैली तादात्म्य-भाव स्थापित करने में समर्थ!

शिवसागर मिश्र ने भारतीय ग्राम्य-जीवन का वह दारुण चित्र प्रस्तुत किया है, जो यथार्थ होते हुए भी अनूठा और अज्ञात है। इसे जानना-समझना उतना ही आवश्यक है, जितना आवश्यक भोजन-पानी। कारण—देश की समृद्धि, प्रगति और विकास इन्हीं ग्राम-देवताओं पर निर्भर है।

यह उपन्यास 'नवभारत टाइम्स' में धारावाहिक रूप से—'दूब जनम आई' नाम से प्रकाशित हुआ था। पाठकों ने इसका अभूतपूर्व स्वागत किया। इसके सम्बन्ध में देश के विभिन्न भागों से आनेवाले पत्र लेखक की सफलता को सिद्ध करते हैं। उत्तर प्रदेश सरकार इसे पुरस्कृत कर चुकी है।

दो शब्द

परिवर्तन का परिणाम प्राय. कल्याणकारी ही होता है। स्वतन्त्रता के उपरान्त, देश में बडे-बड़े परिवर्तन हुए और हो रहे है।जमीदारी खत्म हो गई, लाल पगड़ी का भय जाता रहा, समता के भाव जाग्रत् हो उठे, अधिकार की चेतना मचलने लगी और कल-कारखाने, बाध, जलाशय आदि का निर्माण होने लगा।

किन्तु विरोधाभास देखिए—

आज, विकेन्द्रीकरण के युग में भी कुछ स्थान, कुछ व्यक्ति और कुछ विचार ही गुरुत्वाकर्पण का केन्द्र बनकर रह गए है।

लोग वे ही हैं, दृप्टिकोण ज्यों का त्यो है, संस्कार अपनी जिद पर अड़ा है। रंग बदल गया, ढग वही है। नीति बदल गई, रीति वही है।

प्रगति का रथ अभी सामने से गुजर ही रहा है। धूल के बगूले उठ रहे हैं। कुछ दिखाई नही देता। फिर कैसे कहा जाए कि रथ परम है या उत्तम। कैसे देखा जाए कि रथ-चक्र, ईपादंड, अक्ष, युग, कूबर आदि की लकड़ी गांठरहित है या पक्की, ठोस और गाभे की।

तथ्य के नाम पर धूल, गुबार, बगूले—हमारे-आपके सामने हैं। ढंग, रीति, सस्कार और दृप्टिकोण से सत्य परिलक्षित हो रहा है।

किन्तु, निराश होने की जरूरत नही है। विकासशील जीवन संघर्प, उत्पीडन और उत्थान-पतन में ही अपनी सार्थकता सिद्ध करता है।

प्रस्तुत पुस्तक में, उपर्युक्त विचारों को गाव की पृप्ठभूमि में स्वरूप प्रदान करने की धृप्टता मैंने की है। गांव का आर्थिक ढाचा छिन्न-भिन्न हो चुका है। वहां की पुरानी सामाजिक मान्यताए 'अण्डरग्राउण्ड' होकर अत्यधिक घातक बन उठी है। किन्तु हम शहर वाले अपनी रंगीनी में डूबे हुए, विकासशील, सरल और स्वच्छ गांव का काल्पनिक स्वरूप देख रहे हैं। पूरी पुस्तक पढ़कर कदाचित् आप भी मुझसे सहमत हो जाए कि वास्तविकता कुछ और है, जरूरत कुछ और !

—शिवसागर मिश्र

प्रमुख पात्र

जगनारायण (जग्गू) : सुलझे हुए मस्तिष्क का, निर्भय, उदार और संवेदनशील आदमी। दुनिया और दुनियवी बातों से अलग-थलग रहकर, तीस-बत्तीस वर्षों तक निहंग का जीवन-यापन करता है। बाप से, विरासत में, नाममात्र की जमीन और रेलवे गुमटी पर चाकरी मिलती है। रेल की पटरी जैसी नीरस और अछोर जिन्दगी जीता चला जाता है कि प्रौढ़ावस्था के द्वार तक पहुंचते ही, अचानक, भयंकर भूचाल जैसी घटनाएं घटित होकर उसके अस्तित्व को झकझोर डालती हैं; प्रेम और प्रतिशोध की ज्वाला प्रज्वलित हो उठती है, जीवन का क्रम बदल जाता है, दुनिया किंचित् रंगीन हो उठती है; कुरूपता और कर्कशता मुखरित हो उठती है; किन्तु, जग्गू जिस ईमानदारी के धरातल पर खड़ा है, वहां विफलताओं के झाड़-झंखाड़ उगे हुए हैं अतएव···

बिसेसर सिंह : क्रूरता के अवतार हैं, किन्तु मुखमंडल पर करुणा का सागर उमड़ता होता है। उनकी नसों में रक्त की जगह गरल प्रवाहित होता है; किन्तु जुबान में अमृत की धार बरसती होती है। जमींदारी छिन जाने से, चोट खाए सांप की तरह ऐंठ उठते हैं, किन्तु उनकी ऐंठन की मोहकता देखनेवालों के मन में उदारता का भ्रम उत्पन्न कर देती है। बिसेसर सिंह समर्थ है, सजग हैं, सफल हैं, किन्तु पतित हैं। रुपये की भूख उन्हें रेल के डिब्बे काटने की प्रेरणा देती है और तब···

राघव : देहाती नेता है, जो हमेशा देश के उद्धार की चिन्ता अपने दुर्बल कन्धों पर उठाए फिरता है। अनपढ़ है,

किन्तु उसका चलना-फिरना, उठना-बैठना, सोचना-समझना—सब कुछ भाषण-शैली में ही सम्पन्न होता है। अपनी आदतों के चलते वह बिसेसर सिंह से जा-टकराता है। नतीजा यह होता है कि बेचारा···

मुनिदेव — जग्गू का बचपन का साथी; व्यवहारकुशल किन्तु गरीब दर्जी। दु:ख को दिनचर्या का अभिन्न अंग समझकर अपने काम में डूबा रहता है; समय को पहचानता है; दर्द महसूस करता है, किन्तु असमर्थ होने के कारण···

रामपाल . पढ़ा-लिखा ईमानदार अफसर। लगन के साथ काम शुरू करता है; आरोप-प्रत्यारोप के जाल में फंसकर भी धीरज बनाए रखता है; किन्तु जिस 'भारत' में द्रोणाचार्य जैसे शत्रु हों, वहां युधिष्ठिर का ईमान भी डोल जाता है। बिसेसर सिंह के जाल में पड़कर, रामपाल की ईमानदारी और उत्साह···

अनुराधा — विधवा; त्याग, प्रेम और धीरज की साक्षात् प्रतिमा; संसार-सागर की उद्दाम लहरों पर भटकने वाली परवश तिनका। बेचारी, प्रेम की धारा में सहज वह जाती है। जग्गू को वह बचपन से देखती आई है—जन्म-जन्मान्तर से देखती आई है, किन्तु उंगलियों और भवों के जंगल से गुजरने वाली विधवा को सिर झुकाकर ही चलना होता है, अन्यथा···

शारदा : पढ़ी-लिखी, सजग-चंचल होकर भी भोली-भाली तरुणी। संसार को भी सरल-स्वच्छ समझती है। भानुप्रताप सरीखे अहंकारी, धूर्त और निकम्मे नौजवान के चक्कर में पड़कर, मां-बाप के घर से निकल भागती है। अंजाम वही होता है जो···

१

रात के सन्नाटे में, रेलवे लाइन के दोनों ओर घनीभूत अंधकार अपनी असीम व्यापकता के अहंकार में जड़ीभूत हो रहा था। अभी-अभी मुजफ्फरपुर से समस्तीपुर जानेवाली ढाई बजे की गाड़ी पास हुई थी।

सुबह से मेंह बरसना शुरू हुआ, सो कुछ ही देर पहले थमा था। अजीब समां था—सांप की आंखों जैसा मोहक! सन्नाटे को मुखरित करती हुई मेंढकों की टर्र-टों-टर्र-टों, झींगुर की अनवरत झिन्-झिन्··· झिन्-झिन्; कभी-कभी पानी-भरे गड्ढों में कोई चीज छपाक् से कूद जाती तो पेड़ों पर सोती हुई चिड़ियां चें-चें-चें-चें कर उठतीं—एक नहीं, एक साथ कई चिड़ियां। ऊपर लसफसिया की छितरायी हुई डालियों के घने पत्तों में लुक-छिप करती हुई, शैतान की आखों जैसी, सिगनल की दो लाल-लाल बत्तिया; और कभी-कभी, अंधकार को शत-सहस्र खंडों में छिन्न-भिन्न करती हुई क्रुद्ध बिजली की कौंध। वातावरण में नमी। शरीर को नमक की तरह गला देनेवाली ऊमस और सबसे बीभत्स बात यह कि जग्गू को यह सब देखना-सुनना पड़ रहा था। अभी पूरब जानेवाली मालगाड़ी पास होने को थी। बीस साल से वह इस गुमटी पर नौकर था। लाइन के दोनों ओर फाटक लगा देना और गाड़ी पास होने पर फाटक खोल देना—बस, यही काम वह बीस साल से करता चला आ रहा था। कभी कोई चूक नहीं हुई, कभी कोई स्वर्ग नहीं उतरा—बस, एक जैसा सीधा-सादा जीवन चलता रहा, जैसे पूरब में सूरज का उगना, पश्चिम में डूब जाना।

जग्गू गौर से सिगनल की बत्तियों को देख रहा था। पहले उसका बाप इस गुमटी पर नौकर था। जग्गू जब छोटा था, तो बड़े कौतूहल से बत्तियों को देखा करता। रात के अंधेरे में लाल बत्तियां अजीब लगती

भयानक ! डरावनी !! और वह चाहकर भी आखें नहीं बन्द कर पाता। भय से उसके रोंगटे खड़े हो जाते, देह सिहर उठती, फिर भी वह देखता ही रहता। उसे लगता, जैसे उसने देखना बन्द करके सिर घुमाया नहीं कि शैतान की लाल-लाल आंखें उसके सिर के पीछे चुभीं नहीं। ये बचपन के टूटे-बिखरे अनुभव थे। अब वह प्रौढ़ था। बत्तीस-तैंतीस साल का, हट्टा-कट्टा, गेहुए रंग का, स्वस्थ, खूबसूरत, निर्भय आदमी। डर उससे कोसों दूर; भ्रम, शंका और बेईमानी की माया से परे, वह अकेला ही गुमटी में जीवन व्यतीत कर रहा था—जीवन की बारीकियों को समझे बगैर, सामाजिक वृत्तियों की पहचान से अछूता, मनुष्योचित दुर्बलताओं को बिना भोगे, अनुराग-विराग की अनुभूति से अछूता !

शैतान की एक आख हरी हो गई। दूर पर कुत्ते भौंकने लगे, हवा जरा तेज बहने लगी। उमस का पर्दा किंचित् लहरा उठा। बिजली कौंधी तो जग्गू ने देखा—आकाश के जमे बादल फट चले थे। वह खाट पर उठकर बैठ गया। फेंटे से सुर्ती निकालकर, बायें हाथ की हथेली पर संजोने लगा। पास ही के गाव देसौरा में चौकीदार की ललकार अंधकार से टकरा उठी—'जगले रहिह हो ऽऽऽऽऽ···!' और जग्गू ने सुर्ती मलकर, दायें हाथ की चुटकी से होठो में दबा ली। चारों ओर पूर्ववत् सन्नाटा छाया रहा। उसने सड़क पर के फाटक बन्द किये, क्योंकि पश्चिम में इंजन की रोशनी चमक उठी थी।

जग्गू जब पांच साल का था, उसकी मा मर गई और जब वह उम्र की बारहवीं सीढ़ी पर पहुंचा, उसके पिता भी चल बसे। समुद्र के किनारे बहुमंजिली इमारत मे रहनेवाला आदमी, किसी नवीनता के आनन्द का अनुभव नहीं करता। जग्गू एक जगह रहता हुआ, एक तरह का जीवन-यापन करता हुआ तेरह वर्ष का हो गया; लेकिन उसके मन मे किसी नवीनता के लिए न तो कभी कोई इच्छा उत्पन्न हुई, और न सदा-सर्वदा से गड़ी हुई रेल की बेजान पटरी की प्राचीनता के लिए दु.ख। जीवन में उसने एक ही स्वप्न देखा था। उसके घर के पास ही गुरुजी का घर था। गुरुजी की लड़की अनुराधा बहुत ही चंचल, नटखट और खूबसूरत थी। वह जग्गू को देखते ही ताली बजा-बजाकर चिल्ला उठती—'पहलवान !'

और जग्गू उसे पकड़ने दौड़ता, कभी-कभी पकड़कर उसके कान ऐंठ देता। अनुराधा रोती हुई भाग जाती। लेकिन, फिर दूसरे ही दिन वह उछलती-कूदती आ धमकती। जग्गू खुश हो जाता। बस, सरसता के नाम पर यही एक अध्याय, उसके नीरस जीवन में 'ओयसिस' की तरह झलमला उठता। शेष सब निस्सार था! फीका था!

जग्गू के पिता महीनों बीमार रहे। जग्गू उनकी देखभाल भी करता और गाड़ी पास होते समय, हरी झंडी खोलकर, बन्द फाटक के आगे खड़ा होकर ड्यूटी भी बजाया करता। खट्-खटाक्, खट्-खटाक्-खट् करती हर-हराती हुई गाड़ी पास हो जाती। जग्गू झंडी लपेटकर गुमटी के मोखे में खोंस देता और फिर अपने पिता की सेवा-शुश्रूषा में जुट जाता। और इस तरह महीनों बाद, जग्गू का पिता बीमारी से अच्छा होते-होते, मौत की गोद में जा गिरा। जग्गू अवाक्, किंकर्त्तव्यविमूढ़-सा देखता रह गया। गांव वाले आए। जग्गू ने बिना कुछ सोचे-समझे, चुपचाप श्राद्धकर्म पूरा किया। उसका पूरा नाम था जगनारायण चौधरी। पुरोहितों, सम्बन्धियों और समाज की खातिरदारी में, उसे पिता की सारी अर्जित जमा पूंजी लगा देनी पड़ी, यहां तक कि ऊपर से पांच सौ रुपये का कर्ज भी चढ़ गया। इज्जत बचाने की ही बात नहीं थी, पिता को अंतिम सम्मान देने की विषादपूर्ण इच्छा भी जग्गू में जाग्रत् हो चुकी थी।

जग्गू ने चुपचाप सभी सामाजिक नियमों-उपनियमों का पालन किया, दान-दक्षिणा दी, सम्बन्धियों को सामर्थ्य-भर धन-वस्त्र देकर विदा किया; और जब सब शेष हो गया, तो जग्गू भी अपनी खपरैल वाले घर को सदा के लिए प्रणाम कर गुमटी में ही आकर रहने लगा। तब से, अपने घर में रहने के ख्याल से वह लौटकर कभी नहीं गया। हां, हर दीवाली को वह अपना घर साफ करता, रात में वहां दीये जलाता और नौ बजे की गाड़ी पास करने के समय, घर में ताला लगाकर, गुमटी पर चला जाता। उसके घर के तीन ओर उसकी जमीन थी—कुल साढे तीन बीघा। सो अपनी मेहनत के बल पर, उसने एक साल में ही, जमीन की उपज से पांच सौ का कर्ज सधा दिया। और तब से वह बेफिक्री की जिन्दगी बिताता हुआ जी रहा था। गांव वालो ने जग्गू को विवाह के बन्धन मे बांधने की काफी कोशिश

की; कुछ दिन तक लडकी वाले भी उसे परेशान करते रहे; लेकिन जग्गू की चुप्पी और दृढ़ता के सामने सभी हार मान गये और जग्गू अपनी जिन्दगी जीता रहा। जिन्दगी—रेल की पटरी जैसी नीरस, रूपहीन, पुरातन और अछोर!

पश्चिम की ओर रुख किए जग्गू खड़ा था। लगभग पांच मिनट से, मालगाड़ी के इंजन की रोशनी ज्यों-की-त्यों दीख रही थी। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि मालगाड़ी खड़ी क्यों है। वह एकटक इंजिन की रोशनी को देख रहा था कि पीछे से कुछ आवाज सुनाई पड़ी। उसने घूमकर देखा—करीब पच्चीस कदम की दूरी पर, दो मानव-मूर्तियां चली आ रही थीं। जग्गू को अंधकार में कुछ स्पष्ट दिखाई नहीं पड़ा कि संयोगवश गहरी बिजली चमक उठी। जग्गू ने देखा—आगन्तुकों में एक पुरुष और दूसरी नारी थी। दोनों मूर्तियां जग्गू के पास आकर रुक गईं। पुरुष ने थोड़ा हकलाते हुए, अशुद्ध हिन्दी में पूछा—"यहां एक-दो रात ठहरने का जगह कहीं मिलेगा?"

नारी अलग खडी थी। पुरुष सिर पर सामान रखे, नारी से दूर हटकर पीछे की ओर खड़ा था। जग्गू ने अंधकार में नारी को देखने की कोशिश की। आकार-प्रकार से जग्गू को लगा कि आगन्तुक स्त्री कमसिन और खूबसूरत है। उसने नम्रता से पूछा—

"आप लोग कहां के रहनेवाले हैं?"

"राजस्थान के।"—पुरुष का संक्षिप्त उत्तर था।

"देखिए, पास ही में बिसेसर सिंह की हवेली है। उन्हींके दालान पर चले जाइए। बहुत अच्छे आदमी हैं।"

"लेकिन, इतनी रात को हम लोग उसको कहां मिलेगा? यहीं, इस गुमटी में रात-भर रहने दीजिए, तो बड़ी मेहरबानी होगी।" पुरुष ने बड़ी दीनता से कहा। दूर पर वह स्त्री सिर नीचा किए खड़ी थी। जग्गू ने जरा सोचते हुए कहा—"गुमटी में?···यहां तो बहुत कम जगह है। नहीं, नहीं, यहां रहना ठीक भी नहीं है। सामने रेल की पटरी है। रात-भर गाड़ी आती-जाती रहती है।"

"तो क्या हुआ? समय ही तो काटना है!"—आगन्तुक पुरुष ने

आतुर होकर कहा। आकाश में जोरों की बिजली फिर चमक उठी। साथ ही बादल गरज उठे।

"हे भगवान !"—जग्गू के मुंह से अचानक निकल उठा। आगन्तुका वास्तव में बहुत सुन्दर थी—दूध में धोयी जैसी ! न जाने क्या मन में आया कि जग्गू अचानक ही बोल उठा—"अच्छा, मेरे साथ आइए !" यह कहकर, जग्गू गुमटी के भीतर से सरकारी हाथबत्ती उठा लाया—जिसकी एक तरफ से ही गोल मद्धिम रोशनी निकलती थी—और अपने घर की ओर चल पड़ा। दोनों आगन्तुक उसके पीछे हो लिए। चार-पाच मिनट में ही जग्गू अपने घर पहुंच गया। फेंटे से उसने चाभी निकाली, दरवाजा खोला और आगन्तुकों को राह दिखाते हुए कहा—"जरा बचकर आइएगा, बरामदे का छप्पर नीचा है—हां, ठीक है—नीचे उतर जाइए !···यह रही कोठरी ··।" नारी बरामदे पर ही खड़ी थी। जग्गू ने पुरुष से सरल भाव से पूछा—

"वे···क्या आपकी पत्नी हैं ?"

"जी नहीं, मैं उनका नौकर हूं।"

जग्गू क्षण-भर कौतूहल और सम्मान से चुप रह गया। अपनी भूल सुधारने के ख्याल से उसने कहा—

"तो इन्हें इस कोठरी में ठहरा दीजिए और आप बाहर बरामदे की कोठरी में सो जाइए, या चौकी निकालकर, उसीपर लेट जाइए। यह बत्ती मैं यहीं छोड़े जाता हूं।"—और जग्गू जल्दी-जल्दी कदम धरता हुआ घर से बाहर हो गया। गुमटी पर पहुंचकर, वह अपनी मूंज की खाट पर सोना ही चाहता था कि उसे मालगाड़ी का ध्यान आया और वह हड़बड़ाकर उठ खड़ा हुआ। इंजिन की रोशनी बुझ चुकी थी, लेकिन मालगाड़ी अब भी जहां-की-तहां खड़ी थी। जग्गू की बेचैनी बढ़ने लगी। उसके दिमाग में आज पहली बार कौतूहल, परेशानी, कोमलता, आशंका आदि भाव जागे। वह वहीं चक्कर लगाने लगा। गहरे अंधकार को भेदती हुई, इंजिन की सूं-सू की हलकी आवाज, जग्गू के मन में आशंकाओं का तूफान उठा रही थी। लाइन के साथ-साथ कच्ची सड़क जाती थी, और वह इसी गुमटी से रेलवे लाइन को पार कर गांव से गुजरती थी। जग्गू को ट्रक की हड़हड़ाहट

सुनाई पड़ी। लेकिन कही कोई रोशनी नही थी। इसलिए उसे यह अपने कान का भ्रम लगा। हड़हड़ाहट की आवाज धीरे-धीरे निकट आती गई—स्पष्ट होती गई। जग्गू उस ओर, गहरे अंधकार में देखता रहा। आवाज बिलकुल निकट, गुमटी के पास आ पहुंची। जग्गू ने देखा कि ट्रकों की एक लम्बी कतार गुमटी पर खड़ी थी। अगले ट्रक से आवाज आई—

"जग्गू भाई, जरा फाटक खोल देना!"

"अरे, बिसेसर बाबू?!"—जग्गू कौतूहल से चौंक उठा।

"हा, मैं हू बिसेसर! जरा जल्दी फाटक खोल दो।"

"लेकिन बिसेसर बाबू, अभी तो मालगाड़ी आ रही है। आइए, थोड़ी देर यहा खाट पर बैठकर आराम कीजिए।"—जग्गू पास आकर ट्रकों की ओर देखता हुआ बोला—"कहा से आ रहे हैं?"

"सैदपुर हाट गया था। आजकल मैंने गल्ले का व्यापार शुरू किया है। बहुत थक गया हूं। घर जाकर ही आराम करूंगा। फाटक खोल दो न! अभी तो मालगाड़ी टस-से-मस होती भी दिखाई नही देती।"

जग्गू ने सोचा—'ठीक ही तो है। मालगाड़ी कब से खड़ी है और न जाने कब तक खड़ी रहेगी। बिसेसर बाबू गाव के सबसे धनी व्यक्ति और मुखिया हैं, बुजुर्ग और समाजसेवी हैं; इनका अनुरोध टालना अच्छा नही।' उसने फाटक खोलते हुए कहा—"देखो भाई, एक-एक करके ट्रक बढ़ाओ।" गाड़ियां पास होने लगी—एक, दो, तीन, चार, और अन्त मे स्वयं बिसेसर बाबू। जग्गू ने फिर फाटक लगा दिए। कुछ देर तक वह ट्रको का जाना देखता रहा और कुछ सोचता रहा; फिर न जाने क्या बुदबुदाता हुआ, अपनी खाट पर बैठ गया। उसकी आंखों की नीद उड़ चुकी थी। वह सोचने लगा—'ये राजस्थानी आगन्तुक···यह मालगाड़ी···ये ट्रक···बिसेसर बाबू···यह सब क्या हो रहा है आज? गांव के कुछ बदमाश, ईर्ष्यालु लोग दबी जुबान से कहा करते कि बिसेसर बाबू डकैती करवाते हैं, तभी तो उनके पास लाखों रुपये हैं, और इतने सुन्दर पक्के मकान और दलान है···।'

"सुनना, जग्गू भाई!"—बिसेसर सिह की पुकार सुनकर जग्गू चौंक उठा। पास गया तो बिसेसर सिह ने कहा—

"गांव में या किसी बाहरी आदमी से इन गल्लों की चर्चा मत करना। लोग मुझसे बहुत जलते हैं। इसीलिए मैं छिपकर चुपचाप व्यापार करता हूं। और भी कई बातें हैं जो कल इत्मीनान से बताऊंगा, समझे?"

"अच्छी बात है।"

"तो वचन देते हो? यही पूछने मैं वापस आया हूं।"

"हां, हां, आप आकर आराम कीजिए।"—जग्गू ने तपाक् से, अनजाने ही कह दिया। 'बिसेसर बाबू जैसे जमीदार ने, आज पहली बार उससे अनुरोध किया है, उससे इस तरह सगा होकर बात की है', इस उत्साह से, जग्गू अपने अस्तित्व के प्रति चेतन हो उठा। बिसेसर सिंह ने निर्लिप्त भाव से इंजिन की रोशनी की ओर देखते हुए कहा—

"मालगाड़ी अब तक खड़ी है। मालूम पड़ता है बिल्कुल निकट खड़ी है।" बिसेसर सिंह टार्च जलाकर कुछ देर तक इंजिन और गुमटी के बीच की दूरी नापने का उपक्रम करने के बहाने टार्च की रोशनी को इंजिन की तरफ फेंकते रहे और फिर अचानक ही बोल उठे—

"अच्छा, अब चलता हूं, जग्गू भाई! कल मिलूंगा।" बिसेसर सिंह तेज रफ्तार में, गांव की ओर न जाकर स्टेशन की ओर चल दिए। क्षण-भर बाद ही मालगाड़ी के इंजिन ने सीटी दी और उसकी रोशनी से, पानी में भीगी हुई रेल की पटरी चमक उठी; मानो अन्धकार के बीच रोशनी की राह निकल आई। पूरब में आकाश खुलने लगा।...दूर पर वृक्षों की ऊंची-नीची कतार अस्पष्ट हो उठी। इंजिन की तेज रोशनी में, शैतान की आंखें मद्धिम पड़ गईं।

"किसी चीज की जरूरत है?"...जग्गू बरामदे पर खड़े होकर, आगन्तुक नारी के नौकर से ऊंची आवाज में पूछा। नौकर आंगन के उस पार, सामने वाले बरामदे पर झाड़ू दे रहा था। वह कुछ बोले, तब तक नारी स्वयं कोठरी से बाहर निकल आई और बहुत ही संकोच से बोली—

''डाकघर कहा है ?''

जग्गू ने देखा—गौर वर्ण; दुबली-पतली, सुगढ़, कोमल देह; बड़ी-बड़ी आखें, चेहरे पर स्निग्धता; भोलापन और अपरिमेय आकर्षण। नारी युवती थी—लगभग बीस-बाईस साल की। जग्गू का निश्छल, निर्विकार मन, शायद पहली बार, किसी अभाव की पीड़ा से तड़प उठा, कि वही मधुर स्वर फिर गूंज उठा—

"नही है ?"—युवती के स्वर में आतुरता और बेचैनी थी। जग्गू ने झेंपते हुए सूखे कंठ से कहा—

"हां,हा, है क्यों नही ! लाइए, दीजिए चिट्ठी, मैं छोड़ आता हूं।" युवती चचल चरणों से, लगभग दौड़ती हुई-सी कोठरी में गयी और चिट्ठी लाकर देती हुई बोली—

"एक्सप्रेस कर दीजिएगा। अच्छा ?"—और जग्गू के हाथ में दस रुपये का नोट रख दिया।

"अच्छी बात है।"—जग्गू जाने लगा कि उसे ध्यान आया। रुककर उसने नौकर से कहा—

"यही सामने दायें हाथ जो सड़क जाती है—उसीपर आगे, वटवृक्ष के नीचे रामू साहू की दुकान है। वहां सब सामान मिल जाएगा।" और तब जग्गू घर से बाहर निकल आया।

डाकघर वहां से पौन मील दूर था—रेलवे स्टेशन से लगभग डेढ़ सौ गज की दूरी पर, रेलवे स्टेशन के ठीक सामने। बीच में रेल की पटरियां थी। स्टेशन के पिछले हिस्से की ओर बाजार था। बाजार क्या था—स्टेशन से आनेवाली सडक के दोनों ओर फूस की दस-पन्द्रह छोटी-छोटी, पुरानी झोंपडियां; पांच-छह खपरैल वाले मकान'''बेतरतीब ढंग से बने हुए, आगे-पीछे, छोटे-बड़े। सेठ महंगीराम-बुलाकीमल की आलीशान इमारत, बेशक इस बात को सिद्ध कर रही थी कि 'निकालनेवाले बालू से भी तेल निकाल लेते है।' आस-पास के इलाके में ऐसी शानदार इमारत कहीं नही थी। बाबू बिसेसर सिंह की हवेली भी इसके सामने फीकी थी। लेकिन बिसेसर सिंह तो दूर, यदि इलाके का कोई मामूली किसान भी सेठ बुलाकीमल की दुकान पर आ जाता, तो सेठ हाथ जोड़कर खड़ा हो जाता—

वहुत ही दीन मुद्रा में। बिसेसर सिंह कहा करते—'साले सेठ ने दांत निपोड़ के इलाके को लूट लिया!' बिसेसर सिंह के इस कथन के पीछे भाव जो हो लेकिन यह एक तथ्य था कि सेठ बुलाकीमल का बाप सेठ महंगीराम, एक एक लोटा और फटी हुई मिरजई पहनकर वहा आया था और सबके देखते-देखते, उसने चन्द थान कपड़े की दुकान को, हजारों गांठ कपड़े और हजारों मन गल्ले की दुकान मे बदल दिया।

जग्गू रेलवे लाइन पकड़कर चला था। सो उसे रेलवे स्टेशन के प्लेटफार्म पर ही फौजा खलासी मिल गया। झुर्रीदार चेहरे पर सफेद दाढ़ी की बड़ी-बड़ी खूंटिया निकली हुई; सिर पर गन्दा-घिनौना अंगोछा बंधा हुआ; नंगी देह में थोड़ा उभरा हुआ, बेडौल पेट; हड्डियों से भरी चौड़ी धंसी हुई छाती; मोटे-मोटे काले ओठो पर खिचड़ी मूछ; लम्बी-काली बाहें, जिनकी मांसपेशिया श्रम-गठित, किन्तु ढलती उम्र और अभाव के संकेत में झूलती हुई—यह था फौजदार महतो, जो प्लेटफार्म के किनारे अपने दोनों पांव नीचे लटकाए, सुर्ती मल रहा था। जग्गू को देखते ही बोल उठा—

"आओ, जग्गू बाबू! कहां चले?"

"यही डाकघर तक जा रहा हूं।" जग्गू ने पैर के पंजो पर बैठते हुए कहा—"कल रात-भर सो नही पाया, सो मन कैसा-न-कैसा हो रहा है।"

"अच्छा, तो डाकदर के यहा जा रहे हो?"

"अरे नहीं फौजा, डाकदर के यहा नहीं, डाकघर जा रहा हूं—चिट्ठी डालने!"—जग्गू ने किंचित् मुस्कराते हुए कहा।

प्लेटफार्म पर लगभग सूनापन ही था। बीच में, स्टेशन के सामने आम की सैकड़ों टोकरियों का अम्बार लगा था और उसीके पास दो आदमी बैठे बातें कर रहे थे। प्लेटफार्म के दूसरे छोर पर, एक अधनंगा भिखमंगा सोया हुआ था। स्टेशन प्लेटफार्म के सामने, लाइनों के उस पार, माल गोदाम था—टीन के शेड का; और उसके दोनों ओर काफी ऊंचा प्लेटफार्म था, जिसपर, जहां-तहां बहुत-सी चीजें रखी हुई थी—जैसे लकड़ी की सिल्लियां पाल से ढकी हुई कुछ गाठें और टीन के शेड में भरे हुए बोरों के छोटे-बड़े अम्बार। माल-गोदाम की बायी ओर तीन वैगन खड़े थे। फौजदार ने लाइन पर एक लौंदा थूक फेंकते हुए कहा—

"जुलुम हो रहा है ! घोर कलजुग आ गया। अब तो चलती गाड़ी रोककर, लोग-बाग डाका डालने लगे हैं। कल रात मालगाड़ी का एक पूरा डब्बा कट गया। और वह सारा अनाज मधुबनी जा रहा था—सरकार की ओर से, गरीब लोगों को मुफ्त बांटने के लिए। वहां भी कमला मइया ने पापियों के अत्याचार से बिगड़कर हजारों घर बहा दिए हैं, सैकड़ों-हजारों बीघे जमीन अपने पेट में रख ली। परलय मचा दिया है, परलय !!"

"किस मालगाडी का ?"—जग्गू चौंक उठा।

"अरे, चौंकते क्या हो ? यह कोई नयी बात तो है नहीं। यह इलाका तो डाकुओं का अड्डा बन गया है। अच्छे-अच्छे बाबू-भइया अब चोरी-छिनाली करने लगे हैं। कहने-भर को ये लोग बाभन-राजपूत हैं। दिखाने के लिए जनेऊ पहनते हैं, छुआछूत मानते हैं, दुसाध-चमार के हाथ का पानी नहीं पीते; लेकिन सूरज डूबने पर दुसाध-टोली में चले जाइए—गांव के बड़े-बड़े चौधरी और मिसिर, टुन्नी दुसाध के घर चने की घुघनी खाते गोली (ताड़ी का माप) पर गोली ताड़ी गटागट पीते देख लीजिए। रहरी (अरहर) का खेत तक महका दिया है इन बाबू-भइयों ने।"—अन्तिम वाक्य फौजा ने फुसफुसाहट के स्वर में कहा।

"रात तो मेरी गुमटी से कुछ दूर पर पूरब जानेवाली मालगाड़ी भी बहुत देर तक खड़ी थी।"—जग्गू ने फौजदार के करीब सरकते हुए, धीमी आवाज में कहा। फौजदार जग्गू की तरफ तिरछे देखकर ऐसे हंसा, जैसे यह सब होना ही था। हंसी के नाम पर उसके मुंह से तीन बार हूं-हू की ध्वनि निकली, और फिर वह उसी विश्वास-भाव से बोला—"उसी माल-गाड़ी की तो बात कर रहा हूं। चार सौ चावल के बोरे काटकर गिरा दिए। आधे घंटे से ऊपर मालगाड़ी खड़ी रही और लूट चलती रही। और जानते हैं जगनारायण बाबू, इंजिन का सरवा डराइवर भी डाकुओं से मिला हुआ था ! भला बताओ तो—लाइन पर लाल बत्ती देकर उसे गाड़ी रोकने की क्या जरूरत थी और जब ट्रक पर बोरे लादकर, डाकू काफी दूर निकल गए,तब जाकर उसने गाड़ी चलाई।"

"क्यों ?"—जग्गू कुछ सोचने-समझने का प्रयत्न करता हुआ बोला।

"अरे डराइवर तो कहता है कि दो आदमी बन्दूक लेकर उसे घेरे रहे,

और जब बहुत दूर से टारच जलाकर डाकुओं के सरदार ने सिगनल दिया तब दोनों आदमी उसे छोड़कर, धान के खेत में भाग गए।" फौजी एक चुटकी सुरती जग्गू को देता हुआ, मुह बिचकाकर बोलता रहा—"लेकिन मुझे उस साले किरस्तान डराइवर पर बिसवास नहीं है! पुलिस ने उसे तो हवालात में ठूस ही दिया, अब आगे देखें—किसकी बारी है!"

जग्गू के दिमाग में, रात की मालगाड़ी के इंजिन की तेज रोशनी, भक् से जल उठी। उसके कलेजे पर से कई ट्रक हर्र-हर्र करके गुजरने लगे··· और तब जग्गू को लगा कि पूरी मालगाड़ी उसकी देह पर से खट्-खटा-खट्, खट्-खटा-खट् करती हुई चली जा रही है। वह अचकचाकर उठ खड़ा हुआ और रेल की पटरी पार करता हुआ, एक ही छलाग में डाकघर जा पहुंचा। यंत्रवत् उसने टिकट खरीदा और लिफाफे के ऊपर चिपकाकर, चिट्ठी डाल दी और फिर स्टेशन होता हुआ बाजार में जा पहुंचा। मन उसका अभी भी रात के रहस्यमय दृश्यों में उलझ रहा था। बिसेसर बाबू के उस वाक्य का अर्थ और उद्देश्य भी जग्गू के सामने स्पष्ट होने लगा, कि क्यों उन्होंने दुबारा लौटकर कहा था—'गाव मे या किसी बाहरी आदमी से इन गल्लों की चर्चा मत करना' और अन्त में उन्होने टार्च जलाकर, चार-पाच वार इजिन की ओर रोशनी फेंककर, टार्च वाला अपना हाथ भी हिलाया था।

सामने बाजार था। काफी भीड़-भाड़ थी। इलाके मे भयकर बाढ़ आई हुई थी। सैकड़ों गांव जलमग्न हो गए थे। बूढ़ी गडक, जवानी के उन्माद को भी मात कर रही थी। रेलवे स्टेशन से काफी ऊंची, पक्की सड़क मदनपुर तक जाती है। बहुत पहले वहा एक निलहे अंग्रेज की कोठी थी। वह नील का व्यापार करता था। इतना रौब था उसका, कि उसके अत्याचार की सैकड़ों कहानियां, आज भी लोग घृणा और कौतूहल से कहते-सुनते पाए जाते हैं। घर बह जाने के कारण, हजारों गरीब लोग उस पक्की सड़क पर शरण लिए हुए थे। बाजार में तो किसीको नहीं ठहरने दिया गया; लेकिन बाजार खत्म होते ही, सड़क के दोनों ओर टाट, गुदड़ी या फटे कम्बल की दयनीय छतों की कतार लगी हुई थी। बहुत छोटे-छोटे, गन्दे-अधनंगे बच्चे, विकृत चेहरे, वीभत्स पेट, सूखी टागें, आखों में कीच और बालों में दुनिया-

जहान का मैल इकट्ठा किए, बाजार में चक्कर काट रहे थे या किसी हलवाई की दुकान पर खाना खाते हुए यात्री को ललचाई नजरों से, टुकुर-टुकुर देख रहे थे। गरीब, अधनंगी औरतें—बूढ़ी-जवान, खूबसूरत-बदसूरत—खीसें निपोड़कर, रोकर, गिड़गिड़ाकर, आने-जानेवालों और दुकानदारों के सामने अपनी हथेलियों की अंजलि बनाकर मुंह के पास ले जाती, बोलतीं कुछ नही। देनेवाले डपट देते, जैसे जबरदस्त कुत्ता कमजोर पिल्ले पर गुर्रा उठता है; कोई पैसा-दो पैसा दे देता, तो भिखमंगों की भीड़ उमड़ पड़ती, जैसे यात्रियो पर वैद्यनाथ-धाम के पडे या जैसे स्टेशन से बाहर निकलते ही पैसेंजरों पर तागे-रिक्शेवाले उमड़ पड़ते हैं। बेचारे अध-कचरे सिनेमा-प्रेमी, बुभुक्षित नौजवान—जिन्हें शहर की बाहरी तड़क-भड़क ने दबोच रखा है, जो न गाव में खप पाए, न शहर के हो पाए—अपने कुत्सित विचारों की अभिव्यक्ति का अनुपम अवसर समझते, जब कोई जवान, अधनंगी औरत भीख मांगती हुई उनके पास आती या सामने से गुजर जाती।

आकाश बादलों से अटा था। पेड़-पौधे स्थिर थे। मौसम में तीव्र उमस भरी हुई थी। हलवाइयो की दुकानो से तेल-घी की कड़वी गंध निकलकर, वातावरण में घुटन पैदा कर रही थी। जग्गू की नजर से सारी चीजें गुजर रही थी, मौसम और वातावरण का भी आभास उसे मिल रहा था। फौजा खलासी ने उसे जो कुछ सुनाया था, बिसेसर सिंह ने उसे जो सावधान किया था, वह नारी जो अचानक ही उसके यहा आ पहुंची थी आदि सभी दृश्य जग्गू के मस्तिष्क मे एकसाथ, एक-दूसरे से उलझकर एक अजीब शोर उत्पन्न कर रहे थे—जिस शोर की ध्वनि से तो वह अवगत था, लेकिन जिसका अर्थ और उद्देश्य वह समझ नही पा रहा था।

आदमी, पशु और पक्षियों के विकृत रूप उसके दिमाग में अभिन्न होकर अदृश्य चीत्कार उत्पन्न कर रहे थे। जग्गू ने महसूस किया कि उसका सिर फट जाएगा। वह जल्द-से-जल्द गुमटी पर पहुंच जाना चाहता था, ताकि एकान्त मे बैठकर, सारी बातों को समझने का प्रयत्न कर सके। इसलिए वह सब कुछ अनदेखी-अनसुनी करता हुआ बाजार से गुजर रहा था, कि किसी भर्राई-फटी आवाज पर उसके पैर रुक गए। देखा—मुनिदेव

की दुकान पर, राघव पाल्थी मारे बैठा था और वहीं से आवाज दे रहा था—

"अरे जगनारायण बाबू ! जरा इस अपने शेवक की बात तो सुनते जाइए।"—शुद्ध बोलने की कोशिश में, गवार नेता राघव 'स', 'श' और स्त्रीलिंग, पुल्लिग का निर्णय अपनी इच्छा से कर लेता था। जग्गू इस स्वयंभू नेता राघव से हमेशा कतराने की कोशिश में रहता। राघव नाटे कद का, गठीला जवान था। पेशे के नाम पर वह कभी पत्रकार बन जाता, तो कभी सी० आई० डी०, कभी सोशलिस्ट तो कभी जनसंघी और कभी हलवाई-यूनियन का सभापति, तो कभी रिक्शा-यूनियन का मंत्री। वह गूढ़जीवी होते हुए भी बेजोड़ था। न तो उसे खाने की सुध रहती, न सोने की चिंता। वह जुबान से मुहफट, दिल से उदार, बुद्धि से कोसों दूर और शरीर से परिश्रमी था। स्टेशन के तथाकथित बड़े लोगों ने कई बार उसे वहां से भगाने की कोशिश की, उसे बुरी तरह मारा-पीटा, बेइज्जत किया; लेकिन वाह रे राघव ! जमा रहा हमेशा अखाड़े में ! जग्गू उसकी आवाज सुनकर रुक गया।

"जरा इधर तशरीफ लाइए, हुजूर !"—राघव ने अपने भद्दे काले दांत दिखाते हुए जोर से कहा। जग्गू निकल भागने का कोई रास्ता न पाकर मुनिदेव की दुकान पर आकर खड़ा हो गया और अनासक्त भाव से बोला—

"कहिए !"

"जरा बैठिए तो ! आपके दर्शन भी नहीं होते।"—राघव ने बगल में जगह बनाते हुए कहा। जग्गू जब चुपचाप बैठ गया, तब राघव ने पूछा—

"आपको मालूम ही होगा जग्गू बाबू, कि रात आपकी गुमटी के पास मालगाड़ी लूट ली गई ?"

"जब आप कह रहे हैं, तब मालूम ही हो गया !" जग्गू ने ऊब के स्वर में उत्तर दिया। राघव ठहाका मारकर हंसने लगा। मुनिदेव किसी ग्राहक के कोट की कतर-ब्योंत कर रहा था। मुनिदेव और जग्गू बचपन के दोस्त थे। मिडिल पास करने के बाद, मुनिदेव कपड़ों की सिलाई की शिक्षा पाने के लिए पटना चला गया, और जग्गू स्टेशन के हाई स्कूल में दाखिल हो गया।

मुनिदेव ने सिलाई का प्रशिक्षण प्राप्त करके अपनी दुकान खोल ली, और जग्गू दसवीं कक्षा तक पढ़ने के बाद गुमटी पर ही रहने लगा।

राघव की हरकत मुनिदेव को पसन्द नहीं आई। वह दांत पीसता हुआ चीख उठा--

"अरे साला, यहां शोर क्यों मचा रहा है?"

राघव के लिए यह नयी बात नहीं थी। वह हंसता हुआ बोला--"अरे प्यारे, तू अपना काम करता रह! देख ले, कहीं कोट की कटिंग तो नहीं बिगड़ रही है? हां, जग्गू बाबू! तो आपको अभी मालूम हुआ? लेकिन, आपको यह भी विदित हो कि वह अनाज, बाढ़-पीड़ितों में मुफ्त बांटने के लिए मधुबनी जा रहा था। वहां हजारों-लाखों इन्सान कुत्ते की मौत मर रहे हैं। लेकिन मैं जानता हूं कि यह किसका कार्य है। इस इलाके के बड़े-बड़े लोगों का इसमें हाथ है और आप जग्गू बाबू..."

"अरे चुप रहता है कि नहीं, लीडर का बच्चा!"--मुनिदेव ने राघव को कैंची घोंप देने का भय दिखाते हुए चिल्लाकर कहा। जग्गू अपने चेहरे पर वही पूर्ववत् लीडराना अंदाज लिये उठ खड़ा हुआ और बिना किसीसे बात किए वहां से चल पड़ा।

पूरब से आनेवाली डाकगाड़ी का समय हो गया था। गुमटी पर पहुंचते ही जग्गू ने फाटक बन्द किए और गुमटी की दीवार के पश्चिमी ओर, छांह में खाट डालकर बैठ गया। उसका मन बेचैन था। पिछली रात से जितनी घटनाएं घट रही थीं, जितनी चर्चाएं चल रही थीं, उन सभी बातों के लिए जग्गू अपने को जिम्मेदार समझ रहा था। कुछ था, जो उसके हृदय से कढ़कर बाहर निकलना चाहता था; कुछ तीव्रता थी, जो किसी भाव को ठहरने नहीं देना चाहती थी; कुछ घबराहट थी, जो एक पल को एक युग जैसा बोझिल बना रही थी। और पश्चिम जानेवाली डाकगाड़ी का कहीं पता नहीं था।

जग्गू इसी उधेड़-बुन में पड़ा था कि सामने से गोपाल आता दिखाई पड़ा।

गोपाल बाईस-तेईस साल का नौजवान था--पिता का इकलौता पुत्र, लाड़-प्यार में पला हुआ। उसके घर में कोई अभाव नहीं था। उसके

पिता विचित्तर सिंह कर्मठ किसान थे। नाम के प्रतिकूल वे बहुत सरल स्वभाव के, हंसमुख, दयालु और सुलझे हुए आदमी थे। अपने बेटे गोपाल को नवीं कक्षा तक पढ़ाकर, उन्होंने उसे स्कूल जाने से मना कर दिया। घर पर दो सिद्धहस्त पहलवान रखकर, उन्होंने गोपाल को कुश्ती-कसरत की शिक्षा दिलवानी शुरू की। दुबला-पतला गोपाल दो वर्ष के भीतर ही दारासिंह जैसा दीखने लगा। इलाके-भर में उसके जोड़ का जवान कोई नहीं बचा। सब बिना आजमाए ही उसका लोहा मान गए। शरीर में हाथी की शक्ति आ जाने पर भी गोपाल हृदय से गीली मिट्टी जैसा मुलायम बना रहा। स्पष्टवादी वह स्वभाव से था, जिसे लोग अहंकार समझ लेते। लेकिन वह जिसके साथ रहता, उसीका हो जाता। किसीके प्रेम का स्पर्श उसके अहं को ही नहीं, अस्तित्व तक तो कपूर की तरह उड़ा देता। सहज होने पर गोपाल सेवक की तरह विनीत और सुसंस्कृत हो जाता। जग्गू को वह चाचा कहकर पुकारता था।

"प्रणाम, जग्गू चाचा !"—गोपाल ने सहज मुस्कान के साथ हाथ जोड़ दिए।

"आओ, गोपाल, बैठो ! किधर चले ?"—कहकर जग्गू अपनी बेचैनी छिपाने के निमित्त मुस्कराने लगा।

"आपको बुलाने आया हूं। बिसेसर बाबू के दालान पर दारोगा बैठा हुआ है। रात मालगाड़ी रोककर किसीने एक डिब्बा अनाज लूट लिया था। पूरे गांव की तलाशी हो रही है।"

"तो मैं क्या करूंगा जाकर ?"—जग्गू के स्वर में आक्रोश था। थोड़ा रुककर वह फिर उसी स्वर में बोला—

"बिसेसर बाबू के घर की तलाशी हुई है या नहीं ?"

"क्या दरोगा के सींग फूटा है कि बिसेसर बाबू के मकान की तलाशी लेगा ! बिसेसर बाबू गांव के मुखिया हैं, जमींदार हैं, इलाके के नेता हैं, प्रांत के महान नेता और मंत्री महादेव बाबू के रिश्तेदार हैं, और सबसे बड़ी बात यह है कि दारोगा के ऐश-मौज की चक्की में 'धानी' डालने वालों में वे सबसे आगे हैं ! तलाशी तो होगी हमारे-आपके घर की !"

"मेरे घर की ?"

"सो रहे थे क्या, जग्गू चाचा ? आपके घर की तलाशी तो हो भी चुकी !"

"क्या कहा ?"—जग्गू तमककर उठ खड़ा हुआ—"मेरे घर की तलाशी हो चुकी है ?"

"हां, आपके यहां दो मेहमान ठहरे हुए हैं। दारोगा उनमें से एक को पकड़कर बिसेसर बाबू के दालान पर ले गया है।"

"किसको ?"

"वह अपने को नौकर बतलाता है।"

जग्गू की बेचैनी उन्माद में बदल गई। वह खाट पर से अंगोछा उठाकर, उसे क्रोध से झाडता गांव की ओर लपका। गोपाल उसके पीछे हो लिया।

बिसेसर सिंह के दालान पर भीड़ लगी हुई थी। दारोगा कुर्सी पर बैठा हुआ सिगरेट पी रहा था और राजस्थानी नौकर से डांट-डपटकर, अजीबोगरीब सवाल पूछ रहा था। जग्गू भीड़ को चीरता हुआ, सीधे दारोगा के सामने पहुंचकर बोला—

"मुझसे बात कीजिए, दारोगा जी ! वह मेरा अतिथि है।"

"ओह ! आप आ गए ?"—दारोगा के चेहरे पर व्यंग्यात्मक मुसकराहट और घृणा के भाव स्पष्ट हो उठे।

"जी हां ! सेवक हाजिर है। हुक्म कीजिए !"—जग्गू ने दृढ़ता से कहा। बिसेसर बाबू किंचित् परेशान हो उठे। वह अचानक ही चिल्ला उठे—

"अरे कलुआ ! पता नहीं कहां मर गया साला !"—फिर दारोगा से बोले—

"पहले नाश्ता कर लीजिए हुजूर, फिर तहकीकात कीजिएगा !"

जग्गू की दृढता देखकर, दारोगा क्रोध से राख हुआ जा रहा था। पूरे गांव के सामने, जग्गू जैसा गुमटीवाला—एक कुली—इस तरह अकड़कर बोल रहा था। 'ऐसा गुस्ताख !'—दारोगा के रक्त में प्रतिहिंसा की उष्णता व्याप गई। लेकिन अपना क्रोध पीते हुए, उसने आंखें लाल करके पूछा—

"यह कौन औरत है, जो इस आदमी के साथ तुम्हारे घर में ठहरी हुई है ?"

"इससे आपको मतलब ?"

"हा, मुझे मतलब है !"

"ये लोग मेरे अतिथि हैं। इससे अधिक मैं कुछ नही जानता।"—जग्गू विसेसर सिंह की ओर क्रुद्ध दृष्टि से देखता हुआ बोला।

"वाह साहब, एक जवान औरत को बिना कुछ जाने-समझे घर में बैठा लिया ? मुझे बुद्धू समझ रखा है क्या ?"

"किसी जरूरतमंद-आश्रयहीन परदेसी अतिथि को अपने घर में ठहराने के लिए, अधिक जानने-समझने की जरूरत नहीं होती।"

"लेकिन चोर और उचक्कों का मिजाज दुरुस्त करने के लिए जानने-समझने की जरूरत होती है और मुझमे इतनी अक्ल है !"—दारोगा अपने क्रोध पर से नियंत्रण खोता जा रहा था। जग्गू उबलता हुआ आया था, लेकिन पता नहीं क्यों, वह दृढ़ता के साथ शान्ति भाव से जवाब देता रहा—

"आप स्वय ही कभी तो अपने को बुद्धू समझ लेते है, और कभी अक्ल-मन्द। अब मैं क्या जानू कि आप क्या हैं और क्या चाहते है ?"

"चुप रहो, नही तो जुबान खींच लूगा ! छोटे मुह, बड़ी बात !"—दारोगा चीख उठा।

"आपने कुछ पूछना शुरू किया था, इसीलिए बोल रहा था। यदि आप चुप रहने को कहते हैं तो फिर मेरी यहां कोई जरूरत नहीं है !"—वह नौकर की ओर देखकर बोला—"चलो भाई ! यहां से चलें।"

"यह नहीं जा सकता !" दारोगा ने कहा।

"क्यों ?"

"इसपर मुझे शक है !"

"वाह दारोगाजी, आपकी समझ भी निराली है ! डाकुओं पर तो आप विश्वास करते हैं और निरपराधों पर शक ?"

"कौन डाकू है ?"

"आप अच्छी तरह जानते हैं !"

"मुझे तुम्हारे इस अतिथि पर शक है !"

"लेकिन मैं जानता हूं कि यह निरपराध है।"

"तुम्हारे पास इसका क्या सबूत है ?"

"जिस समय मालगाड़ी लूटी जा रही थी, यह अपनी मालकिन के साथ मेरे पास था।"

"या आप अकेले इसकी मालकिन के पास थे ?"

"खबरदार, जो इस तरह की बात की !"—जग्गू क्रोध से उबल पड़ा। बिसेसर सिंह की परेशानी ने घबराहट का रूप ले लिया, लेकिन वह बहुत ही पहुंचे हुए आदमी थे। वह दारोगा के पीछे, चौकी पर बैठे थे। उठकर दारोगा के सामने आए और शान्त स्वर में बोले—

"दारोगाजी, आप नाहक नाराज होते हैं ! जग्गू जैसा ईमानदार और साधु पुरुष इस गांव में तो दूर, पूरे इलाके में नहीं है और···और तुम भी जग्गू भाई, व्यर्थ ही क्रोध करते हो ! दारोगाजी का तो काम ही है, चोरी-डकैती का पता लगाना ! यदि ये लोग न रहें, तो हम लोगों का सोना-रहना हराम हो जाए। हम लोगों के लिए ही तो, दारोगाजी इस तरह के अप्रिय काम करते हैं ! जरा इनकी मजबूरी भी तो महसूस करो ! अच्छा दारोगाजी, आप जरा कोठरी में चलिए ! एक कप चाय पी लीजिए, फिर यह सब काम कीजिएगा ! चलिए, उठिए !"—बिसेसर सिंह दारोगा को आग्रहपूर्वक उठाकर कोठरी में ले गए। दारोगा जाते-जाते अपने सिपाहियों से कहता गया—

"इन लोगों को जाने मत देना।"

"कहां चले, दारोगाजी ?"—इस भर्राई फटी हुई आवाज को पहचानने में किसीको देर नहीं लगी। ऐसी घटनाओं को तमाशा समझकर दिलचस्पी लेनेवाले, राघव के आगमन से मन-ही-मन खुश हुए। दारोगा और बिसेसर सिंह थमक गए। इन दोनों को, राघव का आना बहुत ही बुरा लगा। बिसेसर सिंह ने पितृ-भाव से हसते हुए कहा—

"तुम जरा बैठो, राघव ! दारोगाजी अभी चाय पीकर आते हैं। चलिए दारोगाजी, भीतर चलिए।"

दोनों कोठरी में चले गए। भीड़ वाचाल हो उठी। सभी अपनी-अपनी

बात, अपना-अपना तर्क उपस्थित करने लगे। आगंतुक नारी का नौकर ठगा-सा, घबराया-सा खड़ा था। राघव ने अपनी स्वाभाविक भाषण-शैली में बोलना शुरू किया—

"देखो जग्गू भाई ! हर जगह गरीब और कमजोर ही शिकार होते हैं; और असल डाकू मौज उड़ाते हैं। मैं जानता हूं कि कोठरी में जाकर, हम गरीबों को फासने का जाल रचा जा रहा है। लेकिन आप लोगों को होश नहीं है ! आप लोग कायर की तरह सब-कुछ सहन करते हैं। बड़े शर्म की बात है !"

"तो आपने ही कौन-सा तीर मार दिया है ? भाषण तो सभी दे सकते हैं ! जरा आगे बढ़कर इस अन्याय का विरोध कीजिए, तब जानें !'—गोपाल तमककर दायां हाथ फैलाता हुआ बोला।

"मेरी बात मत करो गोपाल ! मैं तो हमेशा आगे रहने वाला आदमी हूं। लेकिन तुम लोगों जैसे पढ़े-लिखे नौजवानों के रहते हुए भी एक मामूली दारोगा ने पूरे गाव को बेवकूफ बना दिया ! मेरा क्या है ? मैं तो फक्कड़ आदमी हू। जहा कही भी मैंने अन्याय देखा है, वहां डटकर विरोध किया है ! और इसीलिए मैं चारों ओर बदनाम हूं। लेकिन मुझे अपनी बदनामी का डर नही है। मैं आप लोगो के साथ हूं। आपको चाहिए कि जो आपकी इज्जत पर हाथ डाले, आप उसका हाथ तोड़ दें !'

"किसकी मां बाघ ब्यायी है—जो हमारी इज्जत पर हाथ डालेगा ?"—गोपाल आंखें लाल करके बोला।

"यही तो तुम भूल करते हो, गोपाल भाई ! तुम्हें पता नहीं है कि इज्जत कहते किसे हैं ! तुम समझते हो कि तुम्हारी इज्जत तुम्हारे घर मे है; लेकिन ऐसी समझ तुम्हारी अज्ञानता को ही सिद्ध करती है ! देसौरा गांव तुम्हारा है, यहा के लोग तुम्हारे अपने हैं, यहा की अच्छाई-बुराई तुम्हारी अपनी अच्छाई-बुराई है, और इसी तरह गाव की इज्जत तुम्हारी अपनी इज्जत है !"

"यह तो मैं भी मानता हूं।"—गोपाल ने गभीरतापूर्वक किंचित् ऊंची आवाज में कहा।

राघव उत्साह में आकर बोला—

"मानने-भर से क्या होता है? जग्गू बाबू तुम्हारे गांव के रहने वाले हैं, तुम्हारे अपने हैं। इस गांव के जितने भी लोग हैं, सब एक-दूसरे के सगे हैं। आज दारोगा ने जग्गू भाई के अतिथि को बेइज्जत किया है, कल आप लोगों की प्रतिष्ठा पर हाथ उठाएगा—बल्कि आपकी प्रतिष्ठा तो धूल में मिल भी गई! क्या शर्म की बात नहीं है कि आपकी आंखों के सामने आपके एक अतिथि को गाली दी जा रही है, और आप खड़े मुह ताक रहे हैं?"

भीड़ से बहुत-सी आवाजें बुलंद हो उठीं—

"जरूर! बिलकुल शर्म की बात है, आप ठीक कहते हैं!"

राघव ने विजेता की तरह एक बार भीड़ को देखा, और फिर गोपाल से कहा—

"प्यारे भाई, तुम मेरे छोटे भाई हो! मुझपर तुम्हें नाराज नहीं होना चाहिए।"

"आपने हमें डरपोक क्यों कहा?"—गोपाल ने कृत्रिम क्रोध से पूछा।

तभी बिसेसर सिंह बाहर आए। भीड़ का कोलाहल कुछ दब गया। बिसेसर सिंह शांत स्वर में बोले—

"आप लोग अपने-अपने घर जाइए! यहां भीड़ लगाने से क्याफायदा?"

भीड़ ज्यों-की-त्यों खड़ी रही। बिसेसर सिंह प्रत्येक व्यक्ति को एक-एक कर घूरने लगे—"आप लोगों को कोई काम नहीं है क्या?"

"काम तो बहुत-से हैं, लेकिन आप लोग करने दें तब तो!"—राघव ने मुस्कराते हुए व्यंग्य किया। बिसेसर सिंह शायद इसी मौके की तलाश में थे। बोले—

"आप बीच में न बोलिए! जाइए, स्टेशन जाकर हलवाइयों की यूनियन बनाइए। यह गाव है।"

"आप मेरी जुबान पर ताला नही लगा सकते! इतनी बड़ी सरकार ने भी बोलने की आजादी सबको दे रखी है।"

"कौन कहता है कि आप न बोलिए, लेकिन यहां नही! यह गांव है, मेरा घर है!"

"पहले आप अपने गाव में होने वाले जुल्म को रोकिए, फिर मेरी जुबान को रोकिएगा!"

बिसेसर सिंह उसी शांत मुद्रा से बोलते रहे—"हम गांव के मामले में बाहरवालों का दखल बर्दाश्त करने के आदी नहीं हैं। हम आपस में कुछ भी करें, इससे बाहरवालों को मतलब ?"

"और यह दारोगाजी कहां के हैं ? इन दारोगा जी ने आपके गांववालों को बेइज्जत किया है, और आप उन्हें सम्मानपूर्वक नाश्ता करा रहे हैं, चाय पिला रहे हैं !"

"वे हमारे अतिथि हैं।"

"और मैं ?"

"आप जैसे अतिथियों से, हमारे गांव को भगवान बचाए !"—भीड़ ठहाका मारकर हंस पड़ी। राघव ने चारों ओर देखा। उसकी हिम्मत पस्त होती जा रही थी। गोपाल पर जाकर उसकी नजर अटक गई। वह मुस्करा रहा था। जग्गू एक आम की सिल्ली पर बैठा था—गंभीर मुद्रा में, दोनों हाथों की हथेलियां सिल्ली पर रखे हुए।

बिसेसर सिंह ने मुस्कराते हुए कहा—"यहां जितने लोग बैठे हैं, सभी मेरे भाई-बन्द हैं ! सब लोग मेरे हैं और मैं सबका हूं। सुख-दुःख में, हम गांव वाले एक-दूसरे के काम आते हैं और एक-दूसरे से झगड़ते भी हैं। लेकिन बाहर वालों को पंच नहीं बदते ! आप जैसे नेता लोग, अपनी माया गांव से दूर ही रखें तो अच्छा !"

"लेकिन ठाकुर साहब, मेरी माया तो आपकी माया की छाया-भर है ! आप आगे-आगे, मैं पीछे-पीछे ! समझे ?"—और बिसेसर बाबू पर एक अर्थपूर्ण दृष्टि डालता हुआ, राघव वहां से चल दिया। राघव की उस दृष्टि से, बिसेसर सिंह क्षण-भर के लिए विचलित हुए, लेकिन तत्क्षण स्वस्थ हो गए।

"अच्छा, अब आप लोग भी जाइए !" बिसेसर सिंह ने लोगों से कहा। भीड़ छंटने लगी। जग्गू ने उस नारी के नौकर को अपने पास, इशारे से बुलाकर पूछा—

"तुम्हारा नाम क्या है ?"

"बह्मदेव।"

"अच्छा तो ब्रह्मदेव, तुम गुमटी पर चलकर बैठो। मैं अभी आता हूं।"

ब्रह्मदेव चला गया। तब तक भीड़ भी छंट चुकी थी। बिसेसर बाबू लोगों का जाना देख रहे थे। लेकिन उनका मन तो जग्गू की ओर ही टंगा था। जग्गू को चुपचाप सिल्ली पर बैठा देखकर, बिसेसर सिंह उसके पास पहुंचे—

"क्या बात है, जग्गू भाई ? मुझसे नाराज हो गया ?"

जग्गू चुपचाप उठ खड़ा हुआ। बिसेसर सिंह मुस्कराते हुए, पितृ-भाव से जग्गू को देख रहे थे। बिसेसर सिंह की आकृति, हाव-भाव और व्यवहार देखकर, उन्हें पहचानना कठिन था। उनका गौर वर्ण, खड़ी नासिका, पतले फैले हुए होठ, बड़ी-बड़ी निश्छल आंखें और दोहरी देह, देखने वालों के मन में श्रद्धा उत्पन्न करती और उनका मधुर व्यवहार, अनजान आदमी के अहंकार को सहज ही जीत लेता। उनके चेहरे की स्निग्धता, योगियों जैसी थी। जग्गू ने उनकी आंखों-में-आंखें डालकर, आक्रोशपूर्ण स्वर मे पूछा—

"आप जानते थे कि मेरे अतिथियो का इस डकैती से कोई सम्बन्ध नहीं है, फिर भी आपने मेरे घर की तलाशी करवाई और मेरे अतिथियों को अपमानित करवाया।"

"तुम बड़े भोले हो, जग्गू भाई ! दारोगा मेरा नौकर तो है नही, कि सब काम मुझसे पूछकर करेगा।"—बिसेसर सिंह ने स्नेह से, अपना बायां हाथ जग्गू के कंधे पर रखते हुए कहा। बिसेसर सिंह का तर्क जग्गू में विश्वास नहीं भर सका, लेकिन उनके मधुर व्यवहार के सामने जग्गू का क्रोध दब गया। वह समझौतावादी ढंग से क्रोध प्रदर्शित करता हुआ बोला—

"लेकिन अभी तो आपने ही सबको रिहा कर दिया, जैसे···जैसे आप ही दारोगा हो !"

"पागल हो गए हो !"—बिसेसर सिंह ने हंसते हुए कहा—"अरे, आखिर दारोगा भी तो आदमी है ! समझाया-बुझाया, उसकी आरजू-मिन्नत की, तब जाकर उसने मेरी बात मानी ! और जरा तुम स्वयं सोचो कि दारोगा ने क्या गलत काम किया ?" जग्गू ने कौतूहलपूर्ण क्रोध से बिसेसर सिंह को देखा। बिसेसर सिंह शांत, स्नेह-स्निग्ध स्वर में बोलते रहे— "तुम्हें भी मालूम नहीं है कि तुम्हारे अतिथि कौन हैं, और किस उद्देश्य से

यहां आए हैं। वह स्त्री जवान है, खूबसूरत है और भले घर की मालूम पड़ती है ! मैं तुम्हें जानता हूं कि तुम साधु-पुरुष हो, सच्चे हो; लेकिन संसार या समाज कैसे विश्वास कर लेगा कि वह निरुद्देश्य ही भटक रही है, या तुमने वैसे ही उन लोगों को अपने यहां ठहरा लिया है ? जरा ठंडे दिमाग से सोचो, जग्गू भाई ! कोई काम बिना कारण के नहीं होता ! इसीलिए कहता हूं कि क्रोध न करो। जो कुछ हुआ, उसे भूल जाओ !"

जग्गू किसी सोच में पड़ गया। उसका हृदय क्रोध, घृणा और प्रतिहिंसा से फटा जा रहा था; लेकिन उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि वह किस-पर और क्यों क्रोध करे ! बिसेसर सिंह की बातें, उसके मन में जमी नहीं। वह महसूस कर रहा था कि बिसेसर सिंह जो-कुछ कह रहे हैं—झूठी, कृत्रिम और भ्रमपूर्ण बातें हैं। लेकिन वह अपने मन के भाव, खोल नहीं पा रहा था। जग्गू बाजी हार चुका था। अब उसके परास्त मन में, विजेता का सामना करने की हिम्मत नहीं थी। वह चुपचाप वहां से चल पड़ा। उसके मन में यही प्रश्न बार-बार उठ रहा था—"जीवन में पहली बार, आज उसने क्यों हार मान ली ? क्यों ? क्यों ?"

पश्चिम जाने वाली डाकगाड़ी हड़हड़ाती हुई, झमाक्-से गुमटी पर से गुजर गई। आज पहली बार, वह अपनी ड्यूटी पर मौजूद नहीं था। यह सब क्या हो रहा है ?···क्यों हो रहा है ?···वह क्यों बर्दाश्त कर रहा है ? पता नहीं क्यों ?···और इन हजारों-लाखों 'क्यों' का उसके पास कोई उत्तर नहीं था !

३

जग्गू ने गुमटी पर पहुंचते ही, सबसे पहले दोनों ओर के फाटक खोल दिए। ब्रह्मदेव उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। जग्गू उसके पास जाकर बैठ गया। कुछ देर दोनों चुपचाप बैठे रहे। आखिर ब्रह्मदेव ने चुप्पी तोड़ते हुए पूछा—

"क्या दरोगा मुझे पकड़कर ले जाएगा ?"—जग्गू ने देखा कि ब्रह्मदेव

का चेहरा भय से पीला पड़ा हुआ था, उसके होंठ सूख रहे थे और उसकी आवाज लड़खड़ा रही थी। जग्गू में अहं-जनित दया आ गई। वह अपनी सारी परेशानियां भूल गया।

"नहीं ब्रह्मदेव, तुम्हें कोई नहीं पकड़ेगा। असल में, रात ही तुम लोग यहां आए और रात को ही मालगाड़ी रोककर, डाकुओं ने लूट की। दारोगा उसीकी छान-बीन करता फिर रहा है।" ब्रह्मदेव आश्वस्त हुआ। दोनों फिर चुप हो रहे। आकाश में बादलों की दौड़-धूप शुरू हो गई। इस बार जग्गू ने ही चुप्पी तोड़ी। उसने सकुचाते हुए पूछा—

"तुम लोग कहां जा रहे हो?"

"मुझे मालूम नहीं।"

"क्यों?"

"मालकिन ने मुझे कुछ नहीं बताया कि वे कहां जाएंगी।"

"तुम्हारी मालकिन की शादी हो चुकी है?"

"नहीं।"

"क्या घर से भागकर आई हैं?"

"हां।"

"तुम लोगों ने बहुत बुरा किया! जमाना बहुत खराब है। तुम लोगों को घर लौट जाना चाहिए।"

"मालकिन मानती ही नहीं है तो मैं क्या करूं?"

जग्गू ने कौतूहल से ब्रह्मदेव को देखा। ब्रह्मदेव के चेहरे पर न दुःख का भाव था, न सुख का। वह अनासक्त भाव से देख रहा था। उसके होंठों पर दयनीयता को व्यक्त करने वाली हलकी मुस्कराहट कांप रही थी।

"अच्छा चलो, मैं तुम्हारी मालकिन को समझाता हूं?"

दोनों चल पड़े। घर पहुंचकर, जग्गू बाहर बरामदे पर ही रुक गया। भीतर से ब्रह्मदेव की पुकार आने पर घर में पहुंचा। आंगन के उस पार, बरामदे में, खम्भे के सहारे मालकिन खड़ी थी—सद्य:स्नाता, स्निग्धता बिखेरती हुई, निश्छल सौंदर्य की साकार प्रतिमा-सी। उसके भीगे बाल खुले हुए थे, जिसपर पड़ा हुआ आंचल लगभग भीग चुका था। जग्गू ठगा-सा देखता रह गया।

"चिट्ठी गिरा दी ?"

"ऐं···हां।"—जग्गू चौंककर शरमा गया।

"एक्सप्रेस कर दिया था न ?"

"हां, ये रहे बाकी पैसे।"—जग्गू को पैसों का खयाल आया। उसने फेंटे से पैसे निकालकर ब्रह्मदेव को दे दिए। फिर उसने कुछ हिचकते हुए कहा—

"मैंने सुना है कि आप घर से भाग आई हैं! क्या यह सच है ?"

"भागी नहीं हूं, चली आई हूं।" मालकिन का सहज उत्तर था। जग्गू इस नारी की निर्भीकता से स्तम्भित रह गया। मालकिन बोलती गई—

"स्त्री का अपना घर तो कोई होता नहीं! हर स्त्री को, एक-न-एक दिन, अपने मां-बाप का घर छोड़ना ही पड़ता है। मैं भी उसी तरह छोड़कर चली आई हूं!"

"लेकिन, आपका···आपका ब्याह तो हुआ नहीं है ?"

"किसने कहा कि मेरा ब्याह नहीं हुआ है! मेरी मांग में आप सिन्दूर नहीं देख रहे हैं ?" कहते-कहते, मालकिन का मुखमंडल सात्विक क्रोध से आरक्त हो उठा। जग्गू ने झेंपते हुए कहा—

"ब्रह्मदेव ने कहा था।"

"वह तो बेवकूफ है! वह समझता है कि बाजे-गाजे के साथ, शोर-गुल करके, ब्राह्मण की उपस्थिति में ही ब्याह हो सकता है—वैसे नहीं।" जग्गू को सारी बात समझते देर नहीं लगी। उसने किंचित् गम्भीर स्वर में कहा—

"लेकिन समाज की मुहर लगे बिना, कोई सम्बन्ध पक्का नहीं होता।"

"मुझे समाज से कुछ लेना-देना नहीं है।"

"लेकिन यदि वह आदमी आपको धोखा दे दे, तो फिर समाज पर ही आप लोगों की जिम्मेदारी आ जाएगी। आदमी से बढ़कर खतरनाक जानवर, इस सृष्टि मे और कोई नहीं। इसलिए धोखा···"

"यह सब मेरी अपनी बातें हैं। आपको 'उनके' बारे मे, धोखा-फरेब जैसे शब्द बोलने का कोई अधिकार नहीं है। यदि मेरा यहां रहना आपको भारी लगता है, तो साफ-साफ कहिए—मैं अभी चली जाऊंगी।"—बोलते-

बोलते युवती का पूरा मुखमंडल लाल हो उठा। जग्गू को जैसे काठ मार गया। 'देखने में इतनी खूबसूरत, इतनी कोमल और जुबान ऐसी कड़वी—मिजाज इतना तेज ?'—जग्गू क्षण-भर सोचता रहा, कि अचानक उसे होश आया। उसने सकपकाते हुए कहा—

"नहीं, नहीं, ऐसी बात नहीं है। मैं तो आपके भले की बात कह रहा था ! वैसे यह आपका घर है—जब तक इच्छा हो रहिए। मुझे तो इस घर की जरूरत भी नहीं होती। खाली ही पड़ा रहता है।"—इतना कहकर जग्गू अचानक ही तेजी से घर के बाहर निकल आया। वह हैरान था—'यह कैसी स्त्री है ? परदेश में, किसी अनजान आदमी के घर ठहर गई है; लेकिन दिल मे किसी तरह का कोई डर नहीं। दारोगा और पुलिस ने घर की तलाशी ली, उसके नौकर को परेशान किया, लेकिन इस बड़ी घटना के बारे में उसने एक शब्द भी नहीं पूछा, और पहला प्रश्न उसने किया—'चिट्ठी गिरा दी ?' पता नहीं वह कैसा पुरुष है, जिसका जादू इस स्त्री के सिर पर चढ़कर, इस तीव्रता से बोल रहा है।

गुमटी पर पहुंचते ही उसने देखा, कि राघव उसकी खाट पर बैठा कुछ लिख रहा है। वह बोला—"आइए जगनारायण बाबू, मैं आपकी ही प्रतीक्षा कर रहा था।"

"कहिए।"

"जरा बैठिए तो, फिर इतमीनान से बात की जाए।"

जग्गू के बैठ जाने पर, राघव अपनी छोटी-छोटी आंखें घुमाता हुआ बोला—

"हुजूर के यहां, सुना कोई परी उतरी है।"

"क्या मतलब ?"—जग्गू ने भवें टेढ़ी करके पूछा।

"मतलब तो साफ है।"—राघव ने बेवकूफ की तरह हंसते हुए कहा।

"राघव जी, मैं सीधा आदमी हूं। मुझसे सीधे ढग से बात कीजिए। समझे ?"—जग्गू क्रोध से उबल उठा।

"सीधे ढग से ही पूछ रहा हूं, मित्र ! लेकिन, आप तो बेकार ही नाराज हुए जाते हैं। मैंने तो स्टेशन पर और आपके गांव में अजीबोगरीब चर्चा सुनी, और असलियत जानने के लिए आपसे पूछ लिया। यदि आपको

बुरा लगा, तो क्षमा मांगता हूं। खैर, छोड़िए इस बात को। मैं आपसे, दरअसल डकैती की बाबत कुछ पूछने आया हूं।"

"पूछिए।"—जग्गू का स्वर रूखा और कठोर था।

"मालगाड़ी आधे घंटे से ऊपर, गुमटी से कुछ ही दूरी पर खड़ी रही। फिर आपने इसकी खोज-खबर क्यों नहीं ली?"

"मैं पूरी रेल लाइन पर पहरा नहीं देता।"

"अच्छा, डेढ़ मील तक लाइन के साथ-साथ आने वाली सड़क, इसी गुमटी से रेलवे लाइन को काटती है। फिर लूट का माल तो इसी ओर से होकर गया होगा?"

"क्यों? पश्चिम की ओर से भी तो ले जाया जा सकता है?"

"सकने की बात छोड़िए; जो हुआ, सो कहिए!"

"देखिए राघव बाबू, आप व्यर्थ अपना और मेरा समय बर्बाद कर रहे हैं। इन बातों से कोई फायदा होने वाला नहीं है!"

"अच्छा, इस बात को भी छोड़िए।"—राघव ने हंसते हुए कहा और फिर वह अचानक ही गंभीर हो गया। जग्गू के निकट सरककर, धीमी आवाज में बोला—

"मुझे तो मालूम हो गया है कि किसने डाका डाला है।"—और यह कहकर, राघव गौर से जग्गू को देखता रहा। जग्गू किंचित् चेतन हो उठा और संभलकर बोला—

"फिर तो बड़ी खुशी की बात है। दारोगा से मिलकर, उसे गिरफ्तार करवाइए!"

"अरे जग्गू भाई, यही तो मुसीबत है! दारोगा तो उस डाकू की मुट्ठी में है।"—जग्गू आवश्यकता से अधिक सावधान होता जा रहा है…यह बात राघव से छिपी नहीं रही। जग्गू ने अपनी आंखें बचाते हुए पूछा—

"कौन है वह आदमी?"

"जग्गू भाई, मुझसे मत बनो! पूरा इलाका तुम्हें ईमानदार और सच्चा आदमी मानता है। आज तक तुमने किसीकी खुशामद नहीं की, किसीसे दबकर, कभी कोई गलत काम नहीं किया। सच्ची और खरी बात कहने के कारण, सभी तुम्हारे दुश्मन हो गए, फिर भी तुमने परवाह नहीं की और

तुम अपनी राह पर चलते रहे। लेकिन आज तुम्हें क्या हो गया है कि सच्ची बात कहने से डर रहे हो? तुम अच्छी तरह जानते हो कि डाका किसने डाला है, फिर भी तुम मुझसे पूछते हो? अगर मुझसे ही जानना चाहते हो, तो सुनो—डाका डालने वाले का नाम है बाबू बिसेसर सिंह! बोलो, सच बात है या नहीं?"

राघव अपनी अनोखे ढंग की भाषण-शैली का असर देखने के लिए, जग्गू को कुछ पल घूरता रहा।

"मैं नहीं जानता।" जग्गू ने सिर नीचा किए-किए कहा। राघव उछलकर खड़ा हो गया, और खुशी से थिरकता हुआ बोला—

"बस, मैं जान गया कि तुम सभी बातें जानते हो।" जग्गू आश्चर्य और झेंप के साथ राघव को देख रहा था। राघव बोलता गया—

"अगर तुम अनजान होते, तो बिसेसर सिंह का नाम सुनते ही चौंक उठते, आश्चर्य से देखते रह जाते और परेशानी-हैरानी की रेखाएं तुम्हारे चेहरे को विकृत बना देतीं। लेकिन···लेकिन तुम सब-कुछ जानते हो, प्यारे! बस, मैं अभी जाकर ठाकुर बिसेसर सिंह का हिसाब-किताब दुरुस्त करता हूं। तुम्हें गवाही देनी होगी!" कहता हुआ वह जाने लगा।

"सुनिए तो!" जग्गू ने घबराकर पुकारा।

राघव कुछ दूर निकल गया था। वह रुक गया और घूमकर वहीं से बोला—

"जग्गू भइया, तुमने सारी उम्र सत्य की राह पर चलने में बिताई है। अब इस उम्र में, झूठ का पल्ला मत पकड़ो!" इतना कहकर, वह तेजी से स्टेशन की ओर चला गया।

जग्गू की परेशानी और बढ़ गई। जितना ही वह इस जाल से छूटने की कोशिश करता, उतना ही उलझता जाता। 'अब क्या होगा?' यही प्रश्न उसे पागल बनाए जा रहा था, कि सामने से बिसेसर सिंह आते दीख पड़े।

"किस चिंता में डूबे हो, जग्गू भाई?"—बिसेसर सिंह ने आते ही पूछा।

'अभी राघव यहां आया था। उसे किसी तरह मालूम हो गया है कि

आपने ही डाका डलवाया है, और वह कुछ कार्रवाई करने गया है। अब यदि मुझसे पूछा गया, तो मैं साफ-साफ सभी बातें बता दूंगा। मुझे दोष मत दीजिएगा! मुझसे ज्यादा झूठ बोला नहीं जाएगा।"

"तुम राघव की चिंता मत करो, जग्गू भाई। वह क्या खाकर मेरे खिलाफ कार्रवाई करेगा! यह लो अपना हिस्सा।" बिसेसर सिंह ने मुस्कराते हुए, नोटों की एक गड्डी जग्गू की ओर बढ़ाई।

"मुझे इसकी कोई जरूरत नहीं है। आप ही रखिए!"

"अरे, रख भी लो! घर आई लक्ष्मी को इस तरह नहीं ठुकराते!"

"लक्ष्मी के कई रूप होते हैं। यह लक्ष्मी नहीं है बिसेसर बाबू, चंडिका है! अगर आप इसे बलपूर्वक अपने पास रखने की कोशिश करेंगे, तो यह आपका सत्यानाश कर देगी!"

जग्गू क्रोध और घृणा से कांप रहा था। बिसेसर बाबू ने हँसते हुए कहा—

"तुम बिलकुल पागल हो! अच्छा, मैं चलता हू। जरा रघुआ का प्रबंध कर दू।" बिसेसर सिंह की बात सुनकर, जग्गू ने चौंककर देखा—बिसेसर सिंह का सौम्य चेहरा, विकृत और भयानक हो उठा था। न जाने क्यों, जग्गू भय से कांप उठा। आठ-नौ घंटे में ही, जग्गू ने बहुत-सी नई बातें देख ली थी। इसी बीच वह बिसेसर सिंह को भी पहचान गया था। उसकी नजर में, बिसेसर सिंह जैसा खतरनाक और चाडाल आदमी, संसार में कोई नही था। 'अब राघव का क्या होगा?'— इसी सोच मे जग्गू मरा जा रहा था।

४

देर हो चुकी थी, इसलिए जग्गू ने पाच-छः मोटी-मोटी रोटिया सेंक लीं, और प्याज-नमक-मिर्च के साथ खाने बैठा। अभी दो-तीन कौर ही खाया होगा, कि मुनिदेव हांफता हुआ आ पहुंचा। दौड़ने से उसकी सांस फूल रही थी, भय से उसका चेहरा पीला पड़ा हुआ था और घबराहट से

उसके होंठ-कंठ सूख रहे थे। जग्गू के पास पहुंचते ही, वह हांफता हुआ किसी कदर बोला—

"जल्दी चलो, जग्गू। अनर्थ हो गया!"

"क्या हुआ?" जग्गू ने मुंह तक आया हुआ कौर थाल में गिराते हुए घबराकर पूछा।

"अरे, उठो भी तो! रास्ते में सभी बातें बता दूंगा। जल्दी चलो!" मुनिदेव उसकी बांह पकड़कर उठाता हुआ बोला।

रास्ते में चलते-चलते जो कुछ सुना, उससे जग्गू ग्लानि और घृणा से भीतर-ही-भीतर रो उठा। अभी मुश्किल से दो-तीन घंटे हुए होंगे—बिसेसर सिंह के गुमटी पर से गए हुए; और इतनी ही देर में सारी घटना घट गई। बात यह हुई कि राघव चार बजे की गाड़ी से मुजफ्फरपुर जाने वाला था। उस बेवकूफ नेता ने स्टेशन पर शोर कर दिया, कि बिसेसर सिंह ने ही डाका डलवाया है और दारोगा उसकी मुट्ठी में है। इसलिए वह स्वयं मुजफ्फरपुर जाकर, एस० डी० ओ० को सारी बातें बताएगा। सबके मन में इसी तरह की शंकाएं घर किए हुए थीं, लेकिन खुलकर कोई कुछ नहीं बोलता था। हवा अनुकूल थी। राघव की बात आग की तरह फैल गई। लोगों की जुबान पर दो ही बातें थीं—बिसेसर सिंह का डकैती से सम्बन्ध और जग्गू का राजस्थानी औरत से सम्बन्ध। इसी बीच देसौरा के कुलदीप और मुनेश्वर, एक रिक्शा लेकर मदनपुर गए और वहां से उसी रिक्शे पर लौटकर स्टेशन आए। मुनेश्वर ने रिक्शेवाले को आठ आने दिए। रेट के मुताबिक डेढ़ रुपया होता था। रिक्शेवाले ने यह कहकर भयंकर अपराध कर दिया कि "बाबू साहब, ये पैसे भी आप ही रखिए!" बस उन दोनों ने बेचारे रिक्शेवाले को मारना शुरू किया। शोरगुल सुनकर राघव वहां आ पहुंचा। वह रिक्शा-यूनियन का नेता था। उसने बीच-बचाव करना चाहा, लेकिन देसौरा के दोनों गजेड़ी बाबू साहब, शायद राघव की ही प्रतीक्षा कर रहे थे। उन दोनों ने मिलकर राघव को इतना पीटा, कि वह बेहोश हो गया।

जग्गू जब स्टेशन पहुंचा, तब मुनिदेव की दुकान पर भीड़ लगी हुई थी। बाढ़-पीड़ित गरीब, सहमे हुए दूर खड़े थे। राघव खाट पर लेटा

कराह रहा था। उसका सिर एक पुरानी धोती से बंधा हुआ था, जिसमें दो-तीन जगह खून के धब्बे पड़े थे। उसका मुंह सूजा हुआ था, निचला होंठ कट गया था, बायीं आंख सूजकर ढक गई थी, स्याह पड़ गई थी और उसका कुर्ता-पायजामा चिथड़ा हो रहा था। जगू को देखते ही, राघव के होंठों पर उद्देश्यपूर्ण मुस्कराहट दौड़ गई। वह धीमे स्वर में बोला—

"देखो, जगू भाई ! मैं मुजफ्फरपुर जाकर एस० डी० ओ० से नहीं मिल पाऊं, इसीलिए यह जाल रचा गया है। ऐसे हैं—तुम्हारे बाबू बिसेसर सिंह, जमींदार, मुखिया !"

"फिर तुम अनाप-शनाप बकने लगे ? चुपचाप पड़े रहो ! इन झंझटों में पड़ने की तुम्हें क्या जरूरत है ?"—वृद्ध सेठ महंगीराम ने कृत्रिम स्नेह के वशीभूत होकर उसे डपट दिया। राघव मुस्कराता हुआ, क्षीण स्वर में बोला—

"आप ठीक कहते हैं सेठजी !"

"ठीक तो कहता ही हूं। लाख बार तुमको समझाया है, कि बड़े लोगों के झगड़े में मत पड़ो ! लेकिन, तुम मेरी बात सुनो तब न ! अरे, मैं तुम्हारा बूढ़ा बाप हूं। जो कहूंगा, तुम्हारे भले के लिए कहूंगा !"

भीड़ में खड़े कुछ लोगों ने भी सेठ की हां-मे-हां मिलाई। लेकिन वहां कोई ऐसा आदमी नहीं था, जो बिसेसर सिंह के खिलाफ कुछ बोलता। स्पष्ट था, कि बिसेसर सिंह के इशारे पर ही राघव को मार लगी थी। और कुलदीप और मुनेश्वर, बिसेसर सिंह के दो कुत्ते थे—जो उनकी रोटी पर पलते, और उनके इशारे पर, गरीबों का गला घोंट देने को तत्पर रहते। दोनों गंजेड़ी और अफीमची थे। सवर्ण जाति के होते हुए भी, रात के अंधेरे में, दुसाध-चमार के घर जाकर लबनी-की-लबनी ताड़ी पी जाते, वहीं पर किसी-के घर में सेंध डालने की योजना बनाते, रात-भर चोरी करते और सुबह होते ही खादी का कुरता, खादी की धोती और गांधी टोपी पहनकर पाक-साफ इंसान बन जाते, छुआछूत का विचार रखते और मुखमंडल पर गहन-गाम्भीर्य लिए, गांववालों को अनावश्यक राय देते फिरते। उन्हें देखकर लगता, जैसे भूदानी नेता विनोबा की मंडली के दो जीवन-दानी, रास्ता भूलकर इधर भटक आये हों।

"अच्छा सेठजी, आप कृपा करके चुप रहिए !"—मुनिदेव ने खीझकर कहा। सेठजी ऐसे मौके पर चूकनेवाले नहीं थे। उन्होंने छूटते ही कहा—

"मैं तो चुप हो जाता हूं, लेकिन इसके दोस्त बनते हो तो कुछ दवा-दारू का प्रबंध भी करोगे, या ऐसे ही तमाशा दिखाते फिरोगे? क्यों भाइयो! मैं ठीक कहता हूं या गलत? अभी इसके लिए दवा-दारू का प्रबंध होना चाहिए। आप सब लोग चंदा इकट्ठा कीजिए, और इसे मदनपुर अस्पताल ले जाइए।"—सेठजी ने अपनी तरफ से दो रुपये निकालकर, बड़े गर्व से मुनिदेव की ओर बढ़ाए।

"अपना रुपया अपनी जेब में रखिए!"—मुनिदेव भड़क उठा। लेकिन जब भीड़ से आवाजें आईं कि 'अरे ले क्यों नहीं लेते? ठीक तो कहते हैं सेठजी'—तब मुनिदेव ने उपेक्षापूर्वक सेठ के हाथ से रुपये ले लिए। चन्द मिनटों में चौदह-पन्द्रह रुपये इकट्ठे हो गये। जग्गू चुपचाप खड़ा था। उसके दिमाग में तूफान उठ रहा था। मदनपुर ले जाने के लिए, जब मुनिदेव एक रिक्शा पर राघव को लेकर बैठ गया, तब राघव ने जग्गू को अपने पास बुलाया और कहा—

"मैं जो काम नहीं कर पाया, उसे आप ही कर सकेंगे, जग्गू भाई! इसीलिए आपको बुलवाया है।"

"कौन-सा काम?"

"मुजफ्फरपुर जाकर एस० डी० ओ० को···" अभी बात खतम भी नहीं हुई थी, कि बिसेसर सिंह भीड़ चीरते हुए रिक्शा के पास आ खड़े हुए। भीड़ खामोश थी।

राघव को देखते ही वे मानो दुःख से भर उठे। उनका चेहरा वेदना, करुणा और सहानुभूति की रेखाओं से आक्रांत हो उठा। अनायास बोल उठे—

"अहा हा, क्या कर दिया उन बदमाशों ने! मुझे तो अभी खबर मिली है और भागा चला आ रहा हूं। लेकिन यह क्या कर रहे हो? इसे रिक्शा पर बैठाकर कहां लिए जा रहे हो?"—अंतिम प्रश्न उन्होंने इस प्रकार चौंककर पूछा, जैसे बिच्छू ने डंक मार दिया हो।

"मदनपुर अस्पताल।"—मुनिदेव ने जल-भुनकर कहा। राघव के

चेहरे पर अब भी व्यंग्यात्मक मुस्कराहट थिरक रही थी। बिसेसर सिंह अधिकारपूर्वक गरज उठे—

"नहीं जाना होगा, मदनपुर अस्पताल !"

"क्यों ?"—मुनिदेव ने बिगड़कर पूछा।

"हम लोग क्या मर गए हैं, कि तुम लौंडों को मनमानी करने दें ! बेचारा राघव घाव की पीड़ा से मरा जा रहा है, और तुम इसे रिक्शा पर बैठाकर, इस धूप में, चार मील दूर मदनपुर लिए जा रहे हो ! इसे मारना चाहते हो क्या ? तुम लोगों को थोड़ी भी अकल नहीं है ? बिलकुल पागल हो गए हो ?"

"तो क्या मैं यहीं पड़ा-पड़ा मर जाऊं ?" राघव ने पूछा।

"नहीं भइया राघव ! तुम्हें मरने कौन देगा ? मैं किस दिन काम आऊंगा ? डाक्टर नहीं आएगा ?"—बिसेसर सिंह ने पुचकारते हुए कहा।

नहीं चाहते हुए भी, राघव को रिक्शा से उतरना पड़ा। डाक्टर को बुलाने के लिए दो आदमी साइकिल पर दौड़ाए गए। सब लोग जानते थे कि बिसेसर सिंह ने ही राघव की यह दशा करवाई है, सब लोग समझते थे कि बिसेसर सिंह डाकू और जुल्मी आदमी हैं; लेकिन पता नहीं क्यों, बिसेसर सिंह के सामने, कोई उनकी बात का विरोध नहीं कर पाता। और विरोध करनेवाला भी झख मारकर वही काम करता, जो बिसेसर सिंह करवाना चाहते। अजीब ताकत थी उस आदमी में ! मन-ही-मन सभी उनसे भय खाते, कभी-न-कभी हर आदमी को उनकी जरूरत पड़ जाती और वे हर आदमी की मदद करते। समर्थ और सत्तावान का विरोध करने के लिए वैरागी का मन, शूर का तन और संतोष का धन चाहिए। तीनों का संयोग मिलता कहां है !

राघव को सहानुभूति और सक्रिय सहायता की आवश्यकता थी। बिसेसर सिंह ने तुरंत आधा सेर गरम दूध मंगवाया और उसमें हल्दी मिलाकर, राघव को अपने हाथों से पिलाया। उन्होंने पास ही के खादी भण्डार से एक जोड़ी अच्छी धोती और एक बनी-बनाई गंजी मंगवाई, राघव से जबरदस्ती कपड़े बदलवाए और बहुत ही सहानुभूतिपूर्वक, अपने स्वाभाविक पितृ-भाव से, थोड़ी-थोड़ी देर पर हाल-चाल पूछते रहे। डाक्टर ने आकर

मरहम-पट्टी बांध दी। बिसेसर सिंह ने जरूरत न होने पर भी एक सुई दिलवा दी और सारा खर्च, बिना किसी हिचक के, स्वयं किया। विरोधी होने पर भी, राघव उनके प्रति आभार से दब गया।

डाक्टर साहब को कुछ दूर तक बिसेसर सिंह स्वयं पहुंचा आए, और पन्द्रह-बीस मिनट बाद लौटकर आए, तो राघव के पास देर तक बैठे रहे। जग्गू चुपचाप एक ओर बैठा, यह सब कुछ देख रहा था और न जाने क्या कुछ समझने का प्रयत्न कर रहा था। बिसेसर सिंह का चरित्र, एक अछोर रहस्य बनकर, जग्गू की बुद्धि का उपहास कर रहा था। उससे अधिक नहीं सहा गया, तो उठकर चलने को तैयार हुआ कि बिसेसर सिंह बोल उठे—

"चल रहे हो क्या ?"

"जी हां।"

"चलो, मैं भी चलता हू !"

दोनों चुपचाप चलते रहे। स्टेशन पीछे रह गया, होम सिगनल भी निकल गया, लेकिन दोनों चुप रहे। अंत में जग्गू से नहीं रहा गया—

"आपने ऐसा अन्याय क्यों किया ?"

"कैसा अन्याय ?" बिसेसर सिंह ने सहज-साधारण ढंग से पूछा। जग्गू उनके इस अभिनय पर, घृणा से फूत्कार कर उठा—

"आपने मालगाड़ी लूटकर हजारों बाढ-पीडितों के पेट पर लात मारी, गांववालो के घर की तलाशी करवाकर, उन्हें अपमानित करवाया और बेचारे राघव को, बिना कसूर के, पिटवाकर अधमरा कर दिया। फिर भी पूछते है—कैसा अन्याय ?"

बिसेसर सिंह ठठाकर हंस पड़े। बोले—

"चलो, तुममें कुछ समझने की बुद्धि तो आई। लेकिन जग्गू भाई, कोई किसीपर अन्याय नहीं करता। हर आदमी, बहुधा अपनी जान बचाने की कोशिश मे, दूसरों का नुकसान कर बैठता है। यह नुकसान कभी अनजाने हो जाता है, और कभी जानबूझकर। यही संसार का नियम है। एक को लाभ, तो दूसरे को नुकसान !"

"यह कौन-सा नियम है कि दूसरों का हक छीन लो और जो इसके खिलाफ जुबान खोले, उसकी जुबान काट लो ! आपको ऐसी बात बोलते

शर्म भी नहीं आती ?"

"यही आज का नियम है, जग्गू भाई ! सरकार मुझसे जमींदारी छीन रही है और यदि मैं इन्कार करूं, तो जुबान दूर, जिन्दगी से भी हाथ धोना पड़े। फिर मुझे भी तो अपना और अपने परिवार का भविष्य देखना है। तुम्हीं बताओ, अब इस उम्र में, मुझे नौकरी तो कोई देगा नहीं ! फिर क्या करूं ? रोटी का उपाय तो करना ही है !"

जग्गू फिर निरुत्तर हो गया, मगर घृणा के अतिरेक से उसका सिर घूमने लगा। 'बिसेसरसिंह आदमी नहीं, हैवान है। इसकी सारी बातें हैवानियत से भरी हैं। इसलिए इससे मुंह-लगना व्यर्थ है।' ऐसा सोचकर वह चुप ही रहा। गुमटी पर वे दोनों अलग हो गए। जग्गू अपनी दुर्बलता पर मन-ही-मन मरा जा रहा था। शाम हो चुकी थी। आकाश में घनी-गहरी-काली बदली व्याप गई थी। हवा गुम थी। दूर-पास से मेंढ़कों के टर्र-टों-टर्र-टों की आवाज आ रही थी। फिर पानी बरसेगा—यह अनुमान लगाकर जग्गू गुमटी के भीतर जाना ही चाहता था, कि उसकी नजर गुमटी के पिछवाड़े जाकर अटक गई। वहां ब्रह्मदेव खाट पर बैठा था।

"कहो ब्रह्मदेव, कब से बैठे हो ?" जग्गू अंगोछे से हाथ-मुंह पोंछता हुआ बोला—"मालकिन ने कहा है कि आप भी घर पर ही खाना खाएं।"

"नहीं भइया, मैं तो आज बीस साल से खुद बनाता हूं और खाता हूं। बाहर कहीं नहीं खाता !"

"बाहर खाने के लिए कौन कहता है ? वह तो आपका ही घर है !"

"सो तो ठीक है, लेकिन दूसरे के हाथ का बनाया भी मैं नहीं खाता। इसलिए माफ कर दो। और आज तो मेरा मन भी ठीक नहीं है। वैसे भी, कुछ खाने की इच्छा नहीं है।"

ब्रह्मदेव चुपचाप लौट गया। हलकी-हलकी बूंदें पड़ने लगी थीं, इसलिए उसने खाट गुमटी के भीतर कर ली और हाथ-बत्ती जला ली। खाट पर लेटे-लेटे, उसके मन में बहुत-से विचार आने लगे—आज तक उसने जो कुछ देखा-सुना, क्या वह सब झूठ था ? बचपन से उसने जो सच्चाई और सरलता की जिन्दगी बिताई, सो क्या गलत किया ? क्या उसका जीवन व्यर्थ ही बीता ? समाज में छल-प्रपंच, स्वार्थ, घृणा और गन्दगी देखकर,

उसने अपने को समाज से अलग रखा। लोग अच्छे नहीं है, लोग अच्छे नहीं हो सकते; वह स्वयं अच्छा है, पवित्र है; इसलिए उसे अपनी पवित्रता बनाए रखनी चाहिए—उसे सबसे अलग रहना चाहिए। दलदल के पास जाकर वह भी दलदल में फसेगा। लेकिन···कल से क्या हो रहा है? आगे क्या होगा? वह अपनी पवित्रता, अपनी ईमानदारी कहां खो बैठा? उसे क्या हो गया है? वह बोलता क्यों नहीं? चीखकर, पुकारकर कहता क्यो नही कि दोषी कौन है? क्या अब तक वह इसीलिए अच्छा बना रहा चूंकि बुरा बनने का मौका नही मिला? जग्गू बहुत देर तक घुटन से तड़फड़ाता रहा, लेकिन उसे कोई राह नही मिली। बेचैनी बढ़ती ही गई। वह गुमटी के बाहर निकल आया। बूदा-बांदी हो रही थी। वह पानी मे भीगता हुआ, चक्कर काटता रहा, लेकिन उसके मन की बेचैनी शांत नहीं हुई। रात हो आई थी। वह फिर गुमटी में लौट आया, और रामायण खोलकर सस्वर पढ़ने लगा—

मातु मंदि मैं साधु सुचाली, उर अस आनत कोटि कुचाली।
करइ कि कोदव बालि सुसाली, मुकता प्रसव कि संबुक काली।
सपनेहुं दोसक लेसु न काहू, मोर अभाग उदधि अवगाहू···

जग्गू इसके आगे नही पढ़ सका, वह आंखें बंद किए पड़ा रहा। उसकी आखो से आसू की धार बह चली, विषाद से हृदय फटने लगा; लेकिन वह समझ नही पा रहा था कि वह चाहता क्या है? संसार में, उसे अपना कहने वाला कोई नही था—भाई-बहन, मां-बाप सभी जा चुके थे। उसकी नजर के सामने जो कुछ भी आया—जाने के लिए ही आया; और इस अस्थिरता ने उसके मन में जो असमय ही वैराग्य-भाव भर दिया था, वह आज अकेले में, उसे शत-सहस्र रूप धरकर डसने लगा। समाज से भागनेवाला, अपनी छाया से भी डरता है। आज जग्गू की अपनी आत्मा ही परायी बनकर, उसका पीछा कर रही थी।

"बाबू जी!"

ब्रह्मदेव की आवाज सुनकर जग्गू चौक उठा।

"मालकिन कहती हैं कि यदि आप नहीं खाएंगे, तो वे भी नहीं खाएंगी।"

"ऐं···अच्छा···अच्छा चलो, चलता हूं।" अपनी मनःस्थिति छिपाने की शीघ्रता में, वह घबराकर अनजाने ही ब्रह्मदेव का आग्रह स्वीकार कर बैठा। हाथ-बत्ती की रोशनी में ब्रह्मदेव उसकी आंखें और चेहरा न देख ले, इसलिए जग्गू जल्दी से बाहर अंधेरे में निकल आया। ब्रह्मदेव चुपचाप उसके पीछे हो लिया।

चारों ओर सन्नाटा और अंधकार व्याप रहा था। झींसी पड़ रही थी। दिन डूबते ही, गाव वाले खा-पीकर सोने की तैयारी में लग जाते है। धान की रोपनी भी सबकी खत्म हो चुकी थी। इसलिए काम के नाम पर, एक-दूसरे के सम्बन्ध में गप्पें मारना और लम्बी तानकर सो रहना —यही दिन-चर्या रह गई थी। जग्गू को आज रात का सन्नाटा बड़ा भयावना और बीभत्स लग रहा था।

जग्गू को देखते ही मालकिन मुस्कराने लगी, बोली कुछ नहीं। खाना परोसकर ले आयी। जग्गू भी चुपचाप खाने लगा।

"मुझे रसोई बनानी आती नहीं है, इसलिए आपको यह खाना अच्छा नही लगा होगा!"

जग्गू चुपचाप खाता रहा। उसके मन में तो तूफान उठ रहा था। शादी-ब्याह या श्राद्ध-कर्म के अवसर पर ही वह किसीके यहां खाने जाया करता, अन्यथा नही। और आज वह एक अनजान, विजातीय स्त्री के हाथ की बनी रसोई, उसीके सामने बैठकर, चुपचाप ग्रहण कर रहा था। अचानक ही क्या हो गया कि बिलकुल नयी-नयी बातें उसे देखने-समझने को मिल रही थी, लेकिन उसके पास इसका कोई जवाब नहीं था—कोई तर्क नही था कि वह ऐसा क्यों किए जा रहा था। वह निमित्त-मात्र बनकर रह गया था।

"आप सोच रहे हैं कि कहां से यह बोझ बनकर आ पड़ी।" मालकिन ने मुस्कराते हुए कहा। जग्गू चौंक उठा।

"नही तो, बल्कि बोझ तो मैं हूं कि आपका खाना खा रहा हूं।"

"यह तो मजबूरी है!" मालकिन ने कहा। जग्गू ने सिर उठाकर मालकिन को देखा। वह फिर बोली—"मैं इतना तो समझ ही सकती हूं कि आप बे-मन से खाना खा रहे हैं।" जग्गू का स्वाभिमान जाग्रत् हो उठा। एक

नारी ने उसे चुनौती दी थी। वह अपनी परेशानियों को क्षण-भर के लिए भूल बैठा और किंचित् दम्भ से हंसता हुआ बोला—"आप भ्रम में पड़ी हैं, मालकिन ! मैं अपने मन का आदमी हूं। जो ठीक समझता हूं, वही करता हू। मजबूरी के नाम पर कुछ करनेवाले, ढोंगी होते हैं !"

"एकाध पूरी और लीजिए।"

"नही, अब कुछ नहीं चाहिए।"

"आपको खाना अच्छा नहीं लगा ?"

"बहुत बढ़िया बना है। ऐसा भोजन मेरे भाग्य में कहां !"

"क्या आप हमेशा अकेले रहते हैं ?"

"हां।" संक्षिप्त उत्तर देकर, जग्गू हाथ-मुंह धोने के लिए उठ गया। उस समय जोर की बारिश होने लगी थी।

ब्रह्म देव के हाथ से सुपारी-लवंग लेकर जग्गू को खुद देते हुए, मालकिन ने बड़े निश्छल भाव से पूछा—"आपने शादी क्यों नही की ?"

जग्गू हंसता हुआ, टालने के भाव से बोला—"शादी करता ही क्यों ...यही समझ में नही आया। इसीलिए नही की !"

"बहाने मत बनाइए।"

"मैं ठीक कह रहा हू मालकिन !"

"देखिए, मैं आपकी मालकिन नहीं हूं ! मेरा नाम है शारदा। आप मुझे शारदा ही कहकर पुकारिये।"

जग्गू इस लड़की की निश्छलता और सरलता पर मुग्ध होता जा रहा था। गाव में ऐसी वाचाल और निर्भय लड़कियां नही होतीं। वे तो दूसरों के सामने बोल भी नहीं पातीं। जग्गू ने गाव के पुस्तकालय की लगभग सभी पुस्तके पढ़ ली थीं। उसने बहुत-से उपन्यास भी पढ़े थे। जग्गू को लग रहा था—शारदा लड़की नही है; बल्कि किसी उपन्यास की पात्र है।

जग्गू ने हंसते हुए कहा—"अब शारदा कहकर ही बुलाऊंगा।"

"अच्छा, एक बात कहूं ?" शारदा ने हंसती हुई आंखों से जग्गू की ओर देखते हुए पूछा—"आप स्वीकार करेंगे ?"

"पहले बात तो कहिए !"

"नहीं, पहले वचन दीजिए !" शारदा के स्वर में मान करवाने की

ध्वनि थी। जग्गू न जाने क्यों सावधान हो गया। घटनाओं की बाढ़ से वह अस्थिर हो उठा था।

"देखिए शारदाजी···।"

" 'जी' नहीं,···केवल शारदा···"शारदा ने बात काटते हुए कहा—"मैं आपसे छोटी हूं। छोटी बहन को भी कहीं 'जी' कहकर बुलाया जाता है?" जग्गू क्षण-भर अवाक् देखता रह गया, उस धृष्ट लड़की को। लेकिन उसकी स्निग्धता ने जग्गू में करुणा भर दी।

वह अपनी हार मानता हुआ बोला—"कहिए, क्या बात है?"

"कल से आप यहीं अपने घर में रहा कीजिए।"

"क्यों?"

"हर वक्त कोई-न-कोई आता ही रहता है।"

"कौन आता है यहां?"

"आपके गांववाले आपको ढूंढ़ने आते हैं।"

"लेकिन गांववालों को पता है कि मैं घर पर नहीं, गुमटी पर ही रहता हूं। फिर यहां क्या करने आते हैं?" क्रोधमिश्रित कौतूहल से जग्गू की भृकुटी टेढ़ी हो गयी, आंखें छोटी हो गयीं और होंठ खुले-के-खुले रह गये। शारदा ने कोई जवाब नहीं दिया। जग्गू वहीं बरामदे में इधर-उधर चक्कर काटने लगा।

"आपको मेरे चलते काफी परेशानी उठानी पड़ रही है!" शारदा ने दयनीय स्वर में कहा। जग्गू विचलित हो उठा। पता नहीं क्यों, जग्गू इस लड़की से मन-ही-मन स्नेह करने लगा था। उसमें मोह उत्पन्न हो गया था। उसने जरा झिझकते हुए कहा—"नहीं, परेशानी की तो कोई बात नहीं है; लेकिन मुझे तो ड्यूटी भी करनी होती है, इसीलिए थोड़ी चिन्ता में पड़ गया।"

"तो छोड़िए, मैं निपट लूंगी आपके गांववालों से। चन्द रोज की ही तो बात है। फिर तो 'वह' आ ही जाएंगे।" आत्मविश्वास और आकस्मिक उल्लास से शारदा मुखर हो उठी।

"आपने अब तक खाना नहीं खाया?"

"खा लूंगी।"

"अच्छा, तो आप खाना खाइए, मैं चलता हूं।"

"इस बारिश में ?"

"अरे, बारिश तो आती ही रहती है। हम किसान-मजदूरों के लिए तो वरदान है यह !" और अगोछा सिर पर रखकर जग्ग जल्दी-जल्दी आंगन पार करता हुआ, घर के बाहर हो गया।

पानी बरसे जा रहा था। गाव में कुत्ते भूंक रहे थे। जग्गू ने देखा—दूर पर बिसेसर सिंह के दलान में, लालटेन की रोशनी झिलमिल कर रही थी। कहीं कोई पचम स्वर में बारहमासा गा रहा था, जिसकी आवाज वर्षा के कारण अस्पष्ट और कातर हो रही थी।

इन तमाम बातो से, इन तमाम घटनाओं से जग्गू का मन भीगता जा रहा था। उसके मन में एक अजीब भाव जन्म ले रहा था—नयापन का भाव, सहने और सामना करने का भाव, अपनी वृत्तियो, इन्द्रियो को समझने का भाव और जिन्दगी की मुसीबतों में डूबने-भीगने का भाव। गरज यह कि वह ऊब और तटस्थता से तंग आकर, दिलचस्पी और जिज्ञासा के अछोर आकाश मे उड़ जाने को, अपने पंख तौल रहा था।

५

सुबह होते ही जग्गू का मन अपने घर की ओर भागने लगा। निदान वह गुमटी पर ठहरने के बजाय अनायास ही घर जा पहुंचा। शारदा चाय पी रही थी। जग्गू को देखते ही खुशी से बोल उठी—"आपकी ही याद कर रही थी।"

"मेरी ?"

"हा, सोच रही थी कि आप आ जाते तो साथ-साथ चाय पीते। बड़ा मजा आता ! अभी बनाती हूं। चाय का पानी बिल्कुल तैयार है।"

"नही, नही, रहने दीजिए। मुझे चाय पीने की आदत नहीं है।"

"आप बैठिए तो !" और शारदा भागकर मिनटों में एक कप चाय

बनाकर ले आयी। बोली—

"मुझे बचपन से चाय पीने की आदत है। 'उन्हें' तो चाय से इतना प्रेम है कि दिन-भर में बीस-पच्चीस कप पी जाते हैं। आप 'उन्हें' नाश्ता न दीजिए, भोजन भी नहीं दीजिए। बस, चाय-पर-चाय देते रहिए। 'उन्हें' और कुछ नहीं चाहिए। चाय और सिगरेट और शाम को···। आप बिल्कुल नहीं पीते?"—शारदा इतनी शीघ्रता से बोल रही थी कि जग्गू उसके बोलने की तेज शैली और चेहरे की भगिमा में ही खो चुका था। वह शारदा के मुख से निकले हुए वाक्यों का ओर-छोर पकड़ नहीं पाया। शारदा ने अपना प्रश्न दुहराया, तो उसका ध्यान टूटा। झेंपता हुआ बोला—

"कभी-कभी जब स्टेशन जाता हूं, तब मुनिदेव पिला देता है।"

"यह मुनिदेव कौन है?"

"मेरे बचपन का साथी है। स्टेशन पर सिलाई का काम करता है। वही मुझे जबर्दस्ती चाय पिला दिया करता है।"

"मुझे भी 'उन्होंने' ही यह आदत डाल दी। उनके लिए बनाकर लाती थी, तो मुझे भी पिला दिया करते थे। क्या करती—पी लेती थी। और अब एक दिन चाय नहीं मिले, तो मन न जाने कैसा करने लगता है।"

"आप···बचपन से ही अपने···पति को जानती हैं?"—जग्गू ने झिझकते हुए पूछा। वास्तव में वह समझ नहीं पा रहा था, कि शारदा अपने प्रेमी के प्रति व्यामोह से ग्रसित है या किसी अलौकिक प्रेम के वशीभूत है। न जाने क्यों, वह शारदा के तथाकथित पति के चरित्र के प्रति शंकित हो उठा था—'वह कैसा आदमी है, जिसने ऐसी भोली-भाली लड़की को, इस भयावह संसार-सागर में अकेली गोता लगाने को मजबूर कर दिया है, और खुद कहीं किनारे जा बैठा है?'

वह सहज सरलता से बोली—"नहीं, जब मैं बारह साल की थी, तब से।"

"अच्छा!"

"वे मेरे घर आया करते थे। मेरे बड़े भाई के साथी थे। मुझे वे पगली कहकर बुलाया करते। मैं उनसे लड़ती भी बहुत थी। हालांकि वे मुझसे दस साल बड़े हैं, लेकिन हम दोनों खूब लड़ते थे—बन्दर की तरह!"—

कहकर शारदा खिलखिलाकर हंसने लगी। जग्गू को लग रहा था कि हो-न-हो, इस सरल लड़की को छला गया है, यह बिलकुल भोली और निश्छल लड़की है। पढ़े-लिखे, अच्छे खाते-पीते घर की मालूम होती है; लेकिन इसे दुनिया की बातों का कोई अनुभव नही है।

"वे करते क्या हैं ?"—जग्गू ने पूछा। शारदा उसी सरलता से बोली —"यह तो मुझे ठीक-ठीक मालूम नहीं है। जयपुर मे तो वे आठ साल से रहते है। कुछ दिनो तक शायद पढते रहे, उसके बाद किसी चीज का बिजनेस करने लगे। अब तो आप देख ही लीजिएगा कि···"

"जग्गू भाई हैं ?"—अभी शारदा ने वाक्य पूरा भी नहीं किया था, कि बाहर से किसीकी आवाज आई।

जग्गू ने बाहर जाकर देखा कि मुनेश्वर उचक्के की तरह, दरवाजे से, भीतर का दृश्य देखने की कोशिश कर रहा था।

"क्या है ?" जग्गू ने सख्त आवाज में पूछा।

"कुछ नहीं, वैसे ही मिलने चला आया।" मुनेश्वर ने झेंपकर खीसें निपोरते हुए कहा कि तभी ब्रह्मदेव बोल उठा—"ये तो कल से चार बार आ चुके हैं।"

"क्या काम है ?"—जग्गू ने अपना प्रश्न दोहराया।

"आप भी अजीब आदमी हैं, जग्गू भाई ! क्या अड़ोसी-पड़ोसी से भेंट-मुलाकात करने भी नही आए लोग ?"

"लेकिन आप तो अच्छी तरह जानते हैं कि मैं यहा कभी नहीं रहता; हमेशा गुमटी पर रहता हूं। फिर वहा तो आपने कल से एक बार भी दर्शन नही दिये और यहर चार बार धमक गए !"

"चूकि आपका घर रास्ते में पड़ता है, इसलिए आते-जाते पूछ लेता हूं। यदि इसमें आपको कोई नुकसान होता है, तो अब नहीं पूछूंगा।"

"जी हां, मुझे नुकसान होता है ! आप अपनी राह जाया कीजिए। 'मन में आम बगल मे ईंट' वाली बात मैं भी समझता हूं। मैं राघव नहीं हूं, समझे ?"

"आप तो बेकार ही नाराज हो रहे हैं !"

"जी हां, मैं तो व्यर्थ ही नाराज होता हूं, लेकिन मेरे घर आपका

चक्कर लगाना बड़ा सार्थक है। गुण्डा कहीं का !" जग्गू आंखें तरेरता हुआ बोला। मुनेश्वर को भी क्रोध आ रहा था। उसने भवें टेढ़ी करते हुए कहा—"मुंह सम्हाल के बोलिए, नहीं तो···"

अभी मुनेश्वर ने वाक्य पूरा भी नही किया था, कि जग्गू का भरपूर झापड़ उसकी बायी कनपटी पर पड़ा। क्षण-भर के लिए तो उसकी आंखों के आगे अंधेरा छा गया, और काफी देर तक सामने चिंगारियां-सी दीखती रही। बायी हथेली से अपनी कनपटी पकड़े, वह यह कहता गुर्राता हुआ चला गया—"इसका नतीजा बहुत बुरा होगा, सो जान लीजिए !"

जग्गू दात पीसता हुआ, उसे जाते हुए देखता रहा। ब्रह्मदेव घबराया हुआ खड़ा था। जग्गू ने घूमकर देखा—शारदा दरवाजे पर खड़ी अपने मुंह में कपड़ा ठूसकर हंसी रोकने की कोशिश कर रही थी। जग्गू को अपनी ओर आते देखकर, वह हंसती हुई बोली—"बेचारा मुझसे प्रेम करने आया था, लेकिन बहुत ही बेवकूफ बन गया !"—शारदा की बात सुनकर जग्गू का क्रोध जाता रहा। उसे भी हंसी आ गई। शारदा की बातें और उन्हें कहने का ढंग, अब जग्गू के लिए नया नही था। इसलिए वह भी हंसता रहा। आगन में पहुंचकर शारदा ने हंसते हुए कहा—"अब बेचारा इधर कभी नही आएगा।"

जग्गू अचानक गम्भीर हो उठा। उसके दिमाग में कई आशकाएं कौंध गईं। मुनेश्वर चोर ही नही, नीच प्रकृति का आदमी था। जग्गू ने चिन्ता के स्वर में कहा—

"नहीं शारदा, उस उचक्के से बेफिक्र होना खतरे से खाली नही है ! वह बहुत ही बदमाश और पतित आदमी है।"

"तब क्या होगा ?"—शारदा अचानक ही घबरा उठी।

"होगा क्या, थोड़ी सावधानी से रहना होगा !"

कुछ देर तक जग्गू वहीं बैठा रहा। फिर चुपचाप गुमटी पर चला आया। वहां अनमने भाव से वह इधर-उधर चक्कर काटता रहा। उसका *मन कई तरह की आशंकाओं और परेशानियो मे ऊभ-चूभ करता रहा।* कभी वह रामायण खोलकर पढने बैठ जाता, तो कभी भगवद्गीता के श्लोक गुनगुनाने लगता, कभी खाट पर आखें मूदे पड़ा रह जाता, तो कभी शून्य दृष्टि से आकाश में बादलो की दौड़-धूप को निरुद्देश्य देखता रह

जाता। घुटन की तीव्रता से उसके अंग-प्रत्यंग शिथिल होने लगे, सिर चक्कर खाने लगा और तब वह स्वस्थ होने के विचार से, फिर खाट पर आखें बन्द किए पड़ गया। उसकी आखो में नीद नही थी, फिर भी पलकें झुकी पड़ रही थी। वह कोई बात सोच नही पा रहा था। फिर भी उसकी सारी इन्द्रिया सजग हो रही थी। अचानक घटित हो जानेवाली एक साधारण घटना मनुष्य की लम्बी जीवन-पद्धति और मान्यताओं को झुठलाकर, उसके जीवन मे एक नया मोड़ पैदा कर देती है। वास्तव में, जन्म से लेकर मृत्यु-पर्यंत घटित होनेवाली घटनाए ही, मनुष्य को विकास या पतन की ओर ले जाती हैं—अनुभव या ज्ञान तो इन्हीका फल है ! ऐसी घटना—जो मनुष्य के हृदय को छूकर, उसमे जिज्ञासा, घृणा और रंगीनी भर दे—मनुष्य के जीवन मे घातक अवस्था उत्पन्न कर देती है।

जग्गू का विश्वास, उसका चरित्र और उसके अनुभव, पिछले दिनों घटित घटनाओ से उत्पन्न तीव्र भावों से उलझ रहे थे, लेकिन नयापन जवान था और पुरातन अत्यधिक वृद्ध, रूखा ! बेचारा पुरातन हार-पर-हार खाता जा रहा था। जग्गू का मन नयेपन की रंगीनियों मे डूब रहा था···सभी अपने अस्तित्व की रक्षा में लगे हैं; सभी अपने परिवार के लिए पाप-पुण्य का भेद किए बिना सुख-ऐश्वर्य समेटने में जुटे हुए हैं; सभी बेहाल हैं, अपने-अपने शगल मे···लेकिन वह क्यो घसीटा जा रहा है ?··· उसे क्या लाभ है ?···शारदा, बिसेसर सिंह, राघव, महंगीराम, मुनेश्वर ···सभी अपने-अपने मतलब में डूबे हुए हैं···और वह व्यर्थ ही घसीटा जा रहा है···अब वह अलग भी नहीं हो सकता···लेकिन अपने अस्तित्व से उन लोगों को परिचित रखना आवश्यक है। वह केवल तमाशा देखनेवाला नहीं बना रह सकता···तभी 'खट्-खट्-खटाक्, खट्-खट्-खटाक्' की ध्वनि से जग्गू की तन्द्रा टूट गई। हड़बड़ाकर बाहर आया, तो देखा कि पश्चिम को जानेवाली डाकगाड़ी पास हो गई। उसने फाटक भी नहीं बंद किए थे। अपनी स्थिति पर उसे पहले तो क्रोध आया, फिर हंसी आ गई।

वह गुमटी में पहुंचा। उसका मन अभी भी घुटन से तड़फड़ा रहा था। वहां उससे रहा नही गया। लाइन के दोनो ओर के फाटक बद करके वह चुपचाप स्टेशन की ओर चल दिया।

मुनिदेव चिउरा-दही का नाश्ता कर रहा था। जग्गू को देखते ही बोला—"आओ-आओ, तुम भी बैठ जाओ।"

"तुम खाओ, मुझे भूख नहीं है।" कहकर जग्गू वहीं चौकी पर बैठ गया। मुनिदेव एक भरपूर कौर उठाकर खाने ही जा रहा था कि जग्गू का असहज स्वर सुनकर थमक गया। हाथ का ग्रास पत्तल पर रखता हुआ वह क्षण-भर जग्गू को देखता रहा, फिर बोला—

"आज बहुत उदास लग रहे हो! क्या बात है?"

"कुछ नहीं।"—कृत्रिम हंसी हंसता हुआ जग्गू बोला। लेकिन मुनिदेव उसकी विषादपूर्ण हंसी सुनकर चुप नहीं रह सका—

"कोई बात तो जरूर है! मुझसे छिपाते हो?"

"अच्छा, पहले तुम नाश्ता कर लो, फिर बात करना।"

"नहीं, पहले तुम बताओ कि बात क्या है?" कहकर मुनिदेव अपनी दोनों बाहें अपने दोनों ठेहुनों पर रखकर सत्याग्रह करने जैसी मुद्रा मे बैठ गया। जग्गू को सचमुच हंसी आ गई। बोला—

"वैसे ही जरा मन घबरा रहा था। कुछ परेशानी है, इसलिए तुम्हारे पास चला आया हूं। नाश्ता कर लो, फिर सारी बातें बताऊंगा।"

"मैंने तुमसे कितनी बार कहा कि भगवान शंकर की शरण में आ जाओ। लेकिन तुम मानो तब तो। योगी होना और शंकर की बूटी से परहेज रखना—ये दोनों बातें एकसाथ नहीं हो सकती।"—मुनिदेव उछलकर खड़ा हो गया और छप्पर में से कागज की पुड़िया निकालकर, उसे खोलता हुआ बोला—"फर्स्ट क्लास का माजूम है। इसे खाते ही सारी परेशानियां और थकान छूमन्तर हो जाएगी। लो खाओ···देखो, जिद्द मत करो!···खा लो!" जग्गू ने अनिच्छापूर्वक माजूम लेकर खा लिया।

मुनिदेव जब नाश्ता कर चुका, तब दोनों मित्र काफी देर तक अकेले में बातें करते रहे। जग्गू ने शुरू से लेकर उस दिन तक की सारी घटनाएं मुनिदेव को बता दीं। मुनिदेव ने कहा—"उस लड़की को घर मे रखकर तुमने अच्छा नहीं किया! खैर, अब तो यह समस्या तुम्हारे गले पड़ ही गई। मुनेश्वर बहुत ही बदमाश आदमी है। उसके मन में खोट है। वह जरूर घात में लगा रहेगा! पता नहीं कब क्या कर बैठे! लेकिन बिसेसर

सिंह को तुम अपनी मुट्ठी से कभी नहीं निकलने दो।"

जग्गू के मस्तिष्क पर माजूम का असर छाने लगा। वह स्टेशन से सीधे बिसेसर सिंह के घर पहुंचा। दालान में बिसेसर सिंह का एकमात्र लड़का सहदेव मुंह में सिगरेट दाबे, बन्दूक की नली साफ कर रहा था।

"तुम्हारे बाबूजी कहां हैं?" जग्गू ने पूछा।

"बैठिए, अभी आते हैं।" सहदेव जग्गू की ओर बिना कोई ध्यान दिए अपने काम में लगा रहा। जग्गू को मन-ही-मन हंसी आ गयी—'बाप से ज्यादा तो बेटा ऐंठा हुआ है। मुफ्त का माल खाने को मिलता है न!' जग्गू ऐसी ही बातें सोचता हुआ कुछ देर बैठा रहा, लेकिन बिसेसर सिंह नहीं आये। उसने फिर कहा—

"बन्दूक बाद में साफ कर लेना। जरा अपने बाबूजी को बुला लाओ!"

सहदेव ने झल्लाहट के स्वर में कहा—"आप अजीब आदमी हैं! कह तो दिया कि अभी आ रहे हैं। बहुत जल्दी है तो स्वयं बुला लाइए।"—और फिर वह अपनी बन्दूक साफ करने लगा।

जग्गू को क्रोध आ गया। उसने तमककर कहा—"कैसा ऐंठा हुआ लड़का है! मालूम पड़ता है, जैसे लाट साहब हो! अरे, यह शेखी मुझपर नहीं चलेगी। मैं खुद ही बहुत टेढ़ा आदमी हूं। समझे!"

"अरे जग्गू भाई! कब से बैठे हो? खबर क्यों नहीं करवा दी?"—बिसेसर सिंह ने दालान में पहुंचते ही, जग्गू को देखकर तपाक से पूछा।

जग्गू जला-भुना बैठा था। बोला—"खबर देने को तो आपके लाड़ले बेटे से कब से कह रहा हूं, लेकिन यह सुने तब न!"

"बेवकूफ है! इतना बड़ा हो गया, लेकिन इससे यह भी नहीं पार लगता कि खेती-गृहस्थी के काम में, अपने बूढ़े बाप की मदद करे।" सहदेव अपने बाप की बात सुनकर मुंह बनाता हुआ, ऐंठकर चला गया। बिसेसर सिंह अपने मन की ग्लानि छिपाने के लिए हंसकर, अपने बेटे को जाते हुए देखते रहे। फिर बोले—"किधर चले हो, जग्गू भाई?"

"आपके पास ही आया हूं। कुछ जरूरी काम है।"—जग्गू ने गम्भीर स्वर में कहा।

"आज्ञा करो!"

"आपने जो यह नीच पेशा शुरू किया है, इसे छोड़ दीजिए !"

"नीच पेशा ? पागल हो गये हो ? तुम तो ब्राह्मण हो ! अभी उसी रोज तो, ब्रह्मस्थान पर पंडितजी ने कथा कहते हुए उपदेश किया था, कि कोई कर्म अपने में अच्छा या बुरा नहीं होता—कर्ता की भावना देखी जाती है। मेरी नीयत खराब नहीं है। मैं हमेशा गरीबों की मदद करने को तैयार रहता हू।"

"हजारों गरीबों को लूटकर, उन्हें भूख से तड़पाकर, दो-चार गरीबों के आगे ताबे के चद टुकड़े फेंक देते हैं—वह भी अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए।"—जग्गू घृणा से उबल रहा था।

"फिर वही बात ! कौन निःस्वार्थ भाव से काम करता है ? क्या तुम मुफ्त में गुमटी पर पहरा देते हो ?"

"खैर, ये सब बेकार की बातें जाने दीजिए। मैं जो कुछ कहने आया हूं, उसे कान खोलकर सुन लीजिए—यदि आपने यह पेशा नहीं छोड़ा तो···" कि इसी समय कुलदीप वहां पहुंच गया, जिसे देखकर जग्गू चुप हो रहा।

"क्या बात है ?" बिसेसर सिंह ने स्नेह से पूछा। कुलदीप कभी जग्गू को, तो कभी बिसेसर सिंह को देखता रहा, लेकिन बोला कुछ नहीं।

"अरे, जग्गू भाई अपने ही आदमी हैं। बोलो, क्या खबर लाये हो ?" बिसेसर सिंह ने किंचित् हसते हुए कहा।

"बात यह है कि···राघव ने हमारे और मुनेसर के खिलाफ फौजदारी दायर कर दी है और···और एस०डी०ओ० को सब बातें भी बता दी है।" जग्गू सिर नीचा किए कुलदीप की बातें सुन रहा था, कि बिसेसर सिंह की हंसी सुनकर चौंक उठा। जग्गू ने सिर उठाकर देखा, तो उसके आश्चर्य की कोई सीमा नहीं रही। परेशानी में डाल देनेवाली बात सुनकर भी बिसेसर सिंह हंस रहे थे। फिर वे अचानक गंभीर हो गए और बोले—

"देखा जग्गू भाई ? डाक्टर बुलवाकर उसकी मरहम-पट्टी करवाई, और वह नमकहराम मेरे ही खिलाफ साजिश करने लगा ! यही दुनिया है !"

"लेकिन उस बेचारे को तो, आपके आदमियों ने पीटते-पीटते अधमरा कर दिया था।"—जग्गू ने जुगुप्सा के भाव से कहा। बिसेसर सिंह फिर

हंसने लगे। जग्गू उनका मुह देखता रहा और सोचता रहा—'कैसा विचित्र आदमी है !' विसेसर सिंह ने हंसते हुए कहा—

"मेरे तो सभी अपने हैं। क्या तुम मेरे नहीं हो ? लेकिन इसका मतलब यह तो नहीं हुआ कि जो कुछ तुम कर आओ, उसकी जिम्मेदारी मेरी हो जाए ?" कुलदीप थोड़ी घबराहट के साथ बिसेसर सिंह को देख रहा था। लेकिन विसेसर सिंह के चेहरे पर स्थितप्रज्ञता मुखरित हो रही थी। उन्होंने अपनी बात जारी रखी—"लेकिन मैं मर्द हूं, और मर्द की जुबान एक होती है ! यह भी कोई बात हुई कि अच्छे हुए तो दोस्त, और बुरे हुए तो दुश्मन ! जग्गू भाई, साधु और सुखी का साथ तो सभी देते हैं, लेकिन मर्द वह है, जो गए-गुजरों का साथ दे, गिरे हुए को थाम ले। और तुम विश्वास करो—जग्गू भाई, मैं हमेशा ही कमजोर और जरूरतमन्दों की मदद करता हूं। पीठ पीछे लोग मुझे भला-बुरा कहते होंगे, लेकिन मैं इसकी परवाह नहीं करता। वही करता हू, जो दस के भले की बात हो। लोग कहते हैं कि मुनेश्वर बदमाश है, फिर भी मैं मुनेश्वर की सहायता के लिए तैयार रहता हूं। लोगों का क्या ? वे तो तुम्हारे जैसे साधु आदमी के बारे में भी तरह-तरह की बातें कहते है। तो क्या मैं तुम्हारा दुश्मन हो जाऊं ?"—और विसेसर सिंह ने गौर से जग्गू के चेहरे पर का भाव-परिवर्तन देखा। जग्गू ने कौतूहल से पूछा—

"लोग मेरे बारे मे बातें करते हैं ?"

"हां ..." विसेसर सिंह ने लापरवाही की हंसी हंसते हुए कहा—"लोग कहते हैं कि *जगनारायण ढोंगी है, न जाने किस जाति-कुल की औरत* को अपने घर में बिठाए है।"

"लेकिन वह तो मेरी अतिथि है, विसेसर बाबू !" जग्गू ने क्रोध और दुख से लाल होकर कहा—"लोगों की हिम्मत कैसे हुई ऐसी बात कहने की ?"

"नाराज होने की जरूरत नहीं है, जग्गू भाई। लोगों की जुबान, हथिया नक्षत्र का पानी होती है; उसे रोक सकना किसी के बूते की बात नहीं, तुम क्या हो ! और तुमने उन लोगों को अपने यहां ठहराकर कैसी मुसीबत ली है, यह मैं जानता हूं। तुम धन्य हो कि एक अनजान, बेसहारा

स्त्री की, अपनी बहन की तरह घर में रखे हुए हो। इस कलिकाल में, तुम्हारे जैसा सच्चा आदमी मिलना मुश्किल है। मैं कोई मुंहदेखी बात नहीं कर रहा हूं।"

"लेकिन मेरे बारे में ऐसी बात कही किसने ?" जग्गू के स्वर में क्षोभ ध्वनित हो रहा था। बिसेसर सिंह ने पितृ-स्नेह से कहा—

"यह सब सुनकर क्या करोगे ? व्यर्थ में दुख होगा, क्रोध आएगा, फिर लड़ते फिरोगे ! अच्छा है कि चुप लगा जाओ !"

"मैं चुप ही रहूंगा। आप नाम बता दीजिए, मैं किसीसे कुछ नहीं कहूंगा।"

"वचन देते हो ?"

"हां !"

"तो इस वचन को भी वैसे ही निभाओगे, जैसे उस रात को दिए हुए वचन को निभा रहे हो ?"

"ऍं···हां, निभाऊंगा।" जग्गू जरा चौंक उठा।

"तुम्हारे खिलाफ प्रचार करनेवाले हैं—तुम्हारे मित्र गोपाल के बाप बाबू बिचित्तर सिंह।"

जग्गू आश्चर्य से अवाक् रह गया। बिचित्तर सिंह उसे अपने पुत्र से भी बढ़कर प्यार करते थे।

"क्यों ? तुम्हें विश्वास नहीं हो रहा है ? अरे भाई, यह संसार अजीब है। यहां सूर्य को देखकर भी सूर्य पर विश्वास नहीं होता।"

जग्गू चुपचाप उठ खड़ा हुआ। तीसरा पहर बीत रहा था। बिसेसर सिंह ने जानबूझकर पूछ लिया—"जा रहे हो क्या ?"

"हां, अब चलता हूं।"

"अच्छी बात है। लेकिन जो कुछ मैंने कहा है, अपने तक ही रखना ! और कोई बात हो, तो मुझसे कहना। मेरे जीते-जी, तुम्हें फिकर करने की कोई जरूरत नहीं !"

जग्गू वहां से चल पड़ा। उसे अपनी दशा पर हंसी के साथ-साथ क्रोध भी आ रहा था। वह बिसेसर सिंह को डरा-धमकाकर उन्हें अपनी मुट्ठी में करने आया था, लेकिन खुद उनकी मुट्ठी में जकड़ गया। उसे बिचित्तर सिंह

वाली बात पर आश्चर्य हो रहा था—'क्या आदमी ऐसा भी ढोंगी होता है ? और वह मुनेश्वर···' जग्गू आधे रास्ते से फिर लौट चला, क्योंकि वह बिसेसर सिंह से मुनेश्वरवाली घटना का जिक्र कर देना चाहता था। लेकिन बिसेसर सिंह के दालान में कोई नहीं था। वह पुकारने ही जा रहा था, कि दालान के दाहिने हाथवाली कोठरी से बातचीत का स्वर सुनाई दिया। उस कोठरी में मदक पीने का इन्तजाम रहता था। जग्गू समझ गया, कि दोनों गुरु-शिष्य मदक के सेवन में तल्लीन हैं। वह कोठरी के बाहर ही चौकी पर बैठ गया। उसने सुना—कुलदीप कह रहा था—

"वह ढाई बजे की गाड़ी से जरूर आएगा!" थोड़ी देर खामोशी रही।

बिसेसर सिंह ने पूछा—"उसके पास रिबिट तोड़ने का सामान है ?"

जग्गू का माथा ठनका। वह सांस रोककर कान लगाए सुनता रहा। कुलदीप ने कहा—"हां, हां, उसके पास सब है ! लेकिन अगर गुमटी तक माल पहुंच गया, तो ?"

उसकी तुम चिंता मत करो ! जग्गू मेरी मुट्ठी में है। उसकी जुबान की ऐसी चाबी मेरे हाथ लग गई कि मेरी मर्जी के खिलाफ वह एक शब्द भी नहीं बोल सकता ! लेकिन मुनेश्वर ने मुकदमे के लिए गवाह ठीक कर लिया या नहीं ?"

"जी हां !"

जग्गू यों ही इन्तजार में बैठ गया था, लेकिन इतनी बात सुन लेने के बाद उसे वहां बैठे रहने की हिम्मत नहीं हुई। वह चुपचाप वहां से रवाना हो गया। किसी गाड़ी के आने का समय नहीं था और यदि रहता भी तो क्या ! सभी गुमटीवालों की तरह फाटक बन्दकर वह भी अब ड्यूटी से गायब रहना सीख गया था। इसलिए उसके पैर अपने-आप घर की ओर मुड़ गये। शाम होने में थोड़ी देर थी। बथानों से कुट्टी काटने की आवाज, गाय-भैंस और बछड़ों के रंभाने की आवाज और बथानों से मच्छर भगाने के लिए किया गया धुआं गांव के वातावरण पर छा रहा था। कोई चीज स्पष्ट नहीं थी, कोई बात या पुकार सही नहीं थी। मौसम न मोहक था, न रूखा और वातावरण न सुखद था, न दुखद। विचित्र प्रकार का मोहक रहस्य, वातावरण पर हावी था। जग्गू के मन की हालत भी ठीक ऐसी ही

थी। उसे जल्दी-से-जल्दी कोई फैसला करना था, लेकिन उसके सामने सब कुछ अस्पष्ट, अर्थहीन और उलझन से परिपूर्ण था। खामोश हवा भयंकर वर्षा का संकेत दे रही थी।
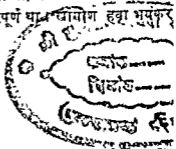
शारदा दरवाजे पर खड़ी थी। जग्गू को देखकर कुछ बोली नहीं। चुपचाप मुड़कर घर में चली गई। जग्गू भी उसके पीछे-पीछे घर के अंदर पहुंचा।

"ब्रह्मदेव कहां है?"

"मुझे नहीं मालूम।" शारदा ने संक्षिप्त-सा उत्तर दे दिया। उसकी नाराजगी देखकर, जग्गू को मन-ही-मन हंसी आ गई। क्षण-भर के लिए वह अपनी विकट स्थिति भूल गया। उसका मन हलका हो गया। उसने चिढ़ाने के खयाल से हंसी-हंसी में पूछा—

"मुनेश्वर फिर आया था क्या?"

शारदा कुपित दृष्टि से जग्गू को देखती रही। जग्गू ने फिर पूछा—"कुछ हुआ है क्या? बोलती क्यों नहीं?"

"मुझे क्या होगा? लेकिन आप सब बिहारी लोग एक तरह के हैं—उचक्के!" शारदा फूत्कारकर उठी। जग्गू हैरान होकर सोचता रह गया—'अजीब लड़की है!' लेकिन बोलने की हिम्मत नहीं हुई। शारदा का चेहरा क्रोध से आरक्त हो रहा था। वह उसी स्वर में बोलती रही—

"आप लोगों को शर्म नहीं आती? एक बेसहारा औरत को घर में रखकर, फिर उसका तमाशा बनाते हैं।"

"लेकिन किसने आपका तमाशा बनाया?"

"आप लोगों ने, और किसने? सुबह से आप गायब हैं। खाना खाने भी नहीं आए। आपको गुमटी पर ढूंढवाया, लेकिन आप वहां भी नहीं थे। मैं अच्छी तरह जानती हूं कि आप मुझे बोझ समझते हैं, इसीलिए चाहते हैं कि मैं तंग आकर यहां से चली जाऊं!"

जग्गू कुछ भी नहीं समझ पा रहा था कि शारदा की बातों का अर्थ क्या है। वह घबराया हुआ, सकते की हालत में शारदा की बातें सुनता जा रहा था। शारदा बोलती गई—"अभी एक पहलवान जैसा नौजवान आया था।"

"पहलवान जैसा ?"—जग्गू ने समझने-जानने की कोशिश करते हुए पूछा।

"हां, वह आपको ढूढ़ रहा था। ब्रह्मदेव आपको बुलाने के लिए गुमटी पर गया हुआ है, इसलिए मैं स्वयं बाहर निकली। वह बदमाश अजीब दृष्टि से मुझे घूरता रहा, और तरह-तरह की बातें पूछता रहा कि आज सुबह क्या हुआ था ? आप कहा की रहनेवाली हैं ? जग्गू चाचा को कब से जानती हैं ? आदि-आदि···"

जग्गू सोच रहा था कि हो-न-हो यह गोपाल ही हो सकता है ! बिसेसर बाबू ठीक ही कह रहे थे। निश्चय ही अपने बाप का इशारा पाकर गोपाल यहा जाच-पड़ताल करने आया होगा। पता नहीं, ये लोग आदमी हैं या आदमी की शक्ल में भेड़िये ! जग्गू भीतर-ही-भीतर प्रतिशोध की ज्वाला मे सुलगता-झुलसता रहा। कुछ देर तक दोनो खामोश बैठे रहे, फिर जग्गू आर्द्र स्वर मे बोला—

"देखिए, आपने अपना घर त्यागकर संसार में प्रवेश किया है। हमारे समाज के लिए यह घटना बिल्कुल नयी है, और लोग इसे अच्छी दृष्टि से देखते भी नहीं। आपको इन बातों का हिम्मत के साथ सामना करना चाहिए ! और जहां तक बोझ बनने का सवाल है—कहने को तो एक फूल भी आदमी का बोझ हो सकता है, और आप तो एक औरत हैं ! लेकिन मैं ऊबता नही। लोग मुझसे भी तरह-तरह की बातें पूछते हैं, मुझपर भी शक करते हैं, जबकि यहां के लोग मुझे तीस-बत्तीस वर्ष से जानते-पहचानते हैं। इसके लिए क्या किया जाए ?"

"फिर आप दिन-भर भागते क्यों रहे ? खाना खाने क्यों नही आए ?" —शारदा के इस प्रश्न से जग्गू को मन-ही-मन हंसी आ गई, क्योंकि उसने कभी ऐसा नहीं कहा था कि वह अब से खाना यहीं खाया करेगा। लेकिन अभी वह शारदा का दिल दुखाना नही चाहता था, इसलिए हलके मन से

हंसता हुआ बोला—"इतनी-सी बात है, तो लाइए, अभी खा लेता हूं !"

शारदा चुपचाप उठी और खाना परोसकर ले आई। जग्गू प्रसन्नता से खाने लगा। जग्गू को शारदा की नाराजगी अच्छी लगी। उसका यह व्यवहार उसे नया अनुभव जैसा लगा। दो रोज की जान-पहचान में ही इतना अधिकार जताना उसे अजीब लगा। लेकिन जग्गू शारदा की निश्छलता, सहज आत्मीयता और भोलेपन पर मुग्ध था। और दुनिया के विराट् जाल से अनजान शारदा अपने स्नेह-जाल में जग्गू को आबद्ध करती जा रही थी। जग्गू अपनी विवशता को उपचेतन के सुख की पूंजी बनाकर सहेजता जा रहा था।

खाना खाने के बाद जग्गू चलते-चलते कहता गया—

"अब आज रात मैं नहीं खा पाऊंगा।"—और बिना कुछ जवाब सुने घर से बाहर निकल आया। काफी अंधकार उतर आया था। दूर-पास के घरों से ढिबरी-लालटेन की मद्धिम रोशनी भयावने अन्धकार की माग में घुले हुए सिन्दूर की उदासी चित्रित कर रही थी। दूर चमर-टोली से दो कर्कशा औरतों के सस्वर लड़ने-झगड़ने का कोलाहल सुनाई दे रहा था।

जग्गू सिर झुकाए कादो-कीच से बचता हुआ गुमटी की ओर चलता जा रहा था। उसका मन और मस्तिष्क कई बातों से उलझ रहा था। कुलदीप ने कहा था—आज रात को ढाई बजे ··बिसेसर सिंह ने कहा था कि बिचित्तर सिंह ऐसी-वैसी बातें कर रहे थे···गोपाल सी० आई० डी० बनकर पता लगाने आया था···और शारदा कैसी अजीब लड़की है?—मान-न-मान मैं तेरा मेहमान—जिसे देखो वही मुझे मूर्ख और बदमाश समझता है—आज रात को ढाई बजे—अगर माल गुमटी तक पहुंच गया तो—जग्गू मेरी मुट्ठी में है···

"कहां थे, जग्गू ?"

जग्गू इस कदर अपनी उलझनों में डूबा था कि मुनिदेव की आवाज पर अकस्मात् ही चौंक उठा। पहचान लेने पर झेंपता हुआ बोला—

"ओह, तुमने तो बिल्कुल डरा दिया ! कब से बैठे हो ?"

"यही करीब बीस-पच्चीस मिनट से। क्या हुआ ? बिसेसर सिंह से मिले थे ?"

"हां !" और तब जग्गू ने मुनिदेव को सारी बातें बता दीं। शारदा के निरर्थक क्रोध का भी जिक्र कर दिया। मुनिदेव सोच-विचार में डूबता हुआ प्रतिशोध के स्वर में अपने-आप बोल उठा—

"तो यह बात है ! आज मुनेश्वरजी मुजफ्फरपुर से लौट रहे हैं।"

"राघव कहां है ?"—जग्गू ने किंचित् आशा के स्वर में पूछा।

"अरे वह साला भी आज गायब है, वर्ना आज तो सारी कसर निकल जाती ! खैर, कोई चिंता नहीं।"

"लेकिन मुनिदेव, बिसेसर सिंह यह क्या बोला कि मेरी चाभी उसके हाथ में है ?" जग्गू ने आश्चर्यमिश्रित चिंता से पूछा। मुनिदेव हंसने लगा—

"अरे बमभोले, अपने को जरा दूसरों की आंखों से भी देखा करो !"

"क्या मतलब ?"

"मतलब यह कि आपको यह पता ही नहीं है कि गांव में रहते हुए आपने शहरवालों की नाक काट ली।"

"अरे भाई साफ-साफ कहो। क्यों मेरा सिर-दर्द बढ़ा रहे हो ?"

मुनिदेव हंसने लगा। जग्गू अवाक् उसकी ओर देखता रहा। मुनिदेव ने हंसते हुए कहा—

"तुमने उस अनजान लड़की को अपने यहां शरण दे रखी है—यह क्या गांव के लिए साधारण बात है ? तुम्हारे मुंह पर कोई नहीं बोलता, लेकिन इन दिनों सभी जगह इसीकी चर्चा होती है; डकैती और मारपीट की बात तो सुबह होते ही पुरानी पड़ गई। और बिसेसर सिंह चाहे तो इस बात पर तुम्हारा गांव में रहना मुश्किल कर सकता है। समझे ?"

"बिसेसर सिंह मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकता !"—जग्गू ताव में आकर बोला और खाट पर से उठकर टहलने लगा।

"हां, वह तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ सकता, बशर्ते कि आज तुम भी उसकी नकेल अपने हाथ में ले लो।"

"आज तो मैं उसे हर्गिज नहीं छोड़ सकता !"—जग्गू दम्भ से बोला।

मुनिदेव ने मुंह बनाते हुए कहा—

"इसी बुद्धि पर तुम बिसेसर सिंह से लोहा लेने चले हो ? क्या करोगे ?

दारोगा को बुलाकर गिरफ्तार करा दोगे ?"

"नहीं, अभी स्टेशन जाकर मुजफ्फरपुर फोन करवा दूंगा। मालगाड़ी के साथ में पुलिस आएगी और सबके सब पकड़े जाएंगे।" जग्गू ने गंभीरता से अपनी योजना रखी। मुनिदेव फिर हंसने लगा। जग्गू तमककर बोला—"तुम रह-रहकर ठीठी-ठीठी क्यों करने लगते हो ?"

"तुम्हारी बुद्धि पर ! तुम क्या समझते हो कि स्टेशन मास्टर तुम्हारा गुलाम है ? अरे मूर्ख, स्टेशन मास्टर उधर मुजफ्फरपुर फोन तो कर देगा, लेकिन इधर बिसेसर सिंह को आगाह भी कर देगा। और उसके बाद तुम आसानी से सोच सकते हो कि बिसेसर सिंह तुम्हारे साथ कैसा वर्ताव करेगा !"

"फिर क्या किया जाए ? दारोगा भी तो उसीका आदमी है !" जग्गू सोच और निराशा में डूबता हुआ बोला।

"यह काम तुम मेरे ऊपर छोड़ो ! मैं ठीक बारह बजे यहां पहुंच जाऊंगा।"

"थोड़ी देर बैठो न ! कौन गाड़ी छूटी जा रही है ?"

"अरे आज ठीक दो महीने बाद घर जा रहा हूं। तुम्हारा क्या ? आगे नाथ न पीछे पगहा ! बस गुमटी पर पड़े रहते हो।"

"क्यों ? दो महीने बाद घर क्यों जा रहे हो ? स्टेशन से दस कदम पर यह रहा तुम्हारा घर। फिर भी तुम घर नहीं जाते ? उस रोज तुम्हारी पत्नी मेरे सामने रो-रोकर अपना दुखड़ा सुना रही थी। ब्याह नहीं हो रहा था, तब तो पागल की तरह रोते फिरते थे, और आज दो-दो महीने तक घर से गायब रहते हो !" जग्गू के स्वर में स्नेहसिक्त फटकार थी। मुनिदेव झल्लाकर बोला—

"क्या करने जाऊं घर ? बाबू रोज ही स्टेशन पहुंचकर दो-ढाई रुपया मांग ले जाते हैं और घर जाता हूं तो मां अपना रोना अलग शुरू कर देती है और बीवी अलग ! मुश्किल से चार-साढ़े चार रुपये रोज कमा पाता हूं, उसीमें कैसे अपना पेट भरूं, कहां से बाप को दूं, कहा से मां को दूं और कैसे अपनी पत्नी के नखरे सम्भालता फिरूं ? घर पहुंचते ही दिमाग खराब हो जाता है !"

"जब गृहस्थी का बोझ उठाया है तब भागने से काम चलेगा नहीं! तुम्हारे पिताजी तो कुछ-न-कुछ उपार्जन कर ही लेते हैं।"

"खाक उपार्जन कर लेते हैं! जिस काम मे हाथ डालते हैं, उसीको चौपट कर देते हैं। उन्होंने तो और मेरा दिमाग खराब कर दिया है। घर में तीन-तीन बेटे हैं, उन लोगों से कुछ नही कहते और मेरे पास चले आते हैं रुपया मागने जैसे मेरी जेब में गूलर का फूल रखा हो!"

——मुनिदेव बोलते-बोलते अचानक बहुत दुखी हो गया। उसके घर की हालत सचमुच बहुत खराब थी। परिवार में आठ सदस्य थे और कमाने-वाला था एकमात्र मुनिदेव। उसके पास कुल तीन बीघे जमीन थी जिससे साल में दो महीने का खर्च भी नही निकल पाता था। मुनिदेव का सबसे छोटा भाई पांचवी कक्षा में पढता था, शेष दो भाई भैंसो की चरवाही करते, पोखर में घटों तैरते रहते, चेत-कबड्डी खेलते या रात को गांव की कीर्तन-मंडली के साथ कीर्तन करते फिरते। मुनिदेव की पत्नी खूबसूरत और गवार थी। बीड़ी पीती थी और निश्छल भाव से सबके आगे अपना दुखड़ा सुना देती थी। मुनिदेव उसे दिल से प्यार करता था, लेकिन उसे अपनी गरीबी और परेशानियों के चक्कर से कभी फुर्सत ही नही मिलती थी कि प्यार की बातें सोचे-समझे। दिन-भर मशीन चलाता और शाम तक थककर चूर हो जाता——फिर छककर ताड़ी पीता, पान खाता, इधर-उधर भद्दे-भद्दे मजाक करता फिरता, और रूखा-सूखा खाकर, दुकान पर ही सो जाता।

जग्गू ने मुनिदेव के दुख को उभारना उचित नहीं समझा। इसलिए वह सात्वना देता हुआ बोला——

"सब कुछ तुम्हें ही सहना है, इसलिए दु ख करने या खीझने से क्या फायदा! मर्द का दूसरा नाम हिम्मत है। उसे मत त्यागो। जाओ, जरा अपनी बीवी से प्यार की बातें करना और उन्हें मेरी याद दिला देना। कहना कि तुम्हारा एक भक्त वीरान गुमटी मे अकेला पड़ा है।" और दोनों मित्र हसते-हसते विदा हुए। लेकिन दोनो का मन, अप्रत्याशित आशंकाओं की कड़वी-मीठी अनुभूति के थपेड़ो से अस्थिर हो रहा था।

७

ज्यों-ज्यों रात चढ़ती जाती, बारिश का जोर बढ़ता जाता। चारों ओर काला घुप अंधकार, झड़-झड़-झड़-झड़ झम-झताझम'''वर्षा की अविराम झड़ी और बीच-बीच में बादलों का भयंकर गर्जन-तर्जन—जैसे दो पहाड़ वेग से टकरा उठते हों और तब कड़क के साथ बिजली की चकाचौंध—लग रहा था, जैसे शिव ने रौद्र रूप धारण कर लिया हो। हवा की हहास चंडिका के अट्टहास जैसी ध्वनित हो रही थी—जैसे आज फिर महाशक्ति सदलबल, दैत्यराज रावण को अपने अंक में लेने जा रही हो। शेष जीव डर से सहमे हुए, निस्पन्द-निष्प्राण हो रहे थे। न किसी मनुष्य के गाने-रोने की आवाज सुनाई दे रही थी, न किसी पशु के रंभाने की। जैसे संवर्त-कल्प की स्थिति आ गई थी।

जग्गू अपनी गुमटी में, दम साधे, मुनिदेव की आतुर प्रतीक्षा में खाट पर बैठा था। उसने समय का अनुमान लगाया—बारह से अधिक हो रहा होगा! लेकिन मुनिदेव का कहीं पता नहीं था। जग्गू बेचैनी की तीव्रता से छोटी-सी गुमटी के भीतर ही चक्कर काटने लगा। उसकी सारी इन्द्रियां प्रज्वलित हो रही थीं! मुनिदेव ने उससे साफ-साफ बताया भी नहीं था कि वह क्या करनेवाला है। इसलिए उसका मन अत्यधिक उत्तेजित-उद्वेलित हो रहा था। रह-रहकर वह मोखे से झांकने लगता, और जब बिजली चमकती, तो दूर गांव तक सरसरी नजर से देख लेता। लेकिन पानी में डूबी हुई सूनी सड़क और झंझा की चपेट से छटपटाते पेड़-पौधों के सिवा, वहां कुछ भी दिखाई नहीं देता। अंत में, निराशा और क्रोध से जल-भुनकर, वह अपनी खाट पर सोने ही जा रहा था कि दरवाजे पर जोर से थपथपाहट की आवाज हुई। लपककर उसने दरवाजा खोल दिया। पानी के भरपूर झोंके के साथ मुनिदेव छाता मोड़ता हुआ भीतर घुस आया। जग्गू ने जल्दी से द्वार बन्द करते हुए, क्रुद्ध स्वर में पूछा—

"इतनी देर क्यों लगा दी?"

"ठहरो यार, यहां ठंड से जान जा रही है और तुम्हें देर-सबेर सूझ रही है!"—मुनिदेव ने जग्गू की सरकारी पगड़ी देह पर लपेटते हुए कहा।

जग्गू का क्रोध और भड़क उठा। उबलकर बोला—

"तो आए क्यों? वहीं अपनी लुगाई के दामन से चिपके रहते!"

"लेकिन वहां भी तो छप्पर चू रहा था। घर में एक खाट रखने की भी जगह नहीं बची। सब जगह पानी चू रहा था।" मुनिदेव ने रुआंसा होकर कहा। जग्गू को उसकी दशा पर हंसी आ गई। बोला—

"फिर तो आज तुम्हारा घर जाना बिल्कुल बेकार हुआ?"

"अरे बेकार ही नहीं, बुरा भी हुआ! घर में मकई की रोटी बनी थी और तरकारी के नाम पर आम का सूखा हुआ एक फांक अचार। बस, तबीयत फिरी ही नहीं—भिन्ना गई। ऊपर से माय ने उपदेश देना शुरू कर दिया कि 'ज़रा धन जोड़ना सीखो, घर में बाल-बच्चा है, शौकीन बीवी है' आदि-आदि। उसकी बात पर मैंने बरसना शुरू ही किया था कि इन्द्र भगवान भी बरसने लगे। घर में गया, तो बीवीजी छुई-मुई बनी बैठी थीं। काफी समय मनाने में ही कट गया और जब बहुत आरजू-मिन्नत के बाद मुस्कराई तो साला पुराना छप्पर रोने लगा—वह भी जार-बेजार! बस, यही समझो मित्र, कि घर जाकर बरसने और भीगने में ही समय निकल भागा। सूखने भी नहीं पाया कि भीगता हुआ यहां भागा चला आ रहा हूं। अब तुम बताओ कि तुम्हें नाराज किसपर होना चाहिए?"

"अब तो मैं खुश हूं कि भगवान की कृपा से तुम वहां सो नहीं पाए।" —जग्गू ने हंसते हुए कहा।

"मैंने कहीं सुना था कि दुष्ट मित्र और दुष्ट पत्नी बड़े दुखदायी होते हैं! आज उसका प्रमाण मिल रहा है।'

"और मैंने तो सुना है कि दर्जी कैंची चलाने में बड़े उस्ताद होते हैं, सो आज देखना है कि यह बात कहां तक ठीक है!"

"चिंता मत करो प्यारे! ऐसी कैंची चलाऊंगा कि बिसेसर सिंह जिन्दगी-भर के लिए हमारे गाहक हो जाएंगे!"

"अच्छा, तुमने यह तो बताया ही नहीं कि हम लोगों को करना क्या है। कहीं ऐसा न हो, कि काम भी न बने और बिसेसर सिंह तुम्हारी जगह मेरी जान के गाहक बन जाएं।"

"तुम चुपचाप देखते रहो। अभी कोई इस ओर से होकर गया तो

नहीं ?"

"अभी तक तो कोई नहीं गया है।"

"ठीक है ! बच्चू लोग अब आते ही होंगे। माल ले जाने का दूसरा रास्ता तो है नहीं ! अभी एक बज रहा है।"—मुनिदेव ने अपनी कलाई की घड़ी देखते हुए कहा।

"क्यों, पश्चिम के रास्ते भी तो माल ले जा सकते है।"—जग्गू ने सोचते हुए कहा। मुनिदेव हंसने लगा—

"तुम बिलकुल बुद्धू हो ! चोरी का माल उधर कहां ले जाएंगे ? आठ मील दूर रेलवे स्टेशन है, और रास्ते में घनी बस्ती है। यदि चोर के पास गुमटी पार करके फिर अपने गांव वापस आएंगे, तो चार मील का चक्कर पड़ जाएगा। इतने में सुबह हो जाएगी। फिर तुम्हारे जैसा बमभोला गुमटी वाला कहां मिलेगा, जो चुपचाप माल ले जाने देगा ? तुम्हें मालूम नहीं है —यह सारा माल महंगीराम खरीद लेता है। आज मैं तुम्हें उसका तमाशा भी दिखाऊंगा।"

दोनों मित्र चुपचाप घात में बैठ रहे। कहीं से कोई आवाज नहीं आयी। वर्षा हुए जा रही थी। समय बहुत बेचैनी से कट रहा था। हलका-सा खटका होने पर भी दोनों मित्र सावधान हो जाते।

"देखना तो कितना बजा है ?"

"पौने दो।"—मुनिदेव ने कहा। जग्गू ने मोखे से झांककर देखा—कहीं कुछ नहीं था।

"कहीं तुम्हें यहां आते किसीने देख तो नहीं लिया ?"—जग्गू ने चिंता के स्वर में पूछा।

"मैं तो स्वयं चारों ओर देखता आ रहा था। कहीं कोई नहीं था। और दूर से, ऐसे मौसम में, कोई किसीको पहचान नहीं सकता। किसीने यदि देखा भी होगा, तो समझा होगा कि जग्गू है। और तुमसे वे लोग डरते नहीं। अभी तो मालगाड़ी आने में···"

तभी सड़क पर का फाटक कीर्रर्रर्र कोंय-कोंयऽऽऽ कर उठा। जग्गू ने उछलकर मोखे से देखा—कोई छाता लगाए फाटक के पास खड़ा था; दूसरा आदमी फाटक खोल रहा था। उस आदमी ने दोनों फाटक खोल दिए।

अंधकार होने के कारण, दूर की चीज दिखाई नहीं पड़ रही थी। क्षण-भर के बाद ही बैलगाड़ियां आ पहुंची—एक, दो, तीन, चार, पांच। छाते वाला व्यक्ति ठेहुने तक बरसाती कोट पहने था। बिजली चमकने पर उसकी रोशनी में जग्गू और मुनिदेव ने देखा—फाटक खोलने वाला कुलदीप था और छाता लगाए स्वयं बिसेसर सिंह थे। बैलगाड़ियां लाइन पारकर चलती चली गईं—अंधकार में विलीन हो गई और उनकी चरमराहट वर्षा की हहास मे खो गई।

"कुछ देर में बिसेसर सिंह तुम्हारे पास आएगा। जरूर आएगा। और यदि नहीं आए, तो मालगाड़ी के पास होने तक, तुम यहीं चुपचाप बैठे रहो।" मुनिदेव ने फुसफुसाहट के स्वर में कहा। जग्गू का कलेजा जोर से धड़क रहा था। ऐसे छल-प्रपंच, जाल-फरेब और चोरी-डकैती से वह जीवन-भर अलग रहा। उसका मन बार-बार उसे धिक्कार रहा था, कि वह पाप-कर्म का भागी बन रहा है। लेकिन मुनिदेव ने दुनिया देखी थी, तरह-तरह के लोग देखे थे, दुख सहा था और अपमान के घूट पिए थे। सांसारिक व्यक्ति समय को पूजी के रूप में देखता है, लेकिन ससार से विरक्त व्यक्ति के लिए समय एक कसौटी के सिवा और कुछ नहीं। यदि विरक्त व्यक्ति एक बार भी समय के चक्कर मे पड़ जाता है तो वह भोग की अतल गहराई से पहले नहीं रुकता। मुनिदेव सांसारिक व्यक्ति था। वह मोखे पर खड़ा गुमटी की ओर देख रहा था कि अचानक घूमकर जल्दी से फुसफुसा-हट के स्वर में बोला—

"वह आ रहा है। तुम उससे ऐसे मिलना, जैसे उसके बड़े भक्त हो, और माल कटने न कटने की तुम्हें कोई परवाह नहीं है। मेरा जिक्र मत करना!"—यह कहकर वह खाट के नीचे छिप गया। दरवाजे पर जब दो-तीन बार थपथपाहट हुई, तब जाकर जग्गू ने चौंककर पूछा—जैसे नींद से उठा हो—

"कौन है?" और उठकर उसने दरवाजा खोला—

"अरे आप? बिसेसर बाबू? आइए-आइए, भीतर चले आइए!" बिसेसर सिंह के भीतर आने पर उसने दरवाजा बन्द कर लिया। बिसेसर सिंह ने कृत्रिम गंभीर स्वर में कहा—

"बड़े जोर की वर्षा हो रही है। देखते हैं कि इस साल धान की फसल बिलकुल चौपट हो जाएगी!"

"जी हा! आसिन का महीना है, लेकिन सावन-भादों भी मात खा गया। समय ही खराब जा रहा है, बिसेसर बाबू! आप बैठते क्यो नहीं है? बैठिए ना! आज तो आप पहली बार गरीब की कुटिया में पधारे हैं। क्या बज रहा होगा? बरसात मे समय भी मालूम नही देता।"

"यही करीब सवा दो का समय होगा!"

"सवा दो?"—जग्गू चौंककर बोला—"मैंने समझा कि सुबह हो गई। लेकिन···लेकिन इतनी रात को आप···"

"मैं तुम्हारे पास ही आया हूं।"—बिसेसर सिंह ने अपनी विशेष मुस्कराहट से कहा।

"आज्ञा कीजिए।" जग्गू को अपनी आकस्मिक विनम्रता पर आप आश्चर्य हो रहा था। बिसेसर सिंह समझ रहे थे कि उस औरत के चलते, और चूंकि वह स्वयं उसकी गुमटी में पधारे हैं—जग्गू इतना विनम्र हो रहा है। उन्होंने हसते हुए कहा—

"बस, आज्ञा ही समझो, जग्गू भाई! अब तो तुम मेरे अपने आदमी हो! तुमसे न मेरी बात छिपी है, और न मुझसे तुम्हारी। बात यह है कि आज ढाई बजे की मालगाड़ी से कुछ कपड़े की गांठें काटकर गिराई जाएंगी, और वह माल तुम्हारी गुमटी के पास ही गिरेगा। तुम्हें कोई एतराज तो नही है?"

"नही, बिसेसर बाबू, ऐसा न कीजिए! यदि आप नही मानते तो··· गुमटी से थोड़ी दूर पर यह सब कुकर्म करवाइए। आखिर मैं रेलवे का नौकर हू। मेरी नौकरी पर खतरा आ जाए, तो?" जग्गू के स्वर में किंचित् दीनता थी।

"अरे, तो मैं क्या मर गया हूं? जितनी तनख्वाह तुम्हें अब मिलती है, उससे दसगुनी रकम हर महीने दूगा। मर्द हूं मर्द!" बिसेसर सिंह ने बड़े रुआब से कहा।

"आपकी कृपा चाहिए!"

"अच्छा, तो मैं बाहर चलता हूं। तुम बेफिक्र रहो! जरा माल हाथ आ

जाए, फिर अभी मिलूंगा। यदि यहां आस-पास में कोई गांठ गिरे, तो ध्यान रखना !"—और दीवार से लगी बदूक कंधे पर लटकाकर बिसेसर सिंह बाहर हो गए। मुनिदेव खाट के नीचे से बाहर निकलकर मोखे से झांकने लगा। कुछ देर बाद वह मुड़कर बोला—

"वह तो गया। मैं अब लाइन के उस पार, झुरमुट में छूमंतर हो जाता हूं। ज्यों ही बिसेसर सिंह दोबारा तुम्हारे पास आएगा, कि उसे तुम गुमटी में ले आना। फिर मैं भी पहुंच जाऊंगा।" यह कहकर उसने अपना छाता उठाया और दरवाजा खोलता हुआ घूमकर वह कहता गया —"इंजिन की रोशनी देखते ही तुम भी बाहर आ जाना, और जब तक बिसेसर सिंह यहां आए नहीं—बाहर ही रहना !"

मुनिदेव बाहर निकलकर कुछ देर इधर-उधर देखता रहा, फिर जल्दी से लपककर, रेलवे लाइन के उस पार, नीचे चला गया। जग्गू कुछ देर गुमटी में बेसब्री से चक्कर काटता रहा कि उसे गाड़ी की धमक का अंदाजा हुआ। मोखे से उसने झांककर देखा तो इंजिन की रोशनी दिखाई पड़ी। वह बाहर निकल आया। थोड़ी ही देर में इंजिन करीब आ गया। गुमटी से थोड़ी दूर पर ही एक गांठ गिरी और लुढ़कती हुई नीचे चली गई। ठीक गुमटी के सामने झनाक् से कोई चीज गिरी। जग्गू ने देखा कि एक आदमी मालगाड़ी के एक बन्द डिब्बे से नीचे कूदने के क्रम में है—और वह कुछ ही दूर जाकर कूद भी पड़ा और दौड़ता हुआ अंधेरे में गायब हो गया। जग्गू ने गाड़ी से फेंकी गई वस्तु को उठाकर देखा—एक बड़ी बाल्टी थी, जिसमें लगभग ढाई हाथ लम्बा मजबूत रस्सा बंधा हुआ था और रस्से के ऊपरी छोर पर एक हुक लगा हुआ था। जग्गू समझ गया कि इसी हुक को डिब्बे के दरवाजे में अटकाकर मुनेश्वर जी बाल्टी में खड़े हो गए होंगे और डब्बे का रिविट काट दिया होगा। भय और ग्लानि से जग्गू मन ही मन कांप रहा था। उसे मुनिदेव पर भी इस समय क्रोध आ रहा था। उसने ही ऐसे खराब काम में उसे फंसाया था। उसे शारदा पर भी क्रोध आ रहा था, जिसके चलते वह कायर और नपुंसक बनने पर मजबूर हुआ।

जग्गू काफी देर तक गुमटी के बाहर चहल कदमी करता रहा। रेलवे लाइन के उत्तर, दूर-दूर तक टॉर्च की रोशनी जलती-बुझती रही। करीब

आधा घंटे बाद एक बैलगाड़ी गुमटी पर पहुंची। जग्गू ने फाटक खोल दिये। फिर दूसरी गाड़ी आई, तीसरी आई, चौथी और पांचवी भी आई और उन्हीं के साथ बिसेसर सिंह भी आये। जग्गू वहीं खड़ा था। बिसेसर सिंह के पास आते ही, जग्गू ने घृणा-मिश्रित गंभीरता से कहा—

"एक गांठ यहीं पास में गिरी है।"

"हां-हां, मुझे मालूम है।" अभी दस मिनट में दूसरी बैलगाड़ी आती है। आज मुनेश्वर ने तो कमाल कर दिया। मिनटों में बहुत-सी गाठें गिरा दी।"—बिसेसर सिंह उल्लासपूर्वक बोले जा रहे थे—"चलो, तब तक भीतर गुमटी में बैठा जाए।"

"चलिए।"

"ओ हो, यह वर्षा है या प्रलय !,"—गुमटी में पहुंचकर, बन्दूक दीवार के सहारे खड़ी करते हुए बिसेसर सिंह बोले।

"यह गांठ भी यहां से जल्दी हट जाती, तो अच्छा था।"—जग्गू ने चितातुर होकर कहा।

"अभी हट जाएगी। तुम चिता मत करो। असल में मैंने सोचा कि पांच गाड़ी से अधिक माल कट नहीं पायेगा, लेकिन मेरे चेले सबके सब अब तो कमाल करने···" अभी वाक्य पूरा नहीं हुआ था कि दरवाजे पर थपथपाहट हुई। बिसेसर सिंह ने उछलकर बन्दूक उठा ली। जग्गू ने सहज भाव से उनके हाथ से बन्दूक लेकर, दीवार के सहारे रखते हुए कहा—

"बन्दूक वहीं रहने दीजिए और चुपचाप बैठिए! कोई बाहर का आदमी होगा, तो आपको इस हालत में देखकर शक करेगा।"—बिसेसर-सिंह ने कोई विरोध नहीं किया। जग्गू के दरवाजा खोलते ही मुनिदेव भीतर घंस आया···

"ओफ, इस बारिश ने तो···अरे, यह कौन है?"—मुनिदेव ने अनजान बनने के अभिनय में चौंककर पूछा।

"बाबू बिसेसर सिंह हैं।" जग्गू ने कहा।

"बाबू बिसेसर सिंह? इतनी रात को तुम्हारे यहां?"

"इसमें आश्चर्य की क्या बात है? जैसे तुम इतनी रात को यहां आये हो, वैसे मैं भी आ सकता हूं!" बिसेसर सिंह थोड़ा चिढ़कर बोले। मुनिदेव

की नजर बन्दूक पर पड़ी। उसने बन्दूक अपने हाथ में ले ली और कहा—

"मैं तो मजबूर आदमी हूं ! कल ही ग्राहकों को कपड़ा देने का वायदा कर रखा है, इसलिए कुछ देर घर पर बिताकर, अभी से मशीन चलाने स्टेशन जा रहा हूं। लेकिन आप ?" बिसेसर सिंह की बोलती बन्द हो गई। जग्गू ने कहा—

"आपने अभी मालगाड़ी से कुछ गांठें गिरवाई हैं। उन्हींको ढुलवा रहे हैं।"

"वाह, तब तो बड़ी प्रसन्नता की बात है ! फिर तो हम लोगों को भी कुछ इनाम मिलना चाहिए।"—मुनिदेव ने किंचित् नम्रता से कहा। बिसेसर सिंह ने देखा कि अभी क्रोध करने से बात बिगड़ेगी ही, इसलिए वह स्नेहपूर्वक बोले—

"हां-हां, जरूर मिलेगा !"

"फिर निकालिए !"

"क्या बच्चों जैसी बातें करते हो ? पास में रुपया लेकर कौन चलता है ? वह भी इतनी रात को ? कल दे दूगा। विश्वास करो।"

"विश्वास ?"—मुनिदेव ने व्यंग्य से पूछा—"ऐसे काम में कोई किसी-का विश्वास कर सकता है ?"

"क्यों नहीं ? मैं तो विश्वास पर ही जिन्दा हू ! पूछ लो जग्गू भाई से।"

"जग्गू भाई से क्या पूछना ? यह तो बमभोले हैं ! मैं आपसे ही पूछता हूं—क्या आप मुझपर विश्वास करते हैं ?"

"क्यों नहीं ?"

"नहीं करते !"

"मैंने तो तुमसे कहा कि मैं विश्वास पर ही जिन्दा हूं।"

"अच्छा तो कागज पर, जो मैं कहता हूं, लिख दीजिए !"—मुनिदेव ने कागज-कलम देते हुए कहा। जग्गू अवाक् दोनों को देख रहा था।

"क्या लिख दू ?"

"लिखिए···लिखवाता हूं। प्रिय मुनेश्वर, आज रात ढाई बजे··· पहुंचने वाली मालगाड़ी से जो तुम गांठें गिराने वाले हो, वे देसौरा गुमटी से काफी दूर, लाइन के उत्तर में गिराना; क्योंकि जगनारायण चौधरी

गुमटीवाला बहुत बदमाश है। वह दिन-र

"यह सब क्या लिखवा रहे हो?"—

के लिए कृत्रिम हंसी हसकर पूछा। मुनिदेव ने छूटते ही कहा—

"आप मुझपर विश्वास कीजिए! जिस रोज आपने विश्वासघात किया, उसी रोज मैं भी विश्वासघात करूंगा। कल आप चार हजार रुपया दे देंगे तो मैं आपको यह चिट्ठी सौंप दूगा। लिखिए, देर मत कीजिए, वर्ना अच्छा नही होगा।"

"अच्छा लिखाओ!"—बिसेसर सिंह ने होंठ काटते हुए कहा।

"लिखिए—क्या लिखा था? जगा रहता है। पिछली वार जब मैंने मालगाड़ी रोककर अनाज लूटा था, उस रोज बहुत मुश्किल से जग्गू को बेवकूफ बनाकर गुमटी पार की थी। —नीचे अपने दस्तख्त कीजिए।"

बिसेसर सिंह ने कोई उपाय न देखकर दस्तखत कर दिये। मुनिदेव ने वह चिट्ठी लेकर अपनी जेब के हवाले की और कहा—

"आप विश्वास रखिए—जब तक आप हम लोगों के साथ ईमानदारी से पेश आते रहेंगे, तब तक हम लोग आपके इशारे पर चलते रहेंगे।" बिसेसर सिंह ने देखा कि इस समय चालाकी से काम लेने के सिवा और कोई रास्ता नही है, इसलिए वे हसकर बोले···

"मुझे तुम लोगों पर पूरा विश्वास है। तुम्हें और जग्गू को मै अपना सगा भाई मानता हूं, तुम लोग मुझे भले ही पराया समझो।"

इसी समय कुलदीप पहुंच गया। गांठ उठाकर गाड़ी पर लाद दी गई। बिसेसर सिंह ने कुलदीप के कान में कुछ कहा। लेकिन मुनिदेव बन्दूक लिए दूर से ही सब कुछ सावधानी से देख रहा था। बिसेसर सिंह ने मुनिदेव के पास आकर अपनी बन्दूक मांगी, लेकिन मुनिदेव प्रेमपूर्वक टाल गया। वह जानता था कि बन्दूक के हाथ से जाते ही, जान भी चली जाएगी।

बिसेसर सिंह झख मारकर चले गये। मुनिदेव खुशी से उछलता हुआ बोला—

"देखा, कैसी बेजोड़ नकेल हाथ लगी है!"

"लेकिन इस पाप में तो अब हम लोग भी भागीदार बन गये।"

"कैसा पाप? जब पुलिस बेईमान है, रेलवे अधिकारी चोर है, तब

तुम्हारे धर्मात्मा बनने से क्या होता है ? ऐसी स्थिति में जो कुछ हम लोगों ने किया, उससे अच्छा काम और कुछ नहीं किया जा सकता था !" मुनिदेव ने गांव जानेवाली सड़क की ओर देखते हुए कहा। जग्गू अन्यमनस्क भाव से गुमटी में चला आया। मुनिदेव की बातें और तर्क उसकी समझ में नही आ रहे थे। जो कुछ हुआ, वह तो होता ही रहता है, लेकिन मुनिदेव ने जिस ढग से पत्र लिखवाया और रुपये की मांग की—जग्गू को वह ढंग और बात पसन्द नहीं आई। ससार में ही सब अच्छे-बुरे कर्म होते रहते हैं, लेकिन जग्गू उन बातों से अलग-थलग रहता आया था। वह अब भी अपने को अलग मानता था, लेकिन उसे अपनी निष्क्रियता पर ग्लानि होने लगी थी। वह खुलकर विरोध नही कर पा रहा था। निष्क्रिय तटस्थता दायित्व से मुक्ति नहीं देती बल्कि नैतिक पतन की ओर उन्मुख कर देती है। जग्गू चुपचाप गुमटी में चला आया, और उसके पीछे-पीछे मुनिदेव। जग्गू खाट पर बैठने लगा तो मुनिदेव ने पूछा—

"सेठ महंगीराम के करिश्मे नहीं देखोगे ?"

"मैं इससे अधिक कुछ नही देखना चाहता ! मुझे तुम इन बातों में न घसीटो, तो अच्छा हो···" जग्गू ने अनमने भाव से कहा। मुनिदेव अपने स्वभाव के अनुसार तमककर बोला—

"इस बात में तुमने मुझे घसीटा है या मैंने तुम्हें घसीटा है ?"

"लेकिन मैंने सौदेबाजी कभी नही की !"

"तुमने बार-बार सौदेबाजी की है ! जब पहली बार डाका पड़ा, तब तुमने खुलकर क्यों नही विरोध किया ? राघव ने तुमसे गवाही देने को कहा, लेकिन तुम टाल गये—क्यों ? क्या यह सब सौदेबाजी नही है ? बल्कि मैंने सौदेबाजी नही की है ! अब तुम चाहो, तो इस पत्र को दिखाकर बिसेसर सिंह को गिरफ्तार करा सकते हो, उसे इस राह से हटने पर मजबूर कर सकते हो !"

"कुछ भी हो, तुम्हें रुपया नही लेना चाहिए। यह पाप है !" जग्गू ने दुर्बल स्वर में कहा। मुनिदेव समझाता हुआ बोला—

"फिर वही बात ! प्यारे, मैं रुपया नहीं लेकर कौन-सा पुण्य करूंगा ? माल तो लूट ही लिया गया, पुलिस भी नहीं आयी और अभी पाप का घड़ा

कुछ अच्छा नहीं लगा। बोला—

"आइए मेरे साथ।"

शारदा मुंह धो रही थी। जेंटिलमैन को देखते ही आत्म विस्मृत-सी हो गयी, ब्रुश उसके हाथों से नीचे गिर गया, उसके चेहरे पर गहन मुग्धता के भाव उभर आये और उसके होंठों पर खिलखिलाहट के अतिरेक का स्पष्ट सकेत कंपकंपी के रूप में प्रकट हो उठा। जेंटिलमैन पूर्ववत् गंभीर बना रहा। उसने घर-आंगन में नजर घुमाकर देखा। उसके चेहरे पर किंचित् उपेक्षा का भाव अंकित हो उठा, और शारदा को एक बार ऊपर से नीचे तक देखकर वह ब्रह्मदेव से बोला—

"बाहर से सामान ले आओ!"

जग्गू की ओर किसीका ध्यान नहीं था। यह बात समझते जग्गू को देर नही लगी कि यही वह पुरुष है, जिसका जादू शारदा के सिर पर चढ़कर बोल रहा है। उसके मन को बात कुछ जची नहीं। उसे लगा कि वह व्यर्थ ही यहा खडा है—उपेक्षित। इसलिए चुपचाप बाहर निकल आया। हर चीज का रहस्य, खुलने के बजाय, उसके मन की आंखो के सामने और अधिक दुरूह, और जटिल, और अभेद्य बनता जा रहा था। जग्गू की मानसिक अवस्था ठीक वैसी ही हो रही थी, जैसे सैंकड़ो की भीड़ में बैठे उस बच्चे की होती है, जो किसी जादूगर को कभी सांप चबाते देखता है, तो कभी शीशा कड़कड़ाकर खा जाते। उसे सब कुछ रोमाञ्चकारी, भयप्रद, कौतूहलपूर्ण और बीभत्स लग रहा था। और अन्त में—'यह संसार ही एक माया है', ऐसा सोचकर वह बात की कड़ी ही तोड़ देता।

नित्यक्रिया से निवृत्त होकर जग्गू खाना बनाने बैठा ही था कि रूपन सिंह के घर की ओर से लोगों का शोरगुल सुनाई दिया। बाहर निकलकर उसने देखा कि बहुत-से लोग रूपन सिंह के घर की ओर भागे चले जा रहे हैं। शोर बढ़ता ही गया। कुछ देर तक जग्गू गुमटी पर ही खड़ा रहा, लेकिन शोर-गुल के बीच से जब चीख-पुकार और औरतों का रोना-चिल्लाना भी सुनाई पड़ने लगा तब जग्गू भी उस ओर लपका।

जग्गू के वहा पहुंचते-पहुंचते पूरा गाव इकट्ठा हो गया था। रूपन सिंह के सिर से रक्त की एक पतली-हलकी धारा बहकर ऊपरी होंठ तक आयी

हुई थी। वह रुआंसा चेहरा लिए, अपनी क्षीण आवाज में कुछ कहने की कोशिश कर रहा था, लेकिन अपनी बात कह नहीं पाता था; क्योंकि बिचित्तर सिंह हुहुआते हुए वहां पहुंच जाते और फिर तू-तू, मैं-मैं के शोर-गुल में रूपन सिंह का क्षीण स्वर डूब जाता। एक हंगामा मचा हुआ था। औरतों ने तो अपनी चीख-पुकार से आकाश सिर पर उठा लिया था। गोपाल फेंटा बांधकर इधर-उधर कूद रहा था, और बिचित्तर सिंह आंखें लाल-लाल किए, हाथ भांज-भांजकर रूपन सिंह के घर की औरतों से झगड़ रहे थे। रूपन सिंह जिससे भी अपनी फरियाद करने की कोशिश करते कि बिचित्तर सिंह गरजते हुए वहां आ पहुंचते। बिचारा कमजोर रूपन सिंह इतना ही कहकर रह जाता—

"हां-हां, तो मुझे लूट लो, गांव से निकाल दो! लेकिन याद रखो, भगवान सब देखता है।" यह सुनकर बिचित्तर सिंह और गरम हो उठते।

जग्गू को देखते ही रूपन सिंह ने उसके पास अपनी फरियाद करनी शुरू की ही थी कि बिचित्तर सिंह बीच में कूद पड़े। गोपाल भी उछलकर वहां आ पहुंचा। जग्गू को यह बात बहुत बुरी लगी। वह तमककर बोला—"आप दोनों बाप-बेटा मिलकर, इस गरीब को चबा क्यों नहीं जाते? इस तरह झांऊ-झांऊ करने से क्या होगा?"

जग्गू की यह बात सुनकर बिचित्तर सिंह और गोपाल दोनों ही क्षण-भर के लिए ठिठक गये। जग्गू उनका अपना आदमी होकर भी ऐसी बात बोल सकता है—ऐसी उनको आशंका नहीं थी। जग्गू ने शिकायत के स्वर में कहा—"आप लोग इनकी बात सुनने नहीं देते, और खुद ताकत के बल पर अत्याचार करते फिरते हैं। गरीब पर दया भी नहीं आती!"

बिचित्तर सिंह को भी क्रोध आ गया। उन्होंने व्यंग्य में कहा—"तुम बड़े न्यायी और दयालु हो, तो इन्हें भी अपने घर में थोड़ी-सी जगह दे दो। लेकिन मेरी जमीन पर कब्जा जमाने की कोशिश करेंगे, तो खून हो जाएगा!"

जग्गू को बिसेसर सिंह की बात याद आ गयी। उसने भी व्यंग्य किया—"हां-हां, खून क्यों नहीं होगा? इसीलिए तो बेटे को पहलवान बनाया है! लेकिन यह मत भूलिए कि फांसी का फन्दा मोटे गले को भी जकड़ सकता है।" जग्गू की इस बात से गोपाल का पौरुष धधक उठा। चीखकर

बोला—

"मुझे फांसी का डर नहीं है !"

"अरे चुप भी रहो ! कमजोर पर हाथ उठानेवाले में इतनी हिम्मत कहां कि मौत का सामना कर सके ! जो अपनी जान की परवाह नहीं करता वह छोटी-छोटी बातों की परवाह करेगा ?"

जग्गू की बातों से रूपन सिंह को थोड़ी हिम्मत हुई। उसने सरोष कहा—

"मैं गरीब आदमी हूं; आज तीस वर्ष से जिस जमीन को जोतता आया हू, वह जमीन मुझसे ये लोग छीनना चाहते हैं। माना कि यह जमीन इन्हींकी है, लेकिन इसमें मैंने मकई की फसल लगायी है, इस खेत पर मैंने मेहनत की है; और अब ये लोग कहते है कि खेत में मत घुसो !"

"हां-हां, मेरा खेत है। मैं अपने खेत में नहीं घुसने दूंगा !" बिचित्तर सिंह ने गरजकर कहा।

"कैसे नहीं घुसने दीजिएगा ? अब इसका फैसला कचहरी में होगा !" रूपन सिंह ने गरजकर प्रत्युत्तर दिया—"फसल काट लेने पर आप जमीन वापस ले लेते, तो मुझे कोई एतराज नहीं था; लेकिन अब तो जमीन भी नहीं लेने दूंगा। आपका न्याय नहीं चलेगा ! सारा गांव जानता है कि मैं तीस साल से यह जमीन जोतता हूं और इसीके एक हिस्से में मेरा घर भी है जिसका छप्पर आपने अभी उजाड़ दिया।"

अब गांववाले भी कुछ न कुछ बोलने लगे। जग्गू के विरोध ने तर्क-वितर्क की एक लहर उठा दी। भीड़ तो अनुकरण करना जानती है। चारों ओर से तरह-तरह की आवाजें उठने लगीं। लोग दोनों पक्षों को समझाने-बुझाने लगे। कुछ लोग बिचित्तर सिंह को समझा-बुझाकर वहां से हटा ले गये। लेकिन स्थायी वैमनस्य का बीज, जो किसीने जान-बूझकर बिचित्तर सिंह और रूपनसिंह के मन में डाल दिया था—अंकुरित हो उठा। जग्गू चुपचाप गुमटी पर लौट आया और रूपन सिंह थाने चले गये।

उसी दिन शाम होते-होते दारोगा गांव में आ धमका। तहकीकात और गवाहियां शुरू हुईं। मुकद्दमा दायर हो गया।

दारोगा के चले जाने के बाद रूपन सिंह गुमटी पर जग्गू से मिलने

पहुंचे। जग्गू का मन बहुत उदास था। सुबह-सुबह उसे एक नया अनुभव हुआ था। तीन-चार दिन के भीतर ही जग्गू के मन का कोमल पक्ष प्रस्फुटित हो उठा था। शारदा ने उसके मन में सोए हुए शाश्वत शिशु को जाग्रत् कर दिया था। अब उसके मन का शिशु बिलखता, सहारा खोजता, स्नेह और वात्सल्य के लिए ललकता, रूठता और कभी-कभी किलकारियां भरता। नारी का संसर्ग पुरुष में चेतना भर देता है, भावनाओं के द्वार खोल देता है, कल्पना और द्वन्द्व की लहरें उठा देता है, और तब पुरुष कभी कोमलता की ओर दौड़ता है, तो कभी कठोरता की ओर। लेकिन प्रायः संतुलन के अभाव में मुंह के बल जा गिरता है। शारदा ने, मिलते ही जग्गू पर पूर्ण अधिकार जमाना शुरू कर दिया था। जग्गू ने उस अधिकार को बहन का भाई पर अधिकार जाना। सहोदरा बहन का प्रेम आदत, व्यवहार और संस्कार में घुला-मिला रहता है, इसलिए भाई उसके प्रति जागरूक नहीं रहता। लेकिन शारदा अनायास ही मिली हुई एक अनजान-सरल सुन्दरी थी। यहां आकर्षण मुख्य था—संस्कार गौण; यहां भावना तीव्र थी, व्यवहार मद्धिम; और कोमलता गहरी थी लेकिन कठोरता रंचमात्र भी नहीं। जग्गू ने एक शाम खाना नहीं खाया तो शारदा रूठ गई थी; लेकिन आज सुबह से जग्गू की किसीने खोज-खबर नहीं ली। जग्गू के मन का शिशु बिलख-बिलखकर रो रहा था। उसके मुंह में अन्न का दाना गए चौबीस घंटे से ऊपर हो रहा था।

रूपन सिंह का ऐसे समय आना उसे अच्छा नहीं लगा। लेकिन रूपन सिंह कुछ उम्मीद लेकर आए थे। उन्होंने बिना कहे-पूछे बैठते हुए कहा

"मामला तो दर्ज हो गया। अब फैसला भगवान के हाथ में है।"

जग्गू कुछ नहीं बोला।

कुछ देर की चुप्पी के बाद रूपन सिंह ने कहा—

"अब चिंता करने से काम तो चलेगा नहीं। उद्यम करना है, उद्यम! लेकिन सच कहता हूं, जग्गू—यदि तुम नहीं आते, तो दोनों बाप-बेटे मुझे अधमरा ही कर देते!"

जग्गू फिर भी चुप रहा। रूपन सिंह ने सोचा कि मेरे ही दुःख से यह इतना दुःखी हो रहा है। अतः दुःखी स्वर में बोले—

"मैंने आज जाना, कि कौन मेरा अपना है और कौन पराया। उस दिन बिसेसर सिंह तुम्हारे बारे में तरह-तरह की बातें कह रहे थे, लेकिन मैंने विश्वास नहीं किया।" जग्गू ने चौंककर रूपन सिंह को देखा। रूपन सिंह बोलते गए—"हां जग्गू ! मैंने बिलकुल विश्वास नहीं किया ! मैं तो तुम्हें बचपन से जानता हूं। ठीक अपने बाप जैसा स्वभाव पाया है तुमने ! वह भी तुम्हारी तरह दयालु थे। क्या हुआ, यदि एक अबला को अपने घर मे शरण दे दी तो ? ठीक किया। मैंने बिसेसर सिंह के मुह पर कह दिया कि बिना जाने-समझे, उस बेचारे पर लांछन लगाना ठीक नही है। हा, साफ कह दिया मैंने। उन्हें मेरी बात बुरी लगी। लेकिन उससे क्या ? माना कि वह भी मुझपर बहुत दयालु है, लेकिन गलत बात मैं कैसे मान लू ? ठीक कहता हू कि नही जग्गू ?"

जग्गू अवाक् होकर रूपन सिंह को देख रहा था। और उसकी आखों के आगे रहस्य का पर्दा किंचित् कांप रहा था। जग्गू के सामने पश्चिम में सूरज डूब रहा था, क्षितिज के पास बादलों की तहें—गहरी लाल और बैंगनी रग में रंगी, नीले आकाश की किनारी जैसी लग रही थीं। घने, अंधियारे, खामोश पेड़, डूबते सूरज को सिर झुकाए विदा दे रहे थे। पता नही, जग्गू प्रकृति की रहस्यमयता में डूब रहा था या आदमी के कारनामों को परखने का प्रयत्न कर रहा था। लेकिन उस अर्द्धशिक्षित ग्रामीण के चेहरे पर किसी गहरी वेदना, गहरे आनन्द और दुरूह व्यंग्य की अभिव्यक्ति स्पष्ट थी। उसके चेहरे की अभिव्यक्ति प्रसिद्ध चित्रकृति 'मोनालिसा' की अभिव्यक्ति जैसी दुरूह थी।

रूपन सिंह जग्गू की चुप्पी देखकर हैरान थे। उन्होंने अपनी व्यस्तता का जग्गू को बोध कराने के लिए कहा—

"अच्छा जग्गू, अभी तो चलता हू। और कई गवाह ठीक करने हैं। तुम्हें कचहरी में क्या कहना है, यह कल बता दूगा।"

"मुझे आपके मुकद्दमे से कोई मतलब नही !"

जग्गू अचानक ही गम्भीर स्वर मे बोल उठा। रूपन सिंह चौंक उठे—

"क्या कहते हो जग्गू ? तुम्हारे और बिसेसर सिंह के बूते पर तो मैंने मुकदमा किया है। बिसेसर सिंह ने भी गवाह बनने से इंकार कर दिया है,

लेकिन वह कम से कम रुपये-पैसे की मदद देने को तो तैयार ही हो गए हैं !"

"मैं आपकी किसी तरह मदद नहीं कर सकता !" जग्गू ने पूर्ववत् गम्भीरता से कहा। रूपन सिंह ने पैंतरा बदला—

"यह कैसे हो सकता है ? क्या तुम भी बिचित्तर सिंह से डरते हो ?"

"मैं किसीसे नहीं डरता ! लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि हर गलत काम में मैं शामिल होता चलूं।" जग्गू झल्ला उठा।

"लेकिन मुझपर तुम्हें दया करनी ही होगी जग्गू ! तुम्हें मैं अपने बेटे की तरह प्यार करता हूं। मेरी छोटी-सी विनती नहीं मानोगे ?" रूपन सिंह ने गिड़गिड़ाकर कहा। जग्गू पसीज गया। बोला—

"चलिए, मैं सुलह करवा देता हूं। मुकद्दमा लड़ने से आपको कुछ नहीं मिलेगा। आप बर्बाद हो जाइएगा !"

"सुलह ? सुलह तो मैं मरकर भी नहीं करूंगा। मैं बर्बादी से नहीं डरता ! अपनी सारी जमीन बिसेसर सिंह को लिख दूंगा, लेकिन बिचित्तर सिंह को चैन नहीं लेने दूंगा।"

"आप दोनों बिसेसर सिंह के हाथों बिक गए हैं। यदि मेरी बात पर ध्यान नहीं दीजिएगा, तो पछताइएगा !"

"अरे जाओ-जाओ ! आज का लौंडा मुझे उपदेश देने आया है ! बिसेसर सिंह ठीक ही कहता था कि तू लड़की को कहीं से उड़ाकर ले आया है।" यह कहकर गुस्से में कांपते हुए रूपन सिंह तमकते हुए चले गए। जग्गू को उनकी बुद्धि पर न तो हंसी आई और न रोना आया। उसके होंठों पर वही 'मोनालिसा' के होंठों की मुस्कराहट जैसी दुरूहता, दयनीयता और व्यंग्य कांपता रहा। सामने क्षितिज पर के बादल की तहें, पेड़-पौधे, प्रकाश-छाया घुल-मिलकर अंधकार में एकाकार हो गई थीं। जग्गू गुमटी में गया और हाथबत्ती जलाकर रामायण पढ़ने बैठ गया—

नर पीड़ित रोग न भोग कहीं। अभिमान विरोध अकारन हीं।
लघु जीवन संबतु पंच दसा। कल्पांत न नास गुमानु असा···

"आज बहुत भक्ति-भाव उमड़ रहा है ?" मुनिदेव आते ही बोल पड़ा। जग्गू ने रामायण बन्द कर दी और मुनिदेव को एकटक देखना शुरू कर दिया।

"ऐसे क्या देख रहे हो ?"—मुनिदेव ने आश्चर्य से पूछा। जग्गू मुस-कराने लगा, बोला—

"देख रहा हूं कि तुममें कितने दिन जीने का गुमान है।"

"बस ? तो यह मुझसे ही पूछ लेते ? इस तरह देखने का कष्ट करने की क्या जरूरत थी ?" मुनिदेव मजाक में बोलता रहा—

"मुझमें पांच वर्ष तक जीने का गुमान है—जब तक मुझमें जवानी है।" यह कहकर मुनिदेव ने नोटों का बंडल निकालना शुरू किया।

"आखिर तुमने नहीं ही माना !"—जग्गू के स्वर में विषाद था।

"इसमें मानने न मानने की क्या बात थी ? लो रखो !"

"नहीं, मुझे नहीं चाहिए ! तुम भी नहीं लेते, तो अच्छा था।" जग्गू ने खाट से उठते हुए कहा—"यह धन तुम्हारा नहीं है।"

"फिर किसका है ? बिसेसर सिंह का ?" मुनिदेव ने मुंह बनाकर पूछा। जग्गू अपने दोनों हाथ पीठ पर बांधता हुआ बोला—

"नहीं, उसका भी नहीं है। यह पाप का धन है !"

"और पुण्य का धन वह है, जिससे न हमारा पेट भरता है और न देह ढकती है ?" मुनिदेव के स्वर में क्रोध और व्यंग्य था। वह बोलता गया—

"तुम्हारे लिए तो संसार में कोई नहीं है। गरीबी का दुःख तुम क्या जानो ! अगर भूख का सामना करना पड़ता, तो मालूम हो जाता कि आज के जमाने में पाप का धन कौन है, और पुण्य का धन कौन ! खैर, तुम्हें नहीं लेना है, तो मत लो; लेकिन मैं तुम्हारे जैसा कायर नहीं हूं।"

"मैं कायर हूं ?" जग्गू ने तमककर पूछा।

"हां, तुम परले दर्जे के कायर हो ! जो खुलकर पाप-कर्म का विरोध नहीं कर सकता उसे उपदेश देने का अधिकार नहीं है ! तुमने दो बार मालगाड़ी लुटवाई है और यदि मेरी सहायता नहीं लोगे, तो जिन्दगी-भर यही पाप-कर्म करवाते रहोगे !"

जग्गू फिर चुप हो गया। उसे लग रहा था कि मुनिदेव जो कुछ कह रहा है सत्य है। फिर भी इस तथ्य को स्वीकार करने की उसमें शक्ति नहीं थी। इधर चन्द रोज में ही, वह तन-मन से बहुत दुर्बल हो गया था। वह

चुपचाप उदास मन से खाट पर बैठ गया। उसके मन की बेचैनी मुनिदेव से छिपी नहीं रही। मुनिदेव ने स्नेहपूर्वक कहा—

"अच्छा चलो, मेरे घर चलो ! वहीं बातें होंगी।"

"अभी मैं कहीं नहीं जाऊंगा।"

"तुम्हें चलना पड़ेगा !"

"मुझे इतना दुर्बल मत समझो मुनिदेव !"

"मेरे घर न जाने में तुम्हारी कौन-सी मजबूती सिद्ध होती है ?"

"पहले मैं अपने मित्रों का विरोध करना सीख लूं, फिर शत्रुओं का भी विरोध करूंगा।" जग्गू ने हंसकर कहा। लेकिन उसकी हंसी में दुःख था, करुणा थी।

"अच्छी बात है ! अब मैं चलता हूं। रुपये की जरूरत हो, तो मांग लेना।" मुनिदेव ने जाते हुए कहा।

"चिट्ठी बिसेसर सिंह को वापस कर दी ?"

"हां यार, चिट्ठी तो उसने ऐंठ ली; लेकिन कोई बात नहीं। मैं भी घात में बैठा हूं।"

"बड़े भारी दुष्ट हो !"

"केवल दुष्टों के लिए !" यह कहता हुआ मुनिदेव चला गया। जग्गू ने फिर से रामायण पढ़नी शुरू की, लेकिन उसका मन नहीं लगा। वह चुपचाप खाट पर पड़ा रहा—न जाने कब तक।

६

दिन बीतते चले गए। इस बीच कई नयी बातें पुरानी पड़ गईं और पुरानी बातें ताजा हो आईं। वर्षा का मौसम खत्म हुआ। खेतों में गेहूं-जौ के पौधे लहलहा उठे। रूपन सिंह और बिचित्तर सिंह मुकदमेबाजी के चक्कर में, बेहाल-फटेहाल रहने लगे। बिसेसर सिंह की दिनचर्या में या जीवन-क्रम में कोई परिवर्तन नहीं आया—वही मधुर भाषण, अफीम-सेवन, दिन में साधु-सज्जन जैसा रहन-सहन और रात होते ही दुर्दान्त दस्यु ! लेकिन रेलवे

लाइन पर मिलिट्री का कड़ा पहरा लग जाने के कारण देसौरा की गुमटी के आस-पास उनकी गतिविधि कुछ दिनों के लिए समाप्तप्राय हो गई।

राजस्थानी जेंटिलमैन ठाकुर भानुप्रताप न जाने क्यों जग्गू से कतराता फिरता। जग्गू ने देखा, महसूस किया कि यह आदमी जो कुछ भी करता है, जो कुछ भी बोलता है—सब नपी-तुली योजना बनाकर, उसका परिणाम सोच-समझकर। उसके बोलने में, अनुगृहीत करने का भाव प्रबल रहता; वह अपनी बात कम करता और करता भी तो ख़याली बातें करता! दो रोज, तीन रोज पर शारदा और भानुप्रताप दोनों मुजफ्फरपुर जाते, सिनेमा देखते, खरीद-फरोख्त करते और लौट आते। साथ में ब्रह्मदेव भी होता। ब्रह्मदेव से ही जग्गू को पता चला कि ठाकुर साहब शराब खूब पीते है और उसके बाद शारदा की मरम्मत करते है। लेकिन नशा उतरते ही दोनों एक-दूसरे के प्यारे बन जाते हैं। वे लोग कब तक यहा पड़े रहेंगे, फिर कहां जाएंगे, क्या करेंगे, इसकी चर्चा तक नहीं होती। जग्गू भी जान-बूझकर कुछ नहीं पूछता। एक दिन भानुप्रताप घूमता हुआ गुमटी पर आया और बहुत ही गम्भीरतापूर्वक बोला—

"आपकी जमीन मे मैं एक दोमजिला मकान बनाना चाहता हूं। वह मकान आपके और शारदा के नाम से रहेगा। उसीमें एक तरफ गोदाम बनवाऊंगा, जिससे कि यहा रहकर कुछ बिजनेस कर सकूं। मेरे ख़याल से—पचास-पचपन हजार में काम बन जाएगा; आपका क्या ख़याल है?"

'पचास-पचपन हजार?' जग्गू सोचता रह गया, बोला कुछ नही। भानुप्रताप मुह से सीटी बजाता हुआ, पैंट मे दोनों हाथ डाले, घर चला गया।

जग्गू अपने घर पहुंचा। बाहर कोई नही था। भीतर बरामदे में भानुप्रताप बैठा हुआ दाढ़ी बना रहा था। शारदा जमीन पर बैठी, ठेहुनो मे ठुड्डी दाबे, उदासी में डूबी थी। जग्गू आंगन पारकर सीधे बरामदे में पहुंचा और मुसकराता हुआ बोला—

"आज आप इस तरह उदास क्यों बैठी हैं?"

"आपको मतलब? मेरे साथ इस तरह बात मत किया कीजिए!" शारदा गरज उठी। जग्गू को काठ मार गया। उसे भ्रम हुआ कि शारदा

कहीं पागल तो नहीं हो गई।

कुछ देर लजाया-झल्लाया वह ठगा-सा खड़ा रहा। शारदा पूर्ववत् ऐंठी हुई बैठी रही। सात्त्विक क्रोध रूप-गुण को प्रज्वलित कर देता है, और दुर्भावजनित क्रोध सरल-सुन्दर को भी बीभत्स बना देता है। शारदा की विकृत आकृति जग्गू देख नहीं पाया और तेजी से बाहर निकल आया। जैसे और भी कई बातें उसकी समझ में नहीं आती थी, वैसे ही यह बात भी उसकी समझ मे नहीं आई। उस दिन के बाद से वह कई रोज तक घर नहीं गया, और न भानुप्रताप और ब्रह्मदेव ही उनसे मिलने आए। जग्गू को भानुप्रताप यदि दुर्बोध लगता तो शारदा अबोध लगती। और गहराई में एक सम्मोहन है, अनिवर्चनीय सौन्दर्य है, मूक संगीत है; लेकिन रहस्य में शुष्कता है, विराग है, दुराव और कर्कशता है। जग्गू को भानुप्रताप प्रभावित नहीं कर सका। एक दिन सुबह ही कोट-पैंट से लैस भानुप्रताप गुमटी पर अचानक आ धमका। जग्गू रोटी सेंक रहा था, भानुप्रताप को देखकर उठ खड़ा हुआ।

"मैं आज जा रहा हूं।" भानुप्रताप ने मुस्कराते हुए कहा।

"कितने बजे की गाड़ी से?" जग्गू के स्वर में आश्चर्य था।

"अभी दस बजे की गाड़ी से। लेकिन एक हफ्ते में ही लौट आऊंगा। एक जरूरी काम से जा रहा हूं। आप जरा शारदा का खयाल रखिएगा।"

"तो क्या वे नहीं जा रही है?"

"नहीं, वे तो यहीं रहेंगी।" भानुप्रताप ने सहज उत्तर दे दिया, जैसे मामूली-सी बात हो। जग्गू खीझ और क्रोध से चुप हो रहा। क्षण-भर बाद भानुप्रताप ने कहा—

"आप घर पर ही क्यो नहीं खाना खाते? मेरे जाने के बाद तो आपको वहीं रहना चाहिए।"

'*क्या चाहिए और क्या नहीं चाहिए, यह मैं स्वयं जानता हूं।*' जग्गू ने मन में कहा, लेकिन बोला कुछ नहीं।

भानुप्रताप उसी दिन दस बजे की गाड़ी से चला गया। जग्गू का मन गुमटी पर लगा नहीं। 'घर जाना चाहिए या नहीं?' इसी द्वंद्व से ऊबकर

यह स्टेशन चला आया। उसे देखते ही राघव अपनी आदत के अनुसार उछल पड़ा—

"आइए, जगनारायण बाबू !"

जग्गू चुपचाप एक ओर बैठ गया। मुनिदेव ने मुस्कराकर उसकी ओर देखा और फिर वह अपने काम में लग गया। राघव गम्भीरतापूर्वक मुंह फाड़कर भाषण के लहजे में बोला—

"चारों ओर अन्याय का राज है ! लेकिन कोई देखनेवाला नहीं है। बिसेसर सिंह इस बार भी बेदाग बच गया। जानते हो, उस साले डाक्टर ने मुझे सर्टिफिकेट देने से इंकार कर दिया। खैर, कभी न कभी तो मौका आएगा ही ! मैं एक-एक को···।"

"फिर अपनी बकवास शुरू की ?" मुनिदेव ने दांत पीसते हुए कहा। राघव हंसता हुआ बोला—

"बकवास ?···अच्छा, तो मैं चला ही जाता हूं ! मुझे एक जरूरी काम भी है। जयहिन्द !"

राघव के चले जाने के बाद जग्गू उदास स्वर में बोला—

"मुनिदेव, आज मुझे भंग पीने की इच्छा हो रही है।"

"अभी प्रबंध करता हूं···लेकिन भंग ही क्यों—ताड़ी क्यों नहीं ?"—मुनिदेव ने तपाक से पूछा। जग्गू हिचकिचाता हुआ बोला—

"नहीं, नहीं, ताड़ी नहीं पीऊंगा !"

"क्यों ?"

"जाति भ्रष्ट हो जाएगी और उसमें बदबू भी बहुत होती है।" जग्गू ने नाक सिकोड़कर घृणा व्यक्त की। मुनिदेव उछलकर उसके पास आ गया और बोला—

"अरे, आजकल बैसाख थोड़े है कि ताड़ी से बदबू आएगी। तुम चलो, गुमटी पर। ताड़ी-चिखना वगैरह लेकर अभी पहुंचता हूं।"

"नहीं-नहीं, मैं ताड़ी नहीं पीऊंगा।" जग्गू के स्वर में दृढ़ता थी।

"लेकिन भंग तो शाम को ही पी जा सकती है।" निराश स्वर में बोलता हुआ मुनिदेव फिर अपनी जगह पर जाकर बैठ गया। जग्गू कुछ देर बाद ही वहां से चल पड़ा। गुमटी पर पहुंचकर उसके पैर अनायास ही घर

की ओर बढ़ गए। उदारता, दया और भावुकता की बाढ़ के सामने दृढ़ता का बांध ठहर नहीं पाता।

शारदा घर के भीतर वाले बरामदे में खाट पर औंधी पड़ी थी। ब्रह्मदेव घर के बाहर बरामदे में रखी हुई चौकी पर सो रहा था। चारों ओर खामोशी थी। कुछ देर तक जग्गू आंगन में खड़ा-खड़ा शारदा को देखता रहा। उसके मन में उदासी और वैराग्य का भाव करुणा और दृढ़ता से होड़ ले रहा था। अधिक देर तक वहां खड़ा रहना उसने उचित नहीं समझा, और वह लौटने ही वाला था कि शारदा ने करवट बदली। जग्गू पर नजर पड़ते ही वह सकपकाकर उठ बैठी। जग्गू ने देखा—उसकी आंखें लाल-लाल और सूजी हुई थी, चेहरा पीला पड़ गया था और सिर के बाल रूखे रूखे हो रहे थे।

"तबीयत खराब है क्या ?" जग्गू ने पूछा ही था कि शारदा फफक-फफककर रोने लगी। जग्गू किंकर्त्तव्यविमूढ हो गया। उसने सोचा कि भानुप्रताप शायद झगड़कर चला गया है। जग्गू कुछ देर तक सकते की हालत में खड़ा रहा, और शारदा की कांपती हुई देह देखता रहा। ममता के उद्रेक से वह अनायास ही बोल उठा—

"भानु बाबू रूठकर चले गए हैं क्या ?"

शारदा ने सिर हिलाकर 'नहीं' का संकेत कर दिया। बोली कुछ नहीं।

"फिर क्या हुआ है ?"

"वैसे ही रुलाई आ गई।" शारदा आंखें पोंछती हुई, अवरुद्ध गले से बोली।

"बिना किसी बात के भी कोई रोता है क्या ?" जग्गू ने मुस्कराते हुए पास जाकर पूछा।

"आप तो जैसे जानते ही नहीं ?" मानवती जैसी शारदा बोली। जग्गू कौतूहल से भर गया, क्योंकि उसे कुछ भी पता नहीं था। उसने पूछा—

"मैं आपके रोने का कारण कैसे जान सकता हूं भला ? दूसरों की बात तो दूर, मैं तो अपनी बात भी नहीं जान पाता।"

"मैं कोई दूसरी हूं ?" शारदा बच्चों जैसी क्रुद्ध हो उठी। जग्गू सकपका गया। बोला—

"नहीं, मेरा मतलब यह नहीं है। बात यह है कि मन तो सबका अलग-अलग है, फिर आपके मन की बात मैं कैसे जान सकता हूं ?"

"आप यदि मुझे अपना समझते हैं, तो मेरे मन की बात अवश्य जान सकते हैं !"

"असंभव !" जग्गू को वह बात याद आ गई जब शारदा ने उसे भानुप्रताप के सामने डपट दिया था। जग्गू बोलता गया—"मेरे समझने या नही समझने से ही तो सब कुछ नहीं हो जाता ! आप क्यों खुश हैं, क्यों नाराज हैं—यह मैं कदापि नही जान सकता !"

"मैं तो आपके मन की बात जान सकती हूं।" शारदा ने मुस्कराते हुए कहा। जग्गू किंचित् व्यंग्य से बोला—

"आपकी बात कुछ और है। मैं तो देहाती आदमी हूं। अब मैं यह कैसे समझू कि अभी-अभी आप क्यों रो रही थी, और अब क्यों मुस्करा रही हैं ?"

"देहाती के साथ-साथ आप बमभोले भी हैं ! आप अपने किसी विवाहित मित्र से पूछिएगा, तो वह बता देगा।"

"जब मैं नहीं जान पाया, फिर मेरा मित्र कैसे जानेगा ?"

"उससे कहिएगा कि···कि···आज, जब ठाकुर साहब चले गए···तब शारदा रो रही थी।" यह कहकर शारदा लजा गई। उसने तलहथियों से अपनी आंखें बन्द कर लीं। जग्गू हंसता हुआ बोला—

"ओ हो, तो यह बात है ! भई, मैं अनुभवहीन आदमी हूं। इसके अलावा, आपका स्वभाव कुछ ऐसा है कि···"

"देखिए, आप फिर मेरे स्वभाव को कोसने लगे।"

"नहीं-नहीं, मैं कोस नही रहा हूं। मैं तो आपसे कह रहा था कि किसी के स्वभाव को समझने के लिए समय लगता है।"

"लेकिन मुझे आपको समझने में थोड़ी देर भी नहीं लगी। हां, यह दूसरी बात है कि जो कुछ मैं समझ पाई हू, वैसा कुछ दिन बाद नहीं रहा।"

जग्गू मन में सोच रहा था कि यह लड़की कैसी विचित्र है ! कभी हंसती है, कभी रोती है, और कभी झल्ला उठती है···'तिरिया चरित्तर' क्या इसीको कहते है ?···लेकिन इसके मुखमंडल पर भोलापन का भाव

सर्वदा वर्तमान रहता है। जग्गू फिर क्षणिक कड़ुवाहट से घुट रहा था। वह अपने मन का भाव छिपा नहीं सका और बोला—

"मैं गिरगिट की तरह रंग बदलना जानता नहीं। मुझमे ऐसी बीमारी होती तो···" जग्गू आगे के शब्द बोल नही पाया।

"तो क्या होता ?"—शारदा ने विनोद-मिश्रित कौतूहल से पूछा।

"तो ?···जाने दीजिए। क्या कीजिएगा सुनकर !"

"अब तो आपको बताना ही पड़ेगा !" शारदा ने जिद्द पकड़ ली। जग्गू असमंजस मे पड़ गया कि इसी समय बाहर से गोपाल की पुकार सुनाई दी। गोपाल और विचित्तर सिंह से उन दिनों जग्गू मन ही मन चिढ़ा हुआ था, लेकिन ऐसे अवसर पर गोपाल का आना उसे वरदान जैसा लगा। उसके बाहर पहुंचते ही गोपाल बोला—

"बाबू आपको बुला रहे हैं।"

"किसलिए ?"

"यह मुझे नही मालूम।"

जग्गू क्षण-भर कुछ सोचता रहा, फिर गोपाल के साथ हो लिया। रास्ते में गुरुजी का घर पड़ता था। वैसे उनका नाम था रामखेलावन मिश्र, लेकिन इलाके में वह गुरुजी के नाम से ही विख्यात थे। गुरुजी की उम्र लगभग अस्सी वर्ष होगी। वह उस गांव के भगिनमान थे। सन की तरह सफेद, बड़ी-बड़ी मूछें; गंजा सिर; झुर्रियो से भरा हुआ, तेजोमय मुखमंडल; और उनकी दोहरी लम्बी देह देखनेवालों के मन में श्रद्धा उत्पन्न करती। वह श्रद्धेय थे भी। जीवन-भर उन्होंने अपर प्राइमरी स्कूल में बच्चों को पढ़ाया, और बदले में बच्चों ने अनजाने ही अपना शिशुत्व और निश्छलता उन्हें दक्षिणास्वरूप प्रदान कर दी। घोर विपत्ति के समय गांववाले उनकी राय लेने आया करते। उनके घर में उनकी सत्ताईस वर्षीया विधवा बेटी के सिवा और कोई नही था। जग्गू चुपचाप, अपनी परेशानियो में खोया-खोया चला जा रहा था कि गुरुजी की आवाज सुनकर चौक उठा—

"कहां जा रहे हो जग्गू ? अपने बूढ़े गुरु को बिलकुल भूल गए ?"

"प्रणाम गुरुजी !" जग्गू झेंपता हुआ गुरुजी के सामने खड़ा हो गया।

"कहां रहते हो आजकल ? बिलकुल दिखाई नहीं देते !" गुरुजी ने स्नेहपूर्वक पूछा।

जग्गू अपनी कनपटी सहलाता हुआ विनम्रता से बोला—

"यहीं तो रहता हूं गुरुजी ! इधर कुछ झंझटों में फंस गया था, सो मिल नहीं सका।"

"हां, मैंने बहुत कुछ सुना है और अब तुमसे सुनने की प्रतीक्षा में हूं।" गुरुजी ने कृत्रिम क्रोध दरसाते हुए कहा। उनके स्वर में प्यार अधिक था। तभी गुरुजी की बेटी अनुराधा गिलास में पानी लेकर आई। जग्गू ने सहज दृष्टि से अनुराधा को देखा, लेकिन तत्क्षण ही उसकी उपचेतना जाग्रत् हो उठी। बचपन के दिन उसकी आंखों के आगे तैर गए, जब वह अनुराधा को रानी बनाता था और खुद राजा बनता था। इधर जग्गू अनायास ही भावुक और संवेदनशील हो उठा था। जग्गू ने अनुराधा की ओर से दृष्टि हटा ली, लेकिन उसका मन कई तरह की कोमल भावनाओं में उलझ गया। उसने महसूस किया कि अनुराधा सुन्दर है, सुशील है और अभागिन है। जग्गू झेंपता हुआ बोला—

"अच्छा, अभी तो आज्ञा दीजिए ! बाबू बिचित्तर सिंह ने बुलाया है।"

"फिर मिलना जरूर !" गुरुजी ने आदेशात्मक स्वर में कहा। जग्गू बिना कुछ बोले, वहां से चल पड़ा।

बिचित्तर सिंह अपने दालान के बरामदे में, खाट पर बैठे थे। जग्गू को देखते ही वे उठ खड़े हुए, और बहुत ही स्नेह से उन्होंने जग्गू को अपनी बगल में बैठाया, और कुशल-क्षेम पूछा। जग्गू अनासक्त भाव से जवाब देता रहा। उसने एक बार भी बिचित्तर सिंह की ओर आंखें उठाकर नहीं देखा। बिचित्तर सिंह भली भांति समझ रहे थे कि जग्गू किसी कारण से नाराज है, लेकिन उन्हें कारण पता नहीं था। कुछ देर तक इधर-उधर की बात करने के बाद बिचित्तर सिंह गम्भीर और दुःखी स्वर में बोले—

"जग्गू भाई, मैंने आज तुम्हें बहुत जरूरी काम से बुलाया है। तुम जानते हो कि मुझे गांववालों ने सरपंच बना दिया है। मैंने भी आज तक अपना धर्म निभाया है। दस की दुश्मनी मोल ले ली, लेकिन जान-बूझकर

किसीके साथ अन्याय नहीं होने दिया। तुम्हें मैं अपना गोपाल ही समझता हूं। इसलिए जब तुम्हारी शिकायत मेरे पास पहुंची, तब यही समझो कि मेरे ऊपर वज्र गिर पड़ा !"

"मेरी शिकायत ?" जग्गू चौंक उठा। विचितर सिंह ने अपना कथन जारी रखा—

"हां, जब से तुम्हारी शिकायत मेरे पास पहुंची है, तब से मैं ठीक से भोजन नहीं कर पाया हूं। सो नहीं पाया हूं !...जवान बेटे की देह छूकर कहता हूं।"

"लेकिन मेरा क्या अपराध है ?" जग्गू ने आश्चर्य और घबराहट की हंसी हंसते हुए पूछा।

"तुमने एक अनजान जाति की औरत को अपने घर में बैठा रखा है। गांववाले कहते हैं कि इससे गांव-भर की बहू-बेटियों को भी भागने की हवा लग जाएगी। छुआछूत की तो खैर, अब कोई बात ही नहीं उठ सकती। लेकिन धर्म और मर्यादा का उल्लंघन करके गांव में रहना अच्छा नहीं है !"

"देखिए विचित्तर भाई, वे लोग अतिथि के तौर पर मेरे घर में रह रहे हैं। उनके लिए कहीं कोई ठौर-ठिकाना नहीं था। मैंने उन्हें अपने घर में शरण देकर कोई पाप नहीं किया है ! जो मेरे ऊपर अंगुली उठता है, वह स्वयं पापी है !"—जग्गू ने किंचित् क्रोध से कहा। विचितर सिंह समझाने के ढंग से बोले—

"किसीको शरण देना पाप नहीं है। लेकिन बात यहीं खत्म नहीं होती। लोग तुम्हारे और उस औरत के संबंध में तरह-तरह की बातें..."

"बस, चुप रहिए !" जग्गू बीच में ही गरज उठा। क्रोध से उसकी देह कांपने लगी- —"आप जो कुछ कह रहे हैं और दूसरे-तीसरे से कहते फिर रहे हैं, वह मैं त्रिसेसर सिंह से बहुत पहले सुन चुका हूं। मैंने भी आपको हमेशा अपना बड़ा भाई समझा था, लेकिन..."

जग्गू आगे बोल नहीं पाया और उठकर खड़ा हो गया। विचित्तर सिंह ने दुनिया देखी थी। जग्गू की बातों का तथ्य और उसका कारण समझते उन्हें देर नहीं लगी। उन्होंने जग्गू की कलाई पकड़कर उसे बलपूर्वक बैठा

लिया, और डपटकर कहा—"अगर ऐसी बात तुमने फिर कही, तो तुम्हारा मुंह तोड़ दूंगा और स्वयं चुल्लू-भर पानी में डूब मरूंगा।"

जग्गू ने विचित्तर सिंह को घूरकर देखा। विचित्तर सिंह की आवाज में क्रोध था, लेकिन उनका चेहरा दु:ख और वेदना से सिकुड़ गया था, और उनकी आंखों में सात्त्विक उत्तेजना छलक आई थी। विचित्तर सिंह बोलते रहे—"तुमने क्या मुझे औरत समझ रखा है कि तुम्हारी शिकायत दूसरे-तीसरे से करता फिरूंगा? लल्लो-चप्पो करनी मुझे नहीं आती। अगर तुममें मुझे ऐब दीखेगा, तो मैं तुम्हारा कान पकड़कर सीधी राह पर ला खड़ा कर दूंगा। समझे?"

जग्गू मुंह बाए बिचित्तर सिंह को देखता रहा। बिचित्तर सिंह कुछ देर तक चुपचाप, सिर नीचा किए, हाथ में पड़ी एक लकड़ी का टुकड़ा तोड़ते रहे, और दु:ख और क्रोध से बेचैन होते रहे। जग्गू पश्चात्ताप, ग्लानि और परिताप से भर उठा। बोला—

"मुझसे तो बिसेसर सिंह ने कहा था कि आप मेरे बारे में तरह-तरह की गलत बातें फैला रहे हैं!"

"और तुमने विश्वास कर लिया? यह नहीं सोचा कि बिसेसर सिंह केवल मुखिया और जमीदार ही नहीं, एक नम्बर का दुष्ट, नीच और नारद भी है। सबसे पहले उसीने मुझसे इस तरह की बातें कहीं—फिर गांववाले भी कहने लगे। अब तो तुम्हारे खिलाफ पचायत में बाजाब्ता मामला दर्ज किया गया है। मुझे तो लगता है, कि यह सारी आग उसी पाजी की लगाई हुई है!"

"तो ठीक है! आप जैसा उचित समझिए, फैसला कर दीजिए!"—जग्गू का स्वर दृढ़ और वेदना-सम्पृक्त हो रहा था।

"फिर वही बात!" बिचित्तर सिंह स्नेहवश झल्ला उठे—

"मैंने आज सरपंच की हैसियत से तुम्हें नहीं बुलाया है, बल्कि बड़े भाई के नाते बुलाया है। मेरी बात मानो, और उस औरत को इज्जत के साथ विदा कर दो!"

"कहां विदा कर दूं?"

"जहां उसकी इच्छा हो?" बिचित्तर सिंह ने सहज सरलता से कह

दिया।

"यह मुझसे नहीं होगा, बिचित्तर भाई! भले घर की लड़की है। बेचारी कहां भटकेगी? जब उसका पति आ जाएगा, फिर उसीसे मैं कह दूगा। लेकिन अभी तो मैं उसे विदा करने की बात सोच भी नही सकता!" जग्गू ने दृढ़ता से कहा।

बिचित्तर सिंह सज्जन और दयालु आदमी थे। लेकिन उनकी सज्जनता और दया का भाव गांव के वातावरण, तथाकथित धर्म की मर्यादा और परम्परागत संस्कार की सीमाओं के सांचे के अनुरूप ही ढल गया था। उन्होंने जग्गू की मानवता को नहीं समझा, बल्कि उसे जग्गू की जिद और मूर्खता समझकर वे बोले—

"पागल हो गए हो क्या? जल में रहकर मगर से वैर रखना, बुद्धिमानी की बात नही है! उस औरत के तुम्हारे घर में रहने से गाववालों का बिल्कुल नुकसान नही होता। लेकिन गाव में ऐसा कभी हुआ नहीं है। इसलिए गाववाले उत्तेजित हो रहे हैं।"

"उन्हें उत्तेजित होने दीजिए! इस सम्बन्ध में मुझे न तो कुछ कहना है, और न कुछ करना है। आप लोगो के दिल में जो बात जमे, कीजिए!" यह कहकर जग्गू उठ खड़ा हुआ। जब जग्गू वहां से चलने लगा तब गोपाल भी उसके साथ हो लिया। कुछ दूर पहुंचने पर गोपाल दीन भाव से बोला—

"जग्गू चाचा!"

"बोलो!"

"मुझसे आप नाराज हैं क्या?"

"नही तो!"

दोनों चुपचाप चलते रहे। गोपाल असमंजस में पड़ा हुआ-सा बोला—"मैंने सोचा कि रूपन सिंह की बात को लेकर आप नाराज हो गए।"

जग्गू ने सिर घुमाकर बगल में चलते हुए गोपाल को देखा। शाम हो गई थी। घरो में बत्तियां जल चुकी थीं। दूर से किसीके चीखने-चिल्लाने की आवाज आ रही थी। आकाश में थोड़े-बहुत तारे निकल आए थे।

अन्धकार के धुंधलके में, जगू क्षण-भर गोपाल की ओर देखता रहा। फिर बोला—

"तुम लोगों को रूपन सिंह पर जुल्म नहीं करना चाहिए। बेचारा गरीब आदमी है।"

"गरीब ?" गोपाल भावावेश में बोला—"वह बहुत दुष्ट है। आपको क्या मालूम—वह कितना बड़ा नीच है ! बिसेसर सिंह के भड़कावे में आकर उसने हम लोगों को गाली-गलौज देना शुरू किया। पिछले दो साल से उसने मेरी जमीन की सारी उपज हड़प रखी है। पता नहीं बाबू ने आपसे क्यों नहीं बताया कि रूपन सिंह ने ही आपके बारे में पंचायत में मामला उठाया है।" यह कहकर गोपाल ने जगू की ओर देखा। जगू इस तरह की बातें सुनता-सुनता अभ्यस्त होता जा रहा था, इसलिए कुछ बोला नहीं। गोपाल कुछ देर के बाद अपने घर लौट गया।

जगू के मस्तिष्क में इतनी बातें उठ रही थीं कि वह एक बात भी सही ढंग से नहीं समझ पा पहा था। जन्म से ही वह सबसे अलग-अलग रहता आया था—न ऊधो का लेना, न माधो का देना। बस गुमटी पर पड़ा रहता था। इक्के-दुक्के गाववाले गुमटी से होकर जब गुजरते, तभी वह उन लोगों से मिल पाता। बचपन में जब वह पढ़ता था, एक लड़की के सम्पर्क में आया था और वह लड़की थी—अनुराधा ! लेकिन वे बचपन के दिन थे—निश्छल भाव के दिन थे—निरुद्देश्य उठने-बैठने, खेलने-कूदने के दिन थे। सम्पर्क था, सम्बन्ध था, आकर्षण था, लेकिन उसके प्रति चेतना नहीं थी, उसमें कोई उद्देश्य नहीं था। और अब, जबकि वय का तूफान लौट रहा था, उसके मन में एकाकीपन का तूफान सुगबुगाने लगा। वह अपने चारों ओर देखता तो लगता, जैसे उसके लिए कहीं कुछ नहीं है ··· वह केवल अपने में रहकर अपने लिए जी रहा है। उसकी समझ में नहीं आता कि बिसेसर सिंह किसके लिए, क्यों डाका डालता फिर रहा है ?—शारदा किसलिए घर-बार, मां-बाप को छोड़कर अनजान जगह में भटकती फिर रही है ? मुनिदेव अपने लोभी मां-बाप को क्यों नहीं त्याग देता ? रूपन सिंह चन्द कट्ठे जमीन के लिए क्यों अपनी पूरी जायदाद की बाजी लगा बैठा है और अनुराधा···?

"कौन जा रहा है ?"—गुरुजी ने आवाज लगाई। जग्गू की विचार-धारा रुद्ध हो गई। वह गुरुजी के पास पहुंचकर बोला—

"मैं हूं, गुरुजी, जग्गू !"

"आओ-आओ, बैठो !" गुरुजी ने उसके बैठने के लिए बगल में जगह बनाते हुए कहा—"निबट आए बिचित्तर से ? क्या बात थी ?"

"क्या बताऊं, गुरुजी—एक रात को एक भली स्त्री भटकती हुई मेरे पास आई। मैंने उसे अपने घर में ठहरा दिया। बस इसीपर गांव-भर में हंगामा मचा हुआ है। गाव के सभी लोग अंधे हो गए हैं। देखते हैं कि उस स्त्री का पति है, साथ में एक नौकर है, फिर भी शंका से मरे जाते है !"

"हां जग्गू, मेरे पास भी लोग आए थे। बिसेसर भी कह रहा था कि गाव की बहू-बेटी बिगड़ जाएंगी।" गुरुजी ने तटस्थ भाव से कहा।

"तो क्या उस भली लड़की को, अभी रात में घर से निकाल बाहर कर दू कि इधर-उधर भटकती फिरे—गांव के आवारों को अपना मतलब सिद्ध करने का मौका मिले ? चूंकि वह औरत है, इसलिए त्याज्य है, अछूत और खतरनाक है ? आखिर कहीं जाकर तो वह रहेगी ही या बेसहारा औरत को दुनिया से ही मिटा दिया जाए…?"—जग्गू आवेश में बोलता जा रहा था कि अनुराधा थाल में खाना लेकर आ गई। जग्गू अचानक चुप हो गया।

अनुराधा ने जग्गू का अंतिम वाक्य सुना था, और वह श्रद्धा से अभि-भूत होकर] अज्ञात वेदना से भर उठी। उसने जग्गू को आंख-भर देखा। अकस्मात् ही जग्गू के शरीर में अनिर्वचनीय पुलक की लहर दौड़ गई। क्षण-भर के लिए वह अपना अस्तित्व भूल बैठा, और उस निश्छल सौंदर्य को एकटक देखता रहा। बचपन के दिन जवान हो उठे। अनुराधा ने अपने पिता के पास पहुंचकर चुपचाप उनके सामने थाल रख दिया।

"जग्गू के लिए भी कुछ खाने को ले आओ, बेटी !"

"नहीं-नहीं, मेरी इच्छा अभी खाने की नहीं है।" जग्गू चौंककर बोल उठा। लेकिन अनुराधा तब तक भीतर चली गई थी। गुरुजी ने कहा—

"थोड़ा-सा खा लो ! कौन तुम्हारी घरनी खाना परोसकर बैठी है कि 'नहीं-नहीं' कर रहे हो ! कितनी बार तुमसे कहा कि ब्याह कर लो, लेकिन

तुम सुनो तब तो ! आज तुम्हारी घरनी होती तो यह सब प्रपंच ही खड़ा नहीं होता।"

"फिर कोई दूसरा प्रपंच उठ खड़ा होता, गुरुजी ! प्रपंच के लिए किसी कारण की जरूरत तो होती नहीं है !" जग्गू ने किंचित् हंसकर कहा। उसकी हंसी में व्यग्य और वेदना स्पष्ट थी।

"फिर तुमने क्या सोचा है ?" गुरुजी ने थाल अपनी ओर खींचते हुए पूछा।

"इसमें सोचना क्या है, गुरुजी ? अपने यश और प्रतिष्ठा को बनाए रखने के लिए मैं उस बेसहारा लड़की को घर से बाहर निकालकर उसका जीवन नष्ट नही होने दूंगा !"

"लेकिन तुम गांववालों को नहीं जानते शायद ! वे तरह-तरह के उपद्रव खड़े कर देंगे।"

"मुझे इसकी चिन्ता नही है ! कौन मेरा यहा परिवार बैठा है जिसका मोह मुझे बांधे रखेगा। सब कुछ छोड़-छाड़कर, मैं स्वय ही यहां से चल दूगा।"

"यह तो कायरता होगी, जग्गू ! फिर तो झूठ के सामने तुम हार खा जाओगे !"

"नहीं, गुरुजी, मैं तो यही समझता हूं कि पापियों, प्रपचियों और ईर्ष्यालुओं से दूर रहना ही अच्छा है ! आज तीस-बत्तीस वर्ष से मैं इस गाव में रह रहा हूं; कभी किसीको नुकसान नही पहुंचाया, कोई अपराध नहीं किया, अपना दुख अपने पास रखा, बहुतों को अनाचार करते देखा और चुप रहा—फिर भी लोग यदि मुझसे ईर्ष्या कर मुझे ही अपराधी और पापी सिद्ध करें, तो मैं कहां तक लोगों को सफाई देता फिरूंगा ?"

"नहीं जग्गू, मुझे तुम्हारी यह बात पसंद नही है ! जिस काम को धर्म समझकर तुम करते हो, उसे अंत तक निबाहो ! लोग अपने कर्मों को देखकर ही तुम्हारे कर्म का अनुमान लगाते हैं। तुम भी अपने कर्म के अनुसार अपना दृष्टिकोण बनाओ। भागो नही !"

जग्गू के हृदय में यह बात घर कर गई। वह चुप हो रहा। अनुराधा खाना परोसकर ले आई थी। जग्गू रह-रहकर अनुराधा को···उस उपेक्षित

स्त्री को देख लेता—और न जाने क्यों—रागात्मक अनुभूति से भर उठता। आकर्षण, सहानुभूति और वेदना की त्रिवेणी में डुबकी लगाते ही, स्पर्श की जिज्ञासा और प्रेम की अनुभूति का उदय होता है। जग्गू समझ नहीं पाया कि वह क्या महसूस कर रहा है, उसके मन में क्या हो रहा है, लेकिन उसने पाया कि अनुराधा की उपस्थिति से उसे सुख मिल रहा है, शांति मिल रही है, और गुरुजी की बातों से उसे राहत मिल रही है।

उस रात गुरुजी के यहां से चलकर, वह सीधे गुमटी पर पहुंचा—घर नहीं गया। काफी रात गए तक वह रामायण पढ़ता रहा, और बीच-बीच में अपने मन में उठनेवाले भावों पर विचार करता रहा। सूर्योदय की प्रतीक्षा में रात घुलती रही।

१०

पंचायत ने जग्गू का हुक्का-पानी बंद कर दिया। पंचायत में बिसेसर सिंह भी उपस्थित थे, लेकिन वे तटस्थ बने रहे। गोपाल और मुनिदेव के अलावा कुछ नौजवानों ने पंचायत के निर्णय का विरोध किया, और अंत में सब झल्लाकर, सभा से उठकर चले गए। जग्गू अंत तक तटस्थ भाव से बैठा रहा। उसके चेहरे की मुस्कराहट, निश्चिंतता और दृढ़ता देखकर बहुत-से लोग मन ही मन जल उठे।

जग्गू वहां से सीधे घर पहुंचा। शारदा बाहर के बरामदे में खड़ी थी प्रसन्न मुद्रा में। जग्गू को देखते ही बोल उठी—

"क्या हुआ पचायत में?"

"होना क्या था? मुझे जाति से निकाल बाहर किया गया। लेकिन आप तो बहुत खुश नजर आ रही हैं। क्या बात है?" जग्गू ने मुस्कराते हुए पूछा। शारदा घर के भीतर जाती हुई बोली—

"उनका पत्र आया है। उन्होंने आपको भी लिखा है।"

"कब तक आनेवाले हैं?"—जग्गू शारदा के पीछे-पीछे चलता हुआ बोला। भीतर बरामदे पर पहुंचकर शारदा रुक गई। घूमकर बोली—

"क्यों, मैं फिर बोझ हो गई क्या ?"

"आप न तो मेरा दिया खाती हैं, और न मेरा दिया पहनती हैं। फिर बोझ कैसा ? मैं तो इसलिए पूछ रहा था कि एक हफ्ते में लौट आने की बात कहकर गए थे और आज बीस दिन हो गए।"

शारदा ने कोई उत्तर नहीं दिया, लेकिन उसकी भाव-भंगिमा से लगा कि उसे जग्गू की बात प्रिय नहीं लगी। वह भीतर जाकर एक चिट्ठी ले आई और उसे जग्गू को देती हुई बोली—

"इसे पढ़ लीजिए, फिर आपको मालूम हो जाएगा कि वे कब तक आ रहे हैं।"—यह कहकर वह नीचे रखे पीढ़े पर अन्यमनस्क भाव से बैठ गई। भानुप्रताप ने जग्गू को लिखा था—"···मुझे आने में थोड़ी देर लगेगी। आपकी जमीन में मकान बनाने की बात निश्चित है। नक्शा भेज रहा हूं। इसके अनुसार नींव खुदवाकर रखिए। शारदा के पास रुपये हैं—ले लीजिएगा ! कुछ मैं भी भेज रहा हू। कमी-बेशी आप लगाते रहिए—मैं आकर दे दूगा···" जग्गू को चिट्ठी की बातें स्वप्न जैसी लगीं। उसके होठों पर अर्थपूर्ण मुस्कराहट कांप गई। शारदा ने पूछा—

"क्या मालूम हुआ कि वे कब आ रहे है ?"

"हां, मालूम हो गया।"

"तब, मकान बनवाने के लिए क्या कीजिएगा ?"—शारदा ने उत्साह से पूछा।

"अभी तो उसमें गेहूं की फसल लगी हुई है।"

"कितना गेहूं निकलेगा उसमें से ? बहुत निकलेगा तो सौ रुपये का !" शारदा ने सहज ही सरलता से कह दिया। जग्गू गंभीर स्वर में बोला—

"फिर भी वह अन्न है देवीजी, उसे नष्ट नहीं किया जा सकता !"

शारदा को जग्गू की बात अच्छी नहीं लगी। बोली—

"जितने की फसल नष्ट होगी, उसका हिसाब कर लीजिएगा ! यदि वे नहीं देंगे, तो मैं आपका पाई-पाई चुका दूगी।"

जग्गू को शारदा की इस बात से आश्चर्य नहीं हुआ, और न क्रोध ही आया। शारदा जो कुछ भी बोलती थी, भानुप्रताप के प्रति अपनी असीम श्रद्धा, अन्धविश्वास और प्रेम के कारण बोलती थी। वह बिल्कुल भोली

थी—इतनी भोली कि कभी-कभी उसके भोलेपन से स्वार्थ की गंध आने लगती थी। पंचायत ने जग्गू का हुक्का-पानी बन्द कर दिया—इस बात से जग्गू को रंचमात्र भी दु.ख या पश्चात्ताप नहीं हुआ, क्योंकि बचपन से ही, वह गाव वालों से असम्पृक्त रहता आया था। लेकिन जिसके चलते यह कांड हुआ, उसके मन मे थोड़ा भी आभार का भाव ध्वनित नहीं हुआ—यह देखकर जग्गू को आश्चर्य हुआ, क्षणिक घृणा भाव से उसका मन विचलित हो उठा। और वह चुपचाप, उदास मन से गुमटी पर चला आया। वहां बिसेसर सिंह उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। जग्गू को देखते ही बिसेसर सिंह मधुर स्वर में बोले—

"कहा रह गए थे? मैंने पंचायत खत्म होते ही तुम्हें ढूंढ़ना शुरू किया, लेकिन तुम्हारा कहीं पता नहीं था।"

"कहिए, क्या सेवा करूं? अब तो आप मेरे हाथ का जल भी नही पी सकते!"—जग्गू ने व्यग्य से कहा। बिसेसर सिंह अविचलित भाव से बोले—

"सुनो जग्गू भाई, हुक्का-पानी बन्द हो या चले, मैं तुम्हारे हाथ से जहर भी पी लूंगा!"

"यह आपकी कृपा है!"—जग्गू ने सहज स्वर मे कहा। लेकिन मन ही मन वह सोच रहा था, कि अवश्य ही धूर्त को मुझसे कोई काम होगा! इसीने आग लगाई है, और अब साधु बनता है! वह मुस्कराता हुआ बोला—

"कहिए, कैसे आना हुआ?"

बिसेसर सिंह अचानक ही बहुत गम्भीर हो गए। उनके चेहरे पर वेदना की रेखाएं उभर आईं। बोले—

"तुम्हारे साथ अन्याय हुआ है! यह सब बिचित्तर सिंह की करतूत है! मेरी बात मानो, तो उसके खिलाफ कचहरी में दावा ठोक दो। सरपंच बनने का मजा मिल जाएगा!"

"मुझे क्या जरूरत पड़ी है, दावा ठोकने की? न मैं पहले किसीको भोज खाने के लिए न्योता देने जाता था, और न अब जाऊंगा। बल्कि इस फैसले से तो बिल्कुल इत्मीनान हो गया।"

"जैसी तुम्हारी इच्छा! मैं तो तुमसे यही कहने आया था कि कचहरी

में दावा ठोकने पर जो भी खर्च होगा, मैं दूगा ! क्योंकि मुझे तो सरपंच का फैसला बहुत बुरा लगा !"

जग्गू खामोश रहा। बिसेसर सिंह गोद में रखी हुई भागलपुरी रेशम की चादर अपने बायें कधे पर रखते हुए बोले—

"अच्छा मैं चलता हू । आज रात मैं फिर मिलूगा !"

"रात में ?" जग्गू चौंक उठा।

"अब तो मिलिट्री का पहरा ही उठ गया !···" बिसेसर सिंह धीमी आवाज में सहजता से बोल गए—"कुलदीप को मुजफ्फरपुर भेजा है। मालगाड़ी के साथ ही आएगा। तुमसे क्या छिपाना !" इतना कहकर बिसेसर सिंह चलने ही लगे थे, कि जग्गू दृढता से बोल उठा—

"नही, बिसेसर बाबू, अब यह सब नही होने का !"

"पागल हो गये हो ? पिछली बार तो बिना मेहनत किए ही तुम्हें रुपये मिल गए थे ! फिर अब क्यों छान-पगहा तोड़ रहे हो ?" बिसेसर सिंह ने स्नेह से कहा।

"मैंने आपका रुपया नहीं लिया हैं और न लूंगा ! आपके अनाचार के बूते पर, मेरी रोजी-रोटी निर्भर नही करती !" जग्गू तमककर बोला। लेकिन बिसेसर सिंह, आत्मविश्वास के आधिक्य से किसी बात को महत्त्व नही दे पाते थे। हसते हुए बोले—

"अच्छा-अच्छा, रुपया नही लिया है, लेकिन मेरा विश्वास तो लिया है ! विश्वास बड़ी चीज है। रात मे भेंट होगी।" और बिसेसर सिंह स्नेहपूर्वक जग्गू की पीठ ठोककर चले गए। जग्गू किंकर्तव्यविमूढ़-सा देखता रह गया। बहुत देर तक वह यों ही सोचने की हालत में खड़ा रहा कि···

"देसौरा के बाबू बिसेसर सिंह का मकान किधर है ?" इस प्रश्न से चौंक उठा। उसने देखा···एक पैंट-कोटधारी साहब, दो अन्य व्यक्तियों के साथ, सामने खड़ा था। गौरवर्ण, मूछ-दाढ़ी साफ, लम्बा हट्टा-कट्टा, विनम्र भाव से मुस्कराता हुआ वह नौजवान, डील-डौल से कोई बड़ा अफसर जैसा लग रहा था।

"जी···?" जग्गू ने घबराहट में पूछा।

"मैं सामुदायिक योजना-क्षेत्र का अफसर हूं ! रात-भर ठहरने के लिए मुझे कोई जगह नहीं मिल सकेगी ?"

"अफसर ?" जग्गू का मन किसी विचार की कौंध से प्रफुल्लित हो उठा। बोला—

"आप चाहें, तो मेरे यहां भी ठहर सकते हैं ! बिसेसर बाबू का मकान भी पास ही है—वह सामने, वटवृक्ष की ओट में !"

उस अफसर ने जग्गू के यहां ही ठहर जाने की इच्छा प्रकट की। जग्गू ने उसे अपने घर में, बाहर की कोठरी में ठहरा दिया। उन तीनों आदमियों के लिए जग्गू ने स्वयं खाना बनाया, और श्रद्धापूर्वक उन लोगों को खिलाया-पिलाया। अफसर का नाम था रामपाल। वह दिल्ली की तरफ का रहने वाला था। खाना-पीना सब सम्पन्न हो गया, तब रामपाल ने अनुग्रह जताते हुए कहा—

"आप गांववाले कितने अच्छे हैं... कितने महान हैं ! आप लोगों की निश्छलता देखकर, इच्छा होती है कि यहीं बस जाएं !"

जग्गू ने हंसते हुए कहा—

"गांववाले उतने निश्छल नहीं हैं, जितना आप उन्हें समझते हैं। यहां की हवा ऐसी है कि आग भी पानी जैसी शीतल लगती है !"

"वाह ! आप तो बिल्कुल दार्शनिक की तरह बोल रहे हैं, जग्गू बाबू ! राधाकृष्णन ने बिल्कुल ठीक कहा है कि प्रत्येक भारतीय जन्मसिद्ध दार्शनिक है !"—रामपाल ने रस लेते हुए कहा। जग्गू अपनी असल बात पर आने के उद्देश्य से बोला—

"लेकिन शहर के बहुत-से लोग सोचते हैं कि गांववाले गूंगे होते हैं ! उन्हें पता ही नहीं कि रामायण, गीता, कबीर के दोहे, मुहावरे और सत्य-नारायण की कथा, गांव के चप्पे-चप्पे में, संस्कार की तरह व्याप्त है। और जैसा फरेब गांव के कुछ लोग कर सकते हैं—वैसा फरेब शहर की किताबों में ही मिल सकता है !"

"अच्छा ?"—रामपाल ने आश्चर्य से पूछा।

"जी हां, हुजूर ! मैंने पटना और मुजफ्फरपुर के शहर देखे हैं। शहर में कर्मठ आदमी ही जिन्दा रह सकते हैं, लेकिन गांव की कर्मठता कुल तीन

महीने खेत में देखिए, बाकी नौ महीने मुकद्दमेबाजी में, चोरी में और एक-दूसरे की शिकायत में…"

"सो तो आप ठीक कहते हैं, जग्गू बाबू ! गांव के लोग अच्छे हों, तो सारी कचहरिया टूट जाए ! जेल में भी ज्यादा कैदी गांव के ही होते हैं।"—रामपाल ने गंभीर स्वर में कहा। जग्गू ने छूटते ही कहा—

"लेकिन वे बेचारे तो सीधे चोर होते हैं। असल चोर तो हमेशा मजे लूटते हैं।—क्या आप अभी कुछ दिन गांव में रहेंगे ?"

"केवल दो रोज यहां ठहरूंगा। जांच-पड़ताल करके चला जाऊंगा, और फिर लगभग पन्द्रह रोज बाद यहां पर हम लोगों का काम शुरू होगा।"

"कैसा काम ?"

"गांव की उन्नति का काम ! यहां सड़कें बनाई जाएंगी, स्कूल-अस्पताल खोले जाएंगे, नल से खेत पटाने की व्यवस्था की जाएगी, बिजली लगेगी और शिक्षा का प्रचार किया जाएगा…"

जग्गू और रामपाल बहुत देर तक बातें करते रहे। अंत में जग्गू ने बिसेसर सिंह की बाबत सारी बातें रामपाल को बता दीं, और यह भी कह दिया कि रात को फिर मालगाड़ी लूटी जानेवाली है। दोनों में कुछ विचार-विमर्श हुआ।

ठीक ढाई बजे रात को गुमटी से कुछ दूर पर मालगाड़ी रोक दी गई। दो वैगन सामान काटकर, बिसेसर सिंह गुमटी के निकट पहुंचे ही थे कि स्टेशन की ओर से एक के बाद एक करके कई टार्चों की रोशनी जल उठी। बिसेसर सिंह को लगा कि दर्जनों पुलिस उनकी ओर बढ़ी चली आ रही है। गाड़ीवानों ने घबराकर अपनी-अपनी गाड़ियां रोक दीं। बिसेसर सिंह ने गाड़ियां लूटने के सिलसिले में आज तक ऐसी परिस्थिति का सामना कभी नहीं किया था। रुपये के बूते पर ही वे सब काम हिम्मत से निकाल लेते थे। उस दिन वे भी घबरा उठे। उन्होंने गाड़ीवानों को आदेश दिया कि बैल खोलकर भगा दें, और गाड़ियों और माल को छोड़कर, जल्दी से जल्दी भागकर छिप जाएं। सब लोगों ने वैसा ही किया। और अंत में वे खुद भी भाग खड़े हुए। रामपाल ने जग्गू, मुनिदेव, गोपाल और अपने एक

साथी की सहायता से माल तो बचा लिया, लेकिन वे डाकुओं को नहीं पकड़ पाए। और उन्हें पकड़ने का उनका इरादा भी नहीं था। क्योंकि रामपाल और उनके साथी बिल्कुल नि.शस्त्र थे। दारोगा को पहले से सूचना देकर बुलाना उन लोगों ने बेकार समझा, क्योंकि इससे बिसेसर सिंह को भी सूचना मिल जाने की सम्भावना थी। इसलिए, लूट के लिए निश्चित समय से कुछ पहले रामपाल का एक साथी दारोगा को बुलाने चला गया। तीन बजते-बजते दारोगा घटनास्थल पर आ पहुंचा। चारों ओर भाग-दौड़ शुरू हुई, लेकिन डाकुओं का पता नहीं चला।

"आप इन गाडियों की पहचान करवाइए!" रामपाल ने दारोगा से कहा। दारोगा किंचित् उपेक्षा के स्वर में बोला—

"जी हां, पहचान तो करवाई ही जाएगी! लेकिन इससे कुछ भी पता लगाना जरा मुश्किल नजर आता है।"

"क्यों?" रामपाल ने आज्ञा के स्वर में पूछा।

"हुजूर, यह गांव है! यहां बैलगाड़ियों पर कोई नम्बर तो होता नहीं!" दारोगा का स्वर तिकड़म-भरे अनुभव के दम्भ से बीभत्स हो रहा था। रामपाल ने बिगड़कर कहा—

"आसपास के गांव के चौकीदारों को बुलाइए, पंचों को बुलाइए और उनसे मालूम कीजिए कि किसके पास कितनी गाड़ियां हैं और···" रामपाल अपनी बात पूरी भी नहीं कर पाया था कि उत्तर तरफ से किसीके आने की आहट मालूम हुई। सब लोग सावधान होकर उस ओर देखने लगे। कुछ देर बाद ही लोगों ने देखा कि राघव दो बैलों की रास पकड़े उन लोगों के पास ही आकर खड़ा हो गया।

"इन बैलों की जोड़ी को आप किसके खूंटे से खोल लाए?" दारोगा ने उद्दंडता और व्यंग्य से पूछा। राघव भी जवाब देने में चूकनेवाला नहीं था। छूटते ही बोला—

"जिनके खूंटे से पुलिस अफसर तक बंधे रहते हैं!"

"पुलिस अफसर खूंटे से बंधे नहीं रहें, तो आप-जैसे लोगों का राह चलना भी मुश्किल हो जाय!" दारोगा क्रोध पीता हुआ बोला।

राघव ने कहा—"अच्छा, अब बेकार की बातें छोड़िए, और चलकर

बिसेसर सिंह को गिरफ्तार कीजिए ! इन बैलों में से एक बैल बिसेसर सिंह का है। मैं अच्छी तरह से पहचानता हूं !"

"आपके पहचानने से क्या होता है ?" दारोगा ने उपेक्षा के स्वर में कहा। जग्गू को दारोगा का स्वर अनुचित लगा। उसने टार्च की रोशनी में बैलों को अच्छी तरह देखा और कहा—"राघवजी ठीक कहते हैं ! यह बैल बिसेसर बाबू का ही है !"

मुनिदेव और गोपाल ने भी जग्गू का ही समर्थन किया। इसपर दारोगा झुंझलाकर बोला—"लेकिन इस छोटी-सी बात पर, किसी भले आदमी को गिरफ्तार कैसे कर लिया जाए ?···केस कहां बनता है ? हो सकता है—उनका बैल खूटा तुड़ाकर भाग आया हो या···आप उनके खूटे से ही खोल लाए हो !"

रामपाल को दारोगा की बदमाशी पर पूरा विश्वास हो गया। उसने महसूस किया कि दारोगा तीन-पांच कर रहा है। अतः वह बिगड़कर बोला—

"दारोगाजी, आप बिल्कुल बेकार की बातें कर रहे हैं ! आपको स्वयं छानबीन में पहल करनी चाहिए थी, लेकिन मैं देखता हूं कि आप टाल-मटोल कर रहे हैं···"

"मैं तो कुछ भी टाल-मटोल नहीं कर रहा हूं, हुजूर ! अगर आपको शक हो और आप कहें तो मैं बिसेसर बाबू को···गिरफ्तार कर सकता हूं। लेकिन जिम्मेदारी आपकी होगी, हुजूर !"

"हां-हां, आप चलकर उनसे पूछ-ताछ कीजिए !" रामपाल ने ऊब-कर कहा।

बैलगाड़ियों के पास पहरा बैठा दिया गया। सब लोग बिसेसर सिंह के घर की तरफ रवाना हुए। दारोगा बड़ी चालाकी के साथ रामपाल के मन में यह बात बैठाने की कोशिश करता जाता था कि गांव के लोग बड़े टेढे होते हैं, चोरी-डकैती का मामला बड़ा पेचीदा होता है, बिसेसर सिंह शरीफ और प्रभावशाली आदमी है, बड़े-बड़े लोगों से इनके नाते-रिश्ते है, इसलिए लोग उनसे जलते है आदि-आदि···जग्गू चुपचाप साथ चल रहा था।

बिसेसर सिंह के घर के पास ही चन्नू दुसाध की झोंपड़ी थी—सड़क

के ठीक बगल में। गुमटी से सड़क होकर आने-जाने में सबकी उसी झोंपड़ी के सामने से गुजरना होता। चन्नू और गज्जू—दोनों भाई एकसाथ रहते थे। दिन-भर मजूरी करते और रात को थककर सो जाते। चन्नू की सास, लगभग साठ साल की बुढ़िया थी। बुढ़िया के पांच बेटे, किसी न किसी बीमारी के चंगुल मे फंसकर, असमय ही मृत्यु को प्राप्त हो गए। बुढ़िया का पति भी मर गया। गांव के लोगो ने देखा कि यह औरत एक-एक करके सबको खा गई। गांव में यह बात फैल गई कि वह डायन है। उसके बारे में तरह-तरह की कहानियां चल पड़ी कि विजयदशमी के दिन वह नंगी होकर नाचती है और श्मशान में जाकर, मृत बच्चे की लाश जमीन से निकालकर उसे तेल लगाती है, खिलाती है, फिर उसका रक्त पी जाती है···आदि-आदि! और अंत में लोगों ने गांव में उस अभागिन बुढ़िया का रहना मुश्किल कर दिया। बेचारी भागकर देसौरा गाव में अपने एक-मात्र दामाद के पास आकर रहने लगी। लेकिन देसौरा गांव के लोग भी उस बुढ़िया से नफरत करते, उससे डरते और अपने बाल-बच्चों को उसकी नजर से बचाकर रखते। संयोग ऐसा हुआ कि बुढ़िया के देसौरा आते ही, चन्नू का भाई गज्जू अचानक हैजे के चंगुल मे फंसकर मौत के मुंह मे चला गया; और बुढ़िया के प्रति लोगो की घृणा और डर साकार हो उठा।

दारोगा अपनी उद्देश्यपूर्ण बातों में लगा हुआ था। रामपाल चुपचाप उसकी बातें सुनता हुआ चला जा रहा था। और राघव का षड्यंत्रकारी मस्तिष्क अपने काम में लगा हुआ था। चन्नू दुसाध की झोंपड़ी के बाहरी ओसारे में बुढ़िया पड़ी-पड़ी खास रही थी। राघव ने चुपचाप जग्गू को वहीं रोक लिया। जब सब लोग आगे बढ़ गए तब राघव ने जग्गू से कहा—

"जरा इधर आओ, जग्गू भाई!"—और राघव जग्गू की बांह पकड़े बुढ़िया के पास जा पहुंचा।

"कौन है?" बुढ़िया ने उन दोनों की आहट पाकर पूछा।

"मैं हूं।" राघव ने अपना नाम नहीं बताया। बुढ़िया अंधेरे में पहचानने की कोशिश करती रही।

"कहां मकान है?" बुढ़िया ने पूछा।

"अरे मैं हूं, जग्गू—गुमटीवाला!" इस बार जग्गू बोला।

"क्या बात है मालिक?" बुढ़िया उठकर बाहर आंगन में आती हुई बोली। राघव को चालाकी सूझी। उसने कहा—

"क्या बताए बूढ़ी, हाट तक आलू पहुंचाने के लिए बैलगाड़ी की जरूरत थी। सोचा था, बिसेसर बाबू की बैलगाड़ी मिल जाएगी, लेकिन बिसेसर बाबू बैलगाड़ी लेकर कहीं चले गए है।"

"हां मालिक, बाबू साहब तो आधी रात को ही बैलगाड़ी लेकर चले गए। यहीं तो उनकी गाड़ी रहती है, और वहां पर बैल बांधा जाता है।" बुढ़िया ने हाथ के इशारे से बताते हुए कहा। राघव मन ही मन उछल पड़ा, लेकिन अपनी खुशी छिपाता हुआ बोला—

"क्या बताऊं बूढ़ी, मेरा तो बड़ा नुकसान हो गया। अब तो हफ्ते-भर बाद ही मेरा आलू बिक पाएगा! तुम्हें कुछ मालूम है कि कब तक आएंगे?"

"अब मैं क्या जानूं, मालिक!"

"अकेले ही गए हैं या उनका लड़का भी साथ गया है?"

"कई बैलगाड़ियां थी। अब अंधेरे में मैं देख नहीं सकी, कि बाबू साहब का लड़का साथ गया है या नहीं। मैंने बाबू साहब की आवाज जरूर सुनी थी!"

राघव ने बुढ़िया से अधिक बात पूछना उचित नहीं समझा, और जग्गू को साथ लेकर बिसेसर सिंह के दालान की ओर कदम बढ़ाया। बिसेसर सिंह कुर्सी पर बैठे थे, रामपाल से हंस-हंसकर बातें कर रहे थे। दारोगा भेद-भरी दृष्टि से कभी रामपाल को देख रहा था, तो कभी बिसेसर सिंह को। रामपाल चुपचाप बिसेसर सिंह की बातें सुन रहा था। राघव को देखते ही दारोगा व्यंग्य से बोला—

"आइए नेताजी! बिसेसर बाबू तो घर में सो रहे थे! इनका नौकर कहता है कि पता नहीं कब, बैल खूंटे से रास तुड़ाकर भाग गया।"

"लेकिन इनके बैल की रास तो सही-सलामत बैल की गरदन से लटक रही है!"

"यह लीजिए! इसकी बात सुनिए!" बिसेसर सिंह ने हंसते हुए रामपाल से कहा—"यह बिल्कुल पागल आदमी है! इसे इतना भी मालूम नहीं है कि बैल रास-खूटा सहित भी भाग सकता है!"

"और अभी नौकर ने देखा तो खूंटा सड़क के उस पार पड़ा हुआ था।" दारोगा ने हा में हां मिलाने के स्वर में कहा।

"बिसेसर बाबू दालान पर ही सो रहे थे क्या?" राघव ने अनजान बनते हुए पूछा।

"मेरी तबीयत आज ठीक नहीं थी। इसलिए शाम होते ही मैं हवेली में जाकर सो गया।"

"तो ठीक है? मैं ही गलती पर था।" यह कहकर राघव चुप हो गया।

काफी देर तक इधर-उधर की बातें होती रहीं। बिसेसर सिंह ने हसते-हंसते, हर चीज की शिकायत रामपाल से की—मौसम की, समय की, चोरी-डकैती की, बेईमानी-शैतानी की और अपने बेटे की! तब तक सबेरा हो गया। राघव चुपचाप वहां से उठकर चला गया, और कुछ ही देर बाद, बुढ़िया को साथ लेकर वहां आ पहुंचा। रामपाल और दारोगा वहां से जाने की तैयारी में थे कि राघव ने कहा—

"इस बुढ़िया से पूछ लीजिए! क्यों बुढिया, मैं बाबू बिसेसर सिंह को ढूंढ़ने के लिए आया था या नहीं? बिसेसर बाबू कहते हैं कि मैं झूठ बोलता हूं!"

"नहीं बाबू साहब, रात आपके जाने के बाद ये यहा आए थे। बहुत परेशान थे बेचारे!" बुढ़िया ने खीसें निपोरते हुए सरल भाव से कह दिया। बिसेसर बाबू मन ही मन कांप उठे, लेकिन उनके चेहरे पर घबराहट का हलका-सा भी संकेत नहीं था। उन्होने हसकर पूछा—

"मेरे जाने के बाद?"

"हां सरकार! जब आप बैलगाड़ियों के साथ-साथ चले गए, उसके बहुत देर बाद, ये बाबू साहब आपको ढूंढ़ते हुए आए।"

"क्या बकती है!" बिसेसर सिंह गरज उठे—"मैं तो सो रहा था! मेरी तो तबीयत खराब थी।"

"इस बुढ़िया का बयान लिख लीजिए, दारोगा जी!" राघव ने गंभीरता से कहा, जैसे शिकार उसकी मुट्ठी में आ गया हो।

"यह बुढ़िया तो डायन है! खुद तो रात-भर श्मशान में पड़ी रहती

है, हरामजादी ! अब अपना भेद छिपाए रखने के लिए झूठ बोल रही है कि यह रात में अपनी झोंपड़ी में ही थी। चुड़ैल !" बिसेसर सिंह क्रोध से ऐंठते हुए बोले। बुढ़िया कुछ भी समझ नहीं पाई। वह बेचारी हक्की-बक्की, सबका मुंह देखती रह गई। दारोगा ने बुढ़िया का बयान ले लिया। बिसेसर सिंह की आंखों में प्रतिहिंसा की चिनगारियां तरल हो रही थीं।

दारोगा बहाना बनाकर वहां से चला गया। अन्य लोग भी चले गए। सूर्योदय हो रहा था। जग्गू ने गुमटी पर से देखा कि उसके घर के पश्चिमी तरफ के खेत में गेहूं के पौधे उखड़े-बिखरे पड़े हैं। वह फुर्ती से अपने खेत में पहुंचा। वहां की दशा देखकर जग्गू का हृदय फट गया। लगभग एक बीघा खेत की फसल किसीने उखाड़ दी थी। जग्गू उदास आंखों से अपना खेत देखता रहा। उसे लग रहा था, जैसे उसके सामने ही किसीने उसकी नव-यौवना कुमारी कन्या का सतीत्व नष्ट कर दिया हो, और वह कुमारी अब उसके सामने औंधी पड़ी हो—अस्त-व्यस्त, कुचली हुई, अधमरी ! जग्गू की आंखें भर आईं, लेकिन उसके होंठों पर मुस्कराहट कांपती रही !

११

तीसरे दिन, रामपाल अपने साथियों सहित देसौरा गांव से चला गया। उसे स्टेशन तक आकर विदा करनेवालों में जग्गू और बिसेसर सिंह थे। रेलगाड़ी के चले जाने के बाद जग्गू और बिसेसर सिंह साथ-साथ गांव की ओर लौटे।

जग्गू के आग्रह पर ही, रामपाल ने बिसेसर सिंह का नाम कहीं नहीं लिया; और चूंकि उन लोगों के पास पूरा सबूत भी नहीं था, इसलिए चुप रह जाने में ही उन लोगों ने भलाई देखी। रामपाल सरकारी अधिकारी था। वह जानता था कि बिना सबूत के किसी प्रभावशाली व्यक्ति के विरुद्ध कार्रवाई करने का अंजाम क्या होगा। उधर बुढ़िया का बयान दारोगा ने दर्ज कर लिया था। उसी रात को बुढ़िया का अपने दामाद से झगड़ा हो गया था, क्योंकि चन्नू दुसाध को बिसेसर सिंह के खिलाफ बुढ़िया का बयान

देना अच्छा नहीं लगा। विसेसर सिंह ने चन्नू को बुलाकर कुछ कहा-सुना, और चन्नू ने घर पहुंचते ही बुढ़िया पर बरसना शुरू कर दिया। उसने बुढ़िया की अच्छी तरह मरम्मत भी कर दी। बेचारी बुढ़िया रो-कलपकर रह गई। विसेसर सिंह ने चलते-चलते पूछा—

"इधर तुम मुझसे मिलते नहीं जग्गू भाई? नाराज हो क्या?"

"यदि मैं कभी नाराज भी होता हूं, तो केवल अपने-आप पर! और अलग-अलग रहने की मेरी आदत तो बहुत पुरानी है!" जग्गू ने दार्शनिक जैसी गम्भीरता से कहा। बिसेसर सिंह ने कृत्रिम स्नेहजनित जिज्ञासा से पूछा—

"तुम्हारे खेत की सारी फसल किसीने बर्बाद कर दी, और तुम चुपचाप बैठे रहे?"

"क्या करता!"—जग्गू ने सहज स्वर में उत्तर दे दिया।

"क्या करता!" बिसेसर सिंह क्रोध से उबल पड़े—"एक बीघे खेत की फसल नष्ट हो गई और कहते हो कि क्या करता! अजीब पागल आदमी हो! अरे, कुछ छान-बीन तो करते!"

"कोई रहस्य हो, तो छान-बीन की भी जाए! यहां तो सभी बातें प्रकट है!" जग्गू के चेहरे पर की व्यंग्यात्मक मुस्कराहट उसके अंतर्मन की व्यथा को अभिव्यक्त कर रही थी। बिसेसर सिंह ने उसके भाव को जाना, लेकिन अनजान बनते हुए पूछा—

"तो क्या तुम्हें चोर का पता है? कौन है वह?"

"बिसेसर बाबू, क्यों व्यर्थ ही जले पर नमक छिड़कते है? जिसने मेरे खेत के पौधों को बर्बाद किया है, मैं चाहूं तो अभी उसकी गर्दन मरोड़ सकता हूं। लेकिन नहीं—मैं ऐसा नहीं करूंगा! लेकिन इतना कह दूं, बिसेसर बाबू, कि कुछ लोग जलती आग में कूदने जा रहे है। और आप उन्हीं लोगों में से एक हैं!"

"क्या कहते हो जग्गू?" बिसेसर बाबू चौंककर बोले—"तुम्हें किसीने बहका तो नहीं दिया है?"

"मुझे किसीने नहीं बहकाया है! लेकिन आप अवश्य बहकाना चाहते हैं! आपके इशारे पर पंचायत ने मेरा हुक्का-पानी बन्द किया, आपने मेरे

खिलाफ तरह-तरह की बातें फैलाईं और आपने ही मेरी फसल बर्बाद करवाई। आपकी सभी हरकतों को जानते-समझते हुए भी, मैं कहीं कुछ नहीं बोलता ! इसका मतलब यह नहीं है कि मैं अन्याय और अनाचार पसन्द करता हूं। बल्कि मुझे आपपर दया आती है !" क्रोध और घृणा से जग्गू कांपने लग गया। बिसेसर सिंह ने दीन भाव से कहा—

"जग्गू, तुम्हें भ्रम हो गया है।"

"चुप रहिए ! मैं, आपका खानदान, इज्जत और उम्र देखकर आपका लिहाज करता हूं, वर्ना बता देता कि भ्रम में कौन है ! लेकिन याद रखिए, पाप का घड़ा भरते ही फूट जाएगा !"

"तुम तो व्यर्थ ही लाल-पीले हो रहे हो जग्गू भाई ! मेरी बात तो सुनते नहीं और बोलते चले जा रहे हो। तुम्हारे खेत की फसल बर्बाद करने से मुझे क्या फायदा ?"—बिसेसर सिंह ने समझाने के स्वर में कहा। जग्गू तमककर बोला—

"दुष्ट लोग वही काम करते हैं जिससे दूसरों को नुकसान पहुंचे—भले ही स्वयं को उससे कोई फायदा हो, या नहीं हो !"

"अच्छा, बहुत हुआ ! अपनी बकवास बन्द करो !" बिसेसर सिंह ने क्रुद्ध होकर कहा। जग्गू क्रोध से भभक उठा—

"मैं बकवास करता हूं ? अच्छी बात है। आप भी कान खोलकर सुन लीजिए···अब मैं चुप नहीं रहूंगा ! बुढ़िया के बयान की पुष्टि मेरी गवाही से हो जाएगी—कहे देता हूं !"

"हां-हां, जो जी में आवे, कर लेना ! बिसेसर सिंह का बाल भी बांका नहीं होगा !" दम्भ से ऐंठते हुए बिसेसर सिंह ने कहा। तब तक गुमटी आ चुकी थी। बिसेसर सिंह चुपचाप अपने घर की ओर चले गए।

कुछ देर बाद ही चन्नू दुसाध की बुढ़िया सास, रोती-कलपती हुई गुमटी पर पहुंची। जग्गू को देखते ही वह धप्प से जमीन पर बैठ गई, और फफक-फफककर रोने लगी। जग्गू अवाक् उसकी ओर क्षण-भर देखता रह गया। फिर बोला—

"क्या बात है बूढ़ी ?"

बुढ़िया गुस्से में तमककर बोली—

"मैं क्या जानती थी कि आप लोग मुझे जाल में फंसा रहे हैं ! जो कुछ आपने पूछा, वह मैंने आपको बता दिया। अब मेरा दामाद चन्नू मुझे परसों से ही पीट रहा है। लात-घूसों से मार-मारकर मुझे अधमरा कर देता है।"

"क्यो मारता है ?"—जग्गू ने आश्चर्य-मिश्रित क्रोध से पूछा।

"अब मैं क्या जानूं ?" कहता है—'तू डायन है ! मेरे घर से निकल जा !' आप ही बताइए—इस बुढ़ापे मे मैं अब कहां जाऊं ?"

"अच्छा-अच्छा, मैं कल शाम तक उधर आऊंगा। फिर चन्नू को समझा दूगा !" —जग्गू ने ढाढ़स बधाते हुए कहा। बुढ़िया और जोर से रोने लगी। जग्गू कुछ समझ नहीं पाया। उसे राघव पर गुस्सा आ रहा था। जग्गू ने सहानुभूतिपूर्वक अपनी बात दोहरा दी—

"मैं कल तक जरूर चन्नू को समझा दूगा !"

"*लेकिन, कल तक तो वह मुझे मार ही डालेगा !*"

"अरे नहीं, ऐसा भी कही अंधेर होता है।"

जग्गू ने कृत्रिम हसी हंसकर बुढ़िया को सन्तोष दिलाया। बुढ़िया बहुत देर तक, विक्षिप्त भाव से, दूर जमीन की ओर देखती रही। उसके चेहरे की झुर्रिया और गहरी हो उठी, उसकी आंखें आंसू में ऊब-चूभ करती, झपकती रही और उसके मोटे-मोटे होठ, खुले हुए लटकते रहे। जग्गू संसार और समाज की बीभत्स रचना पर घुटन से भर गया।

बुढ़िया जमीन का सहारा लेकर बड़े कष्ट से उठी, और गंदे-फटे आंचल से आंखें पोंछती हुई गांव की ओर चली गई। जग्गू उसे देखता रहा। उसका हृदय, घृणा, करुणा, क्रोध और प्रतिहिंसा की भावना से चीख उठा। उसकी अपनी दुर्बलता ही उसका गला दबोचने लगी। वह सोचता रहा कि जो चोर हैं, उचक्के हैं, घातक है, वे कितने समर्थ है; और जो साधु है, सज्जन हैं, निरीह हैं, वे कितने असमर्थ हैं !···जग्गू को तमाम अच्छाइयों से भय होने लगा। चन्द रोज में ही, उसके जीवन में क्या से क्या घट गया ! क्या कोई विश्वास करेगा ?—जग्गू सोचता, और तब उसमे प्रतिहिंसा का भाव और सबल हो उठता; अपनी सच्चाई और ईमानदारी को वह अपनी कायरता और स्वार्थपरता का परिणाम समझने लगता। उसके अंग-प्रत्यंग में अशांति व्याप गई और वह अनायास ही गुरुजी के घर की ओर चल पड़ा।

गुरुजी को बाहर के बरामदे में न देखकर, जग्गू को आश्चर्य हुआ। क्योंकि निष्क्रिय होने के बाद, बीस साल से, वह बाहर के बरामदे में ही रहते चले आए थे। इस असाधारण बात से, जग्गू आशंकित हो उठा। उसने सहमते हुए आवाज दी—"गुरुजी हैं क्या ?"

क्षण-भर बाद ही अनुराधा बाहर निकली। वह बहुत ही अस्त-व्यस्त हो रही थी। उसका चेहरा पीला पड़ गया था, सिर के सूखे बालों के गुच्छे बेतरतीब ढंग से उन्नत ललाट और आंखों पर आ रहे थे, और उसके होंठ सूखे हुए, विरक्ति-भाव को चित्रित करते-से लग रहे थे। बड़ी-बड़ी आंखों से करुणा, दीनता और निर्व्याज भाव बिखेरती हुई वह बोली—

"आइए, बाबूजी भीतर घर में है! वह आपको बहुत याद कर रहे थे। लेकिन···लेकिन···मैं आपको खबर नही दे सकी।" अन्तिम वाक्य कहते-कहते उसका कंठ अवरुद्ध हो गया। अनुराधा का यह रूप जग्गू के कलेजे में शूल बनकर चुभ गया। 'कितनी शोख थी अनुराधा, कैसी नटखट, चुलबुली; और कैसी हो गई है अब? यह कैसा न्याय है ईश्वर का? इतने सुन्दर खिलौने, क्या वह तोड़-फोड़ डालने के लिए ही बनाता है!'—जग्गू पल-भर में ही बहुत-कुछ सोच गया, किन्तु तुरन्त ही संभल गया और बोला—

"क्या बात है? उनकी तबीयत तो ठीक है?"—चिन्तित स्वर में जल्दी-जल्दी बोलता हुआ, वह अनुराधा के पीछे हो लिया।

"वे बहुत बीमार हैं।" अनुराधा ने कहा। जग्गू ने देखा कि अनुराधा ने जल्दी से अपनी आखें पोंछ ली हैं।

गुरुजी को अचानक ही बुखार हो आया था और साथ ही दस्त पर दस्त भी होने लगे थे। दो दिन के भीतर ही गुरुजी खाट से सट गए। अनुराधा खाना-पीना त्यागकर, उनकी परिचर्या में जुट गई। जग्गू ने गुरुजी की हालत देखी, तो उसे रोना आ गया। सात्त्विक क्रोध से उबलकर वह स्वगत भाषण की शैली में बोला—

"दो दिन से आप बीमार हैं, और मुझे खबर तक नहीं दी?"

"कौन खबर देने जाता बेटा! बहुत मुश्किल से अनुराधा वैद्यजी को खबर दे पायी। दवा-दारू चल रही है, लेकिन···लेकिन अब···"···गुरुजी

इसके आगे बोल नहीं पाये। अनुराधा मुंह में आंचल ठूंसकर, जल्दी से बाहर भाग गयी लेकिन जोर की हिचकियों ने उसकी वेदना को प्रकट कर दिया। अंधेरी कोठरी में सन्नाटा व्याप गया।

"आप अच्छे हो जाएंगे, गुरुजी!" जग्गू ने कांपते स्वर में कहा। गुरुजी छत की ओर टकटकी बांधे देखते रहे, फिर अपने-आप ही किंचित् हंस पड़े और बोले—

"हां जग्गू, मैं तो अच्छा हो जाऊंगा, लेकिन अनुराधा का क्या होगा? वह बेचारी जन्म से ही दु.ख झेलती आयी है! बचपन मे ही उसकी मां ने उसे अपनी गोद से उतारकर जमीन पर रख दिया और स्वयं अच्छी-भली बनकर यहां से सदा के लिए चली गयी और···और उसके बाद बड़ी उमग से मैंने अनुराधा का ब्याह रचाया—लेकिन दो महीने बाद ही उसका सुहाग भी उजड़ गया···और अब मैं भी···"

"यह सब आप क्या बोल रहे हैं, गुरुजी? आपको अभी जीना है—अनुराधा के लिए जीना है!" जग्गू ने आतुर भाव से कहा। गुरुजी बोलते रहे—

"अब अनुराधा के लिए कोई उपाय नही है! मैंने अपने धर्म और अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए अपनी बेटी का सर्वनाश कर दिया···"

"गुरुजी!"

"हां बेटा, मैंने अपनी बेटी का सर्वनाश कर दिया; और अब मैं धर्मात्मा बनकर, इस संसार से कूच करने की तैयारी में हूं। लेकिन··· लेकिन मैं आदमी बनकर, बाप बनकर इस संसार से जाना चाहता था। मैं चाहता था कि मेरी बेटी की मांग सिन्दूर से भरी रहती, और मैं उसे देखता-देखता अपने शरीर का त्याग कर देता। क्या···वह···वह···वह सपना···" गुरुजी का कंठ अवरुद्ध हो गया। जग्गू की इच्छा हुई कि वह चिल्ला पड़े—

'मैं आपकी इच्छा पूरी कर सकता हूं, गुरुजी! मैं अनुराधा को प्यार करता हूं, अनुराधा बचपन से ही मेरी ज···जन्म-जन्मान्तर से मेरी है! मैं उसकी मांग में सिन्दूर भर सकता हूं···' लेकिन जग्गू अपना तमाम प्यार, अपनी तमाम वेदना और तमाम सहानुभूति अपने में ही समेट चुप बैठा रहा।

कुछ देर के बाद अनुराधा भी मुंह-हाथ धोकर आ गयी। जग्गू ने उसे जबरदस्ती कुछ खा-पी लेने को भेज दिया और स्वयं वह गुरुजी की परिचर्या में जुटा रहा। गुरुजी बीच-बीच में कुछ बोलने की कोशिश करते तो जग्गू उन्हें रोक देता। अनुराधा को भी उसने कोठरी से निकाल दिया, जिससे कि वह बेचारी थोड़ी देर आराम कर ले।

शाम हो गयी। अनुराधा लालटेन जलाकर ले आयी। अंधकार घुल गया। जग्गू कोठरी की स्वच्छता देखकर दंग रह गया। माटी की दीवार और माटी का फर्श—लिपा-पुता, मनोहर लग रहा था। खाट पर गुरुजी पड़े हुए थे और खाट के नीचे, एक ओर माटी के दो चौड़े-चौड़े बर्तन, थूक-मल-मूत्र त्यागने के लिए, और दूसरी ओर काठ की पुरानी कुर्सी पर लोटा-गिलास और दवा की पुड़िया,रखी हुई थी। कोठरी के बायें भाग में, दीवार के पास, काठ के दो बक्से रखे हुए थे।

"अब आप जाकर थोड़ा आराम कर लीजिए।" अनुराधा के दीन-क्षीण स्वर से जग्गू सिहर उठा। गुरुजी ने भी हां में हां मिलायी—

"हां बेटा, अब तुम जाओ, थोड़ा आराम कर लो! अनुराधा बेटी, इसे रोशनी दिखला दो।"

अनुराधा लालटेन लेकर आगे-आगे चलने लगी। घर के बाहर पहुंचकर जग्गू ने कहा—"अनुराधा, मैं फिर आऊंगा!"

अनुराधा ने सिर उठाकर जग्गू को देखा। जग्गू बोला—"चिंता मत करना? ईश्वर जो करता है, अच्छा ही करता है!"

अनुराधा एकटक जग्गू को देख रही थी। जग्गू बोलता गया—

"लेकिन, तुम्हें अपने स्वास्थ्य पर भी ध्यान देना चाहिए! सूखकर कैसी हो गयी हो! तुम अकेली हो अनुराधा। यदि तुम भी बीमार पड़ गयी तो···?" अनुराधा फफक-फफककर रोने लगी। जग्गू उस अंतस्-तप्त विधवा की वेदना से काठ होकर रह गया। वह क्या करे? अनुराधा रोती जा रही थी। उसका एकमात्र सहारा, वृद्ध पिता, संसार को छोड़ जाने की तैयारी में था। फिर अनुराधा का क्या होगा? वह इस क्रूर समाज से बहिष्कृत होकर भी, उसी समाज के विष-न्याय-अंक में परिश्लिष्ट होकर दम तोड़ेगी। जग्गू कुछ भी नहीं सोच पा रहा था, कुछ भी नहीं समझ पा

रहा था; लेकिन उसके मस्तिष्क में तरह-तरह की आशंकाएं तूफान उठा रही थीं।

"रो मत, अनुराधा!" जग्गू तोष दिलाने के स्वर में कहता। फिर भी अनुराधा रोए जा रही थी। जग्गू उसके निकट आ गया। वेदना और सहानुभूति के आधिक्य से उसका स्वर अवरुद्ध हो रहा था। उसने बहुत ही धीमे स्वर में पुकारा—"अनुराधा···मेरी बात सुनो, अनुराधा!"

अनुराधा ने आंसुओं से लबालब आखों से जग्गू को देखा। जग्गू ने भीगे स्वर में कहा—"तुम्हें धीरज रखना चाहिए, अनुराधा! ऐसे कैसे काम चलेगा?"

"कितना धीरज रखूं? अब तो मेरा जीना भी मुश्किल हो जाएगा।" और अनुराधा फिर फूट पड़ी। रोते-रोते हिचकियां बंध गयीं। जग्गू परवश स्थिति में खड़ा रहा; और अनुराधा रोती रही। जब जग्गू से नहीं देखा गया और उसका धीरज भी जवाब देने लगा, तब वह जल्दी से वहां से चल पड़ा। अनुराधा देख भी नहीं सकी।

१२

सुबह होते ही जग्गू गुरुजी के घर की ओर चल पड़ा। रास्ते में गोपाल से भेंट हो गयी। जग्गू को देखते ही वह बोल उठा—

"मैं आपके यहां ही जा रहा था, जग्गू चाचा! रात क्या बात हुई, आपको मालूम है?"

"क्या हुआ।" जग्गू ने सहज कौतूहल से पूछा।

"चन्नू दुसाध की सास मर गयी।"

"बुढ़िया मर गयी? लेकिन शाम को तो वह मेरे पास आयी थी! वह तो बिलकुल भली-चंगी थी!" आश्चर्य से जग्गू का मुंह खुला का खुला रह गया।

"चन्नू दुसाध ने स्वयं उसका गला दबाकर उसे मार दिया।"

"तुम्हें कैसे मालूम?"

"मुझे ही नही, पूरे गाव को मालूम है ! वह बुढ़िया कल दिन-भर सबके पास भटकती रही, लेकिन किसीने उसकी मदद नही की। गांववाले भी उसे डायन समझकर उससे मुक्ति चाहते थे। और जानते हैं, जग्गू चाचा ?···बिसेसर सिंह ने उसकी हत्या करवायी है, जिसमें कि वे गिरफ्तार होने से बच सकें।"

"लेकिन···लेकिन इसकी खबर पुलिस को तो मिलनी ही चाहिए ! यह तो हत्या है !"—जग्गू ने क्रोध से कहा। गोपाल नाटकीय ढंग से बोला—

"हुंह., पुलिस ! पुलिस क्या कर लेगी ? चन्नू और बिसेसर सिंह ने रातों-रात उस बुढ़िया को जलाकर राख कर दिया।"

जग्गू बहुत देर तक, अपने दोनों हाथ अपनी पीठ पर बांधे जमीन की ओर देखता रहा। काफी देर की चुप्पी के बाद गोपाल बोला—"यह तो जुल्म की हद है !"

जग्गू सिर उठाकर दूर क्षितिज की ओर देखता हुआ एक लम्बी सांस छोड़कर बोला—"इसका कोई इलाज भी तो नहीं है, गोपाल।"

"इलाज क्यों नही है ?"—क्रोध और सहज अहंकार से गोपाल गरज उठा—"हम लोगों के देखते-देखते आपका हुक्का-पानी बंद कर दिया गया, फसल बरबाद कर दी गयी, बुढ़िया की हत्या कर दी गयी और पुलिस ने सबके घर में घुसकर तलाशी ली। यह सब कुछ चद रोज के भीतर ही हुआ, और हम लोग मुह ताकते रहे। बड़े शर्म की बात है !"

"मानो तो बहुत-सी शर्मनाक और दर्दनाक बातें हुई हैं, और यदि नही मानो, तो कुछ नही हुआ !"—जग्गू ने वेदना से भरकर कहा—"हम सब लोग, अपनी-अपनी डफली अलग-अलग पीट रहे हैं, और हम लोगों की दृष्टि भी भिन्न है। लीजिए हर आदमी को हर आदमी से शिकायत है। लेकिन जो असल खराबी है, जो सचमुच शिकायत की बात है—उस ओर कोई भी ध्यान नही देता ! मैं तो तुम्हारे गांववालों से ऊब गया हूं, गोपाल !"

गोपाल कुछ उम्मीद से आया था—दंगा-फसाद का तमाशा देखने की उम्मीद से। उसने सोचा था कि जग्गू कुछ कहेगा, कुछ बोलेगा ! लेकिन

जग्गू निष्क्रिय बना रहा, बल्कि क्रोध या ललकार की जगह, उसमें उदासी की मात्रा ही ज्यादा बढ़ गयी। इसलिए गोपाल निराश होकर चुप हो रहा। जग्गू को अचानक गुरुजी का खयाल आया।

"अच्छा गोपाल, मैं जरा जल्दी में हूं। गुरुजी की तबीयत खराब है! अब चलता हूं।" यह कहकर वह चलने ही लगा था कि राघव आ धमका। दरअसल राघव को आते देखकर ही जग्गू को खयाल आया कि उसे जल्दी गुरुजी के यहां पहुंचना है। लेकिन राघव दूर से ही पूछ बैठा—

"रात-भर कहां रहे, जगनारायण बाबू?"

"मैं तो गुमटी पर ही था!"—जग्गू ने ऊब के स्वर में कहा। राघव सरलता से छोड़नेवाला आदमी नहीं था। उसने अजीब नाटकीय ढंग से मुंह फैलाकर हंसते हुए कहा—

"लेकिन मैं तो हुजूर की सेवा में दो बार आया, और आपका द्वार खटखटाकर वापस चला गया। आपको मालूम है, कि आपके गांव में कितना बड़ा जुल्म हो रहा है? आप जानते हैं कि चन्नू दुसाध की सास की हत्या कर दी गयी!"

"मुझे मालूम है!" जग्गू ने विरक्त भाव से कहा।

"अब क्या होगा?"

"होगा क्या? जो होना था, सो हो चुका!"

"लेकिन सवाल यह है कि बिसेर सिंह इस बार भी बच निकला।" राघव ने ऊंची आवाज में कहा। जग्गू के होंठों पर वेदनापूर्ण मुस्कराहट कांप गयी। वह धीमे स्वर में बोला—"आपको बुढ़िया के मरने का दुःख नहीं है, आप यह भी नहीं सोचते कि दुःख, अनाचार और अन्याय को आप स्वयं बढ़ावा देते हैं!"

"मैं अन्याय को बढ़ावा देता हूं? आपका दिमाग खराब हो गया है, जग्गू बाबू!"—राघव ने सूखी हंसी हंसते हुए कहा। जग्गू ने पूर्ववत् स्वर में कहा—

"हां, अब मेरा दिमाग भी आप लोगों के चलते खराब हो रहा है। इसलिए मैं आप लोगों से दूर ही रहना चाहता हूं। बिसेसर सिंह यदि अन्यायी और कठोर है, तो आप जैसे लोग स्वार्थी, क्रूर और बेहया हैं!"

गोपाल अब तक चुप खड़ा था। जग्गू की बात उसे भायी नही। उसने *हिचक के साथ प्रतिवाद किया—*

"यह तो आप अनुचित बात कह रहे हैं, जग्गू चाचा !"

"मैं अनुचित बात कह रहा हूं···लेकिन साथ ही सत्य बात भी कह रहा हूं। एक निरपराध बुढ़िया, व्यर्थ ही, राघव बाबू और बिसेसर बाबू के स्वार्थ की बलिवेदी पर चढ़ गयी; और राघव बाबू को बुढ़िया की मृत्यु पर थोड़ा भी दुःख नही हुआ, हालाकि इन्होंने ही उस बुढ़िया को फंसाया। इन्हें केवल इस बात की चिंता है, कि बिसेसर सिंह फिर बच निकला। मैं चाहता हू कि इन्हें अपनी ही शक्ति के बूते पर अन्याय का मुकाबला करना चाहिए। यदि इन्हें सहारा ही लेना हो तो उस व्यक्ति का सहारा लें, जो इन्हें अच्छी तरह जानता हो, जिसे इनका उद्देश्य मालूम हो, और जो स्वेच्छा से इनका साथ देने को तैयार हो।"

"कहां है ऐसा आदमी? मुझे तो कही दिखाई नही देता !" राघव ने दोनो हाथ फैलाकर पूछा।

"तो फिर चुपचाप अपने घर में बैठिए। अनजान लोगों को साधना बनाकर उन्हें मुसीबतों के चक्कर मे फसाना सबसे बड़ी क्रूरता और अन्याय है, धोखा है !"

"ठीक है ! मैं किसीको धोखा नही देना चाहता। मैं आपसे ही पूछता हूं—*क्या आप मेरा साथ देंगे ?"—राघव ने कृत्रिम गम्भीरता से पूछा।*

"हर काम में मैं आपका साथ नही दे सकता !"—जग्गू ने सहज गम्भीरता से कहा।

राघव ने छूटते ही कहा—

"हर काम में मुझे आपकी सहायता चाहिए भी नही ! मैं तो केवल बिसेसर सिंह की पोल खोलना चाहता हू !"

"लेकिन मैं किसीका मजाक उड़ाना या किसीको बेइज्जत करना नही चाहता। हा, अगर आपका उद्देश्य बिसेसर सिंह न होकर समाज या देश की सम्पत्ति की रक्षा करना हो, तो मैं आपका साथ देने को तैयार हूं !"

"चलिए, मैंने आपकी बात मान ली ! अब तो आप साथ देंगे ?"

"हां !"

"और तुम गोपाल भाई ?"

"मैं भी तो तैयार हूं !"

"बस, तो ठीक है, मैं अब चलता हूं ! आज से मेरा यही व्रत हो गया ! जब तक अपराधी को सजा नही मिल जाएगी, मैं चैन नहीं लूंगा। अच्छा, आप लोग अपना वायदा याद रखिएगा !" इतना कहकर राघव स्टेशन की ओर चल दिया। गोपाल के साथ जग्गू गुरुजी के घर पहुंचा। वहां जाकर उसने देखा, कि बिसेसर सिंह उदास मन से गुरुजी की खाट के पास बैठे थे और अनुराधा को स्नेहपूर्वक डाट रहे थे—

"तुमने मुझे खबर तक नही दी ! आखिर मैं कोई बेगाना तो हूं नही ! गुरुजी को मैं अपने पिता से भी बढ़कर मानता हूं और तुम्हें···" कि इतने में जग्गू और गोपाल आ पहुंचे। बिसेसर सिंह ने अपना पहला वाक्य अधूरा छोड़कर जग्गू से तपाक से कहा—

"आओ, जग्गू भाई ! तुम सचमुच देवता आदमी हो ! अभी-अभी गुरुजी तुम्हारी प्रशंसा कर रहे थे। तुम्हें इनकी बीमारी का पता था, लेकिन मुझसे तुमने कुछ नही बताया !"

"मुझे कल रात ही मालूम हुआ।" जग्गू ने अन्यमनस्क भाव से कहा। वह मन ही मन बिसेसर सिंह की नाटकीयता पर आश्चर्य कर रहा था—कि कल ही यह मुझसे झगड़कर गया, कल ही इसने बुढ़िया की हत्या करवाई और अब ऐसे बोल रहा है—जैसे कभी कुछ हुआ ही नहीं ! बिसेसर सिंह का व्यवहार देखकर जग्गू को कभी-कभी अपनी आख, कान और समझ पर भी अविश्वास होने लगता।

कुछ देर तक बिसेसर सिंह वही बैठे रहे। कभी वह गुरुजी को हिम्मत दिलाते तो कभी अनुराधा पर अपना स्नेह बिखेरने लगते। अनुराधा को वह कभी-कभी अजीब दृष्टि से देखते—ऐसी दृष्टि से, जो बिसेसर सिंह की साधारण दृष्टि से बिल्कुल भिन्न होती। जग्गू उस दृष्टि को छुपकर देख लेता। उसे वह दृष्टि बुरी लगती।

बिसेसर सिंह के चले जाने पर, अनुराधा ने जग्गू से हिचकिचाते हुए कहा—

"जरा वैद्यजी के यहां से दवा ला देते !"

"मैं ले आता हूं !"—गोपाल बीच ही में उत्साह से बोल उठा, और गुरुजी की बीमारी के संबंध में नयी-पुरानी जानकारी प्राप्त करके वैद्यजी के यहां चल पड़ा।

"बिसेसर सिंह कब से बैठे थे ?"—जग्गू ने चुप्पी तोड़ते हुए अनुराधा से पूछा।

"आपके आने के एक घंटा पहले से।" अनुराधा ने सिर नीचा किए उत्तर दिया। जग्गू चुप हो रहा। अनुराधा को जग्गू के प्रश्न और उसकी मुद्रा पर कौतूहल हुआ। उसने पूछा—

"क्यों ? कोई खास बात है क्या ?"

"नहीं, कुछ नहीं।" जग्गू हंसकर टाल गया। फिर दोनों चुप हो गए। गुरुजी की हालत अच्छी नहीं थी। वे चुपचाप, आखें बंद किए पड़े थे। गोपाल के साथ वैद्यजी स्वयं आए। गुरुजी के शरीर की परीक्षा करके उन्होंने दवा दी, और निराश स्वर में अनुराधा को धीरज बंधाकर चले गए।

अनुराधा ने जीवन देखा था, दुःख झेले थे, किस्मत की ठोकर ने उसमें अनुभूति भर दी थी। इसलिए वैद्यजी के निराश स्वर का अर्थ, उससे छिपा नहीं रह सका। वह चुपचाप अपने पिता के पास बैठी रही; बीच-बीच में उसकी आखें भर आती थीं, कभी-कभी लगता कि वह चीत्कार कर उठेगी।

"तुमने मुंह-हाथ धोया या नहीं ?" जग्गू ने पूछा। अनुराधा चुप रही। जग्गू प्यार से बोला—

"इस तरह तो काम चलेगा नहीं ! दस बजे की गाड़ी पास हो गई और अभी तक तुमने मुंह भी नहीं धोया ?"

अनुराधा सिर झुकाए, जग्गू की डांट सुनती रही। जग्गू पूर्ववत् स्वर में बोलता रहा—"तुम समझती हो कि मैं यहां केवल दर्शन देने आता हूं ? अगर मेरे रहते हुए भी तुम यहीं बैठी रहो तो मेरा आना व्यर्थ है ! मैं यहां शिष्टाचार के नाते नहीं आता हूं।"

अनुराधा ने आखें उठाकर जग्गू को देखा। जग्गू की आंखें भरी हुई थीं, और उसका मुखमण्डल सवेदनशील हो रहा था। जग्गू का स्वर कोमल हो उठा—"जाओ अनुराधा, मुंह-हाथ धोकर कुछ खा-पी लो। उठो !"

अनुराधा जग्गू का आग्रह टाल न सकी और उठकर चली गई। जग्गू

गुरुजी की परिचर्या में लगा रहा। इस बीच उसने गुरुजी को दवा पिलाई, पाखाना-पेशाब करवाया और उनके तलुवे में तेल की मालिश की। उसे समय का कुछ भी ज्ञान नही रहा। अनुराधा अचानक ही उसके सामने आकर खड़ी हो गई और बोली—

"चलकर कुछ खा लीजिए !"

"मैं ?—मैं तो अभी कुछ नही खाऊंगा।"

"फिर मैं भी नही खाऊगी !"

"जाओ बेटा, थोड़ा खा लो !"—गुरुजी ने क्षीण स्वर में कराहते हुए कहा। जग्गू चुपचाप, सकुचाता हुआ, अनुराधा के पीछे हो लिया।

जग्गू चुपचाप खाता रहा और सोचता रहा। आधी जिंदगी वैरागी की तरह बिताकर, अब जग्गू माया-मोह, छल-प्रपंच और अन्य सांसारिक ऊहा-पोह में जा फसा था। पहले उसके लिए कहीं कोई आकर्षण नहीं था, रागात्मकता नही थी, बेचैनी या कौतूहल का कोई कारण नही था, सम्पृक्त या असम्पृक्त हो जाने की कोई भावना नहीं थी'''लेकिन अब उसमें यह सब कुछ अनायास ही आ गया था; जितना ही वह जाल तोड़कर निकलने की कोशिश करता, उलझन उतनी ही बढ़ती जाती।

"भात दू ?" अनुराधा ने पूछा।

"नही, अब कुछ नही चाहिए।"

"दूसरों को तो आप स्वास्थ्य पर ध्यान देने का उपदेश देते है, लेकिन अपने स्वास्थ्य की आपको बिल्कुल चिन्ता नही रहती।"—अनुराधा ने किंचित् अधिकार के स्वर में कहा। जग्गू ने अनुराधा को आश्चर्य से देखा, और उदासी की सास खीचकर वह थाली की ओर देखता हुआ बोला—

"मेरा क्या है, अनुराधा'''" इतना कहकर जग्गू सम्भल गया, और अपनी वेदना छिपाने के लिए हसकर बोला—

"मुझे तो किसीकी देखभाल नही करनी है, और न मुझे दुनिया का सामना करना है ! लेकिन तुम्हें तो इस पापी दुनिया में रहकर, अपने धर्म का जीवन व्यतीत करना है।"

अनुराधा कुछ भी नहीं बोली। जग्गू ने देखा, महसूस किया कि अनुराधा की आंखों में, उसके चेहरे पर, दीनता की उदासी है; वह कुछ

बोलना चाहती है, कुछ मांगना चाहती है; लेकिन उसके होंठ कांपकर रह जाते हैं, आखें भर जाती हैं और उदासी की छाया घनीभूत हो उठती है।

"किसी चीज की जरूरत है क्या?" खाना खा चुकने के बाद जग्गू ने प्यार से पूछा। अनुराधा ने सिर हिलाकर इन्कार कर दिया। जग्गू दुबारा नहीं पूछ सका और कुछ देर तक वहां ठहरने के बाद, अपने घर की ओर चल पड़ा।

इधर कई रोज से, जग्गू ने शारदा की खोज-खबर नहीं ली थी। शारदा भरी बैठी थी। जग्गू को देखते ही उसका चेहरा क्रोध से तमतमा उठा। जग्गू ने सकपकाते हुए कुछ पूछना चाहा, उससे बात करनी चाही और जल्दी में उसके मुंह से निकल पड़ा—"भानू बाबू की कोई खबर मिली?"

"आपको इससे मतलब?" शारदा ने तमककर पूछा। उसका स्वर बहुत रूखा और घृणा से भरा हुआ था। जग्गू की मानसिक स्थिति संतुलित नहीं थी। बुढ़िया की हत्या, गांववालों की बेइन्साफी और अनुराधा की वेदना ने जग्गू को बेसब्र बना दिया था। शारदा के इस उत्तर से वह तिलमिला उठा—

"मुझे क्या मतलब रहेगा? लेकिन···लेकिन उनके आसार मुझे अच्छे नजर नहीं आते, और···और आपके व्यवहार का भी मुझे पता नहीं चलता। कभी तो आप···जमीन पर रहती हैं, और कभी आसमान में! खैर, मैं आगे से कुछ नहीं पूछूगा!" क्रोध के अतिरेक से, जग्गू ठहर-ठहरकर बोल रहा था। शारदा ने छूटते ही कहा—"हां-हां, मत पूछिएगा! मैं भी अच्छी तरह समझती हूं कि आपके मन में क्या है!" जग्गू चौंक उठा। उसने किंचित् आशंकित होकर पूछा—

"क्या है मेरे मन में?"

"उसे बताना कोई जरूरी नहीं है! आप भी समझते है। 'उनके' आते ही मैं यहां से चली जाऊंगी! मैं तो समझती थी कि आप सीधे-सच्चे आदमी है!" शारदा ने रोषावेष्टित स्वर में कहा। जग्गू तरह-तरह की बुरी बातें सोच गया। वह गरजकर बोल—

"आखिर आपका मतलब क्या है?"

"यही कि जल्दी से जल्दी यहां से चली जाऊं।"

"ठीक है, चली जाइए !" जग्गू ने भी तमककर कहा, और वह तेजी से घर के बाहर हो गया।

"हां-हां, चली जाऊंगी !" इस वाक्य के साथ ही, जग्गू के कान में फफक-फफककर रोने की आवाज सुनाई पड़ी। लेकिन वह सीधे गुमटी पर आकर ही रुका।

उसका हृदय और मस्तिष्क फटा जा रहा था। यह सब कुछ क्या हो रहा है—यह प्रश्न, लाख मन बोझ की तरह उसके मस्तिष्क पर लदा था; और उसका वह मस्तिष्क, तरह-तरह की घटनाओं के दुरूह अर्थ की तरफ बढ़ना चाहता था।

उसे क्रोध आ रहा था। शारदा को उसने शरण दी थी, उसके लिए गांववालों से वैर मोल लिया था, मानसिक अशांति को आमन्त्रित किया था; लेकिन शारदा की दृष्टि में इन बातों का कोई महत्त्व नहीं था—'क्या मनुष्य इतना कृतघ्न होता है ?'—जग्गू अपने-आपसे पूछता। शारदा की सूरत उसके सामने उभर आती—सद्यःस्नाता, कोमल, संवेदनशील, प्रेम की दीवानी, क्रोध से आरक्त, तमतमाई हुई···जग्गू आंखें बंद कर लेता, आखें खोल देता, ठहरकर कुछ देखने लगता, चक्कर लगाने लगता और फिर बैठ जाता···जग्गू के मस्तिष्क में अब एक नया प्रश्न उठ खड़ा हुआ—'क्या मैं शारदा से, उपकार का बदला चाहता हूं ?' और तब जग्गू के मन में ग्लानि उभरने लगी। उसे लगा कि वह भानुप्रताप से ईर्ष्या करता है, वह शारदा को प्यार करता है—प्यार···? हां, शारदा की खूबसूरती ने, शारदा की एकनिष्ठा ने, और शारदा के विश्वास ने उसके हृदय में पाप उत्पन्न कर दिया है···लेकिन वह पाप नहीं था···वह तो अभावजनित ईर्ष्या की उदासी थी जो···जो···!

जग्गू काफी देर तक बेचैनी की हालत में चक्कर काटता रहा, और तब अचानक ही वह घर की तरफ बढ़ चला। घर पहुंचकर उसने देखा कि ब्रह्मदेव सामान बांध रहा था। शारदा की आंखें सूजी हुई थी। जग्गू का हृदय करुणा से भर उठा। उसने लपककर ब्रह्मदेव के हाथ से बिस्तर छीन लिया, और उसे खोलकर खाट पर बिछाता हुआ बोला—"बिस्तर बिछाने की चीज होती है, लपेटने की नहीं !"

ब्रह्मदेव मुह ताकने लगा। शारदा करुणार्द्र स्वर में ब्रह्मदेव पर बरस पड़ी—

"मुह क्या देख रहे हो ? जल्दी बांधो बिस्तर !"

"किसलिए ?" जग्गू ने मनाने के स्वर में पूछा।

"इससे आपको मतलब ?" शारदा ने डपटकर पूछने की कोशिश की, लेकिन उसके स्वर की दीनता प्रकट हो गई ।

"मुझे मतलब है, तभी तो पूछ रहा हूं !"

"लेकिन मुझे कोई मतलब नही है ! मैं यहां से जा रही हूं···ब्रह्मदेव, भीतर से अटैची ले आओ !" अंतिम वाक्य शारदा ने ब्रह्मदेव से कठोर आज्ञा के स्वर में कहा। जग्गू गरज उठा—

"खबरदार ब्रह्मदेव, अटैची लाए तो तुम्हारा हाथ तोड़ दूगा ! तुम बाहर जाकर आराम करो !" सात्त्विक क्रोध से जग्गू कांप रहा था। ब्रह्मदेव सहमकर बाहर निकल गया। शारदा तमककर भीतर से अटैची उठा लाई, और आगन पारकर बाहर निकलने ही वाली थी, कि जग्गू ने लपककर उसकी बांह पकड़ ली। शारदा ने बाह छुड़ाने की पूरी कोशिश की, लेकिन व्यर्थ; और अंत मे वह हार मानकर, वही आंगन मे धम्म से बैठ गई। जग्गू को शारदा के बचपने पर हंसी आ गई। उसने हसते हुए, स्नेह से कहा—

"तुम्हें कही नही जाना होगा !"

शारदा ने आखें उठाकर देखा—जग्गू की निर्व्याज आंखो में हंसी तैर रही थी। जग्गू ने पहली बार उसे स्नेह से 'तुम' कहा था।

"बनावटी व्यवहार मुझे नही अच्छा लगता। मैं सब समझती हू !" शारदा अपने दोनो ठेहुनो पर ठुड्डी रखे हुए बोली। जग्गू ने तपाक से कहा—

"यही तो मुसीबत है कि तुम कुछ नहीं समझती ! बिना सोचे-समझे मुह फुला लेना या उबल पडना, कमजोरी की निशानी है। तुम्हें नही मालूम कि आजकल गांव में क्या हो रहा है !"

"मुझे क्या मतलब है, आपके गाव से ?" शारदा के कठोर स्वर में निश्छलता थी।

"गाव या समाज मे रहकर, कितनी बातो से इन्कार करोगी ?" जग्गू ने किंचित् दार्शनिक मुद्रा में कहा। शारदा शायद इसी बात की प्रतीक्षा में थी। बोल उठी—

"आप अपने घरवालों से हर बात पर इन्कार कर सकते हैं, और मैं गाव की अनजान बातों से भी इन्कार नहीं कर सकती ?"

"तुमने क्या कहा है, जिसे मैंने इन्कार कर दिया है ?"

" 'उन्होंने' आपको चिट्ठी लिखी, मैंने भी आपसे बिनती की; लेकिन आपने एक छोटी-सी बात भी नही मानी ! आपको डर है कि मकान बनाकर, कही ये लोग यहीं न बस जाए ! आप हम लोगों से नफरत करते हैं !" शारदा ने अतिम वाक्य मानिनी के स्वर में कहा। जग्गू भावना में बहा जा रहा था। बोला—

"ऐसी बात नहीं है, शारदा ! मैं तुमसे नफरत करने की बात सोच भी नही सकता; बल्कि जब से तुम्हे देखा है, न जाने क्यो, गार्हस्थ्य-जीवन के प्रति मेरा दृष्टिकोण ही बदल गया ! पहले मैं बिल्कुल वैरागी था, अब अनुरागी बनता जा रहा हूं।"

"फिर मुझे भगाना क्यों चाहते है ?"

"किसने कहा कि मैं तुम्हें भगाना चाहता हूं ? मेरा बस चले, तो तुम्हें हमेशा-हमेशा के लिए रोक लू ! लेकिन तुम पराया धन ठहरी ! मजबूर हू !" जग्गू की यह बात सुनकर शारदा भी भावातिरेक से भर उठी—

"मैं भी आपको अपना बड़ा भाई समझती हूं ! इसीलिए तो आपसे लड़ जाती हूं ! देखिए न, इस घर में कदम रखते ही मैं ऐसी हो गई कि बात-बात में आपसे लड़ने लगी। पता नहीं, मैं ऐसी क्यों हो गई ! अपने घर पर तो मैं किसीसे भर-मुंह बात भी नही करती थी।"—यह कह शारदा उठ खड़ी हुई, और बरामदे में पड़ी खाट पर बैठ गई। जग्गू और शारदा, दोनो बहुत देर तक तरह-तरह की बातें करते रहे। मकान की नीव खुदवाने की बात भी तय हो गई।

किसी बात का परिणाम तर्क-वितर्क से नहीं निकलता। वह तो समय-विशेष की मानस-भाव-तीव्रता का सुफल या कुफल होता है ! जग्गू भावना की धारा में बहा जा रहा था; विरोध-अवरोध का झंझावात उठाकर, वह

अपनी रागात्मकता की नाव को खतरे में डालना नहीं चाहता था। जग्गू के आचरण, उसकी भंगिमा, मुद्रा, उसके विचार और बातचीत करने का ढंग असामान्य था—असाधारण था। वह न तो बहुत पढ़ा-लिखा था और न बिल्कुल अनपढ़। गांव का वातावरण जितना सरल और स्वच्छ दीखता है, उतना होता नहीं। छोटी-सी जगह में, छोटी बातें ही तूफान उठाने को काफी होती हैं। बात-बात पर माया और ब्रह्म की दुहाई देनेवाले ग्रामीण, अपनी शान या भौतिक समृद्धि के लिए, सहोदर भाई का गला काटने से भी नहीं हिचकिचाते। जग्गू संस्कार और विचार से वैरागी था, व्यवहार से कर्मठ, ऊपर से स्थितप्रज्ञ, लेकिन भीतर से मोम जैसा। इसीलिए गाव-वालो की स्वार्थपरता, क्रूरता और नीचता को वह उनकी मूढ़ता समझता। मुद्दत तक कठोरता और एकाकीपन का नीरस जीवन व्यतीत करने के बाद जग्गू अचानक ही, अनजाने ही, तरह-तरह की भयंकर घटनाओं से सम्बद्ध हो गया। उसकी सुप्त भावनाएं जाग्रत् हो उठीं। अनजान वृत्तियों ने जग्गू के जीवन में हलचल और तूफान उठा दिया। जग्गू को नयी दृष्टि मिली। उसने देखा''' महसूस किया कि दाह, ईर्ष्या, छल, क्रूरता और नग्न स्वार्थ के अंधकार मे वह भटकता जा रहा है। शारदा और अनुराधा, उसके जीवन में ज्योति की हल्की किरण बनकर भासमान हो गई। जग्गू सोचता कि यहां थोड़ा आराम तो मिलता है, प्यार की चेतना तो जाग्रत् होती है। और इस तरह, जग्गू इन रेशमी उलझनों में जकड़कर निस्पन्द हो जाना चाहता।

प्रेम और करुणा की राह दुर्गम और अछोर होती है—जग्गू इस सत्य से अपरिचित था।

१२

गुरुजी को स्वस्थ नहीं होना था और न हुए। पन्द्रह रोज तक शारीरिक-मानसिक कष्ट सहन करते-करते, आखिर वह थक गये और सोलहवें रोज, निष्प्राण होकर संसार से चल बसे। अनुराधा मूक हो गई। उसके

लिए छोटा-सा गांव, विराट् सौर-मंडल की तरह भयावह बन गया। वह बिल्कुल अकेली रह गई। जग्गू की इच्छाएं, संस्कारों की सीमाओं से टकराकर तड़प उठीं। शेष गांव ज्यों का त्यों स्थिर रहा। अपने पिता की अंतिम क्रिया समुचित ढंग से सम्पन्न करने में, अनुराधा ने कोई कोर-कसर नहीं उठा रखी। रुपये-पैसे के सम्बन्ध में जग्गू से कुछ कहने में, उसे हिचक और लज्जा महसूस हुई। बिसेसर सिंह ने स्वेच्छा से सारा खर्च पूरा करने का दायित्व अपने ऊपर ले लिया। इस अनुग्रह के बोझ से अनुराधा झुक गई। बिसेसर सिंह अब बिना समय-असमय का ध्यान किए, अनुराधा के घर पहुंच जाते और हाल-चाल पूछने बैठ जाते। इस प्रकार समय बीतने लगा।

जग्गू ने नीव खुदवानी शुरू कर दी थी। गांव वाले कौतूहल और ईर्ष्या से मरे जा रहे थे। चारों तरफ चर्चा थी कि जग्गू के घर से, जमीन खोदने पर अशर्फियों के घड़े निकले हैं। एक अनजान आदमी के कहने पर, जग्गू ने उतने बड़े मकान की नीव खुदवानी शुरू कर दी थी—गांववालों का कौतूहल और ईर्ष्या करना स्वाभाविक ही था।

जब नीव डाली जाने लगी, और सैकड़ों रुपये कपूर की तरह उड़ने लगे, तब जाकर जग्गू को अपनी मूर्खता का ज्ञान हुआ। शारदा के पास के रुपये भी समाप्त हो चुके थे। उधर भानुप्रताप का कहीं पता नहीं था। जग्गू को अपने पर क्रोध आता। शारदा से वह कुछ कह नहीं पाता, क्योंकि भानुप्रताप के विरुद्ध वह एक शब्द भी नहीं सुन सकती थी। आखिर एक दिन शारदा से जग्गू की अच्छी-खासी झड़प हो गई। जग्गू तिलमिलाकर अपने घर से निकल भागा, और अनायास ही अनुराधा के घर चल पड़ा।

अनुराधा घर के भीतरी ओसारे में, दीवार से सटकर, खोई-खोई-सी बैठी हुई, उंगुलियों से तिनका तोड़ती जा रही थी। अनुराधा को देखते ही, जग्गू अपनी परेशानी भूल, पूछ बैठा—

"किस चिंता में डूबी हो, अनुराधा ?"

जग्गू के इस प्रश्न से, अनुराधा चौंककर उठ खड़ी हुई। क्षण-भर सहमी रही, फिर जाकर आश्वस्त हुई। जग्गू को अनुराधा की यह स्थिति देखकर आश्चर्य हुआ। उसने फिर पूछा—

"क्या बात है ?"

"कुछ नहीं ! मैंने समझा···कोई अनजान आदमी आ धमका।" अनुराधा ने कृत्रिम हसी हंसते हुए कहा। लेकिन घबराहट की छाया, अभी भी उसके चेहरे पर विद्यमान थी। जग्गू का आश्चर्य आशंका में बदल गया। उसने अधिकारपूर्वक पूछा—"बात क्या है ? इतनी घबराई हुई क्यों हो ?"

"मैं यहां से कहीं चले जाने की बात सोच रही थी कि अचानक आप आ गए।" अनुराधा के स्वर में वेदना गूज रही थी।

"कहां जाओगी ?"

"सोचती हूं कि पटना चली जाऊ। वहां मेरे मामू रहते है, डाकघर मे डाकिया का काम करते है।"

"लेकिन यहां से क्यो जाना चाहती हो ? तुम्हारा घर-बार, खेत-खलिहान कौन देखेगा ?"

"आप जो हैं !" अनुराधा ने सहज गाम्भीर्य से कहा। जग्गू मन ही मन अनुराधा के विश्वास और स्नेह से अभिभूत हो उठा, लेकिन प्रकट मे बोला—

"नही-नही, मुझसे यह सब नहीं होगा।"

"क्या मेरे लिए इतना भी नही कर सकते ?"

"मैं तुम्हारे लिए···सब···"—जग्गू भावावेश के स्वर में बोलता-बोलता सम्भल गया, और फिर उसने कृत्रिम विरोध के स्वर में कहा—"मैं तुम्हारे लिए सबसे अच्छा काम यही कर सकता हूं, कि तुम्हे कही भी जाने से रोक दू।"

"फिर तो मेरी जान ही चली जाएगी ! इज्जत-आबरू गंवाकर··· नहीं जग्गू बाबू, मुझे यहा मत रोको !" अन्तिम वाक्य अनुराधा के मुख से हल्की चीख की तरह निकला। जग्गू चिन्ता और कौतूहल से बेचैन हो उठा। उसने खीझकर पूछा—

"आखिर हुआ क्या है जो इस तरह की बातें कर रही हो ? तुम औरतों का पार पाना बिल्कुल असभव है !"

"मेरे लिए आप क्यों माथा खराब करते हैं ? अब तो मेरी जिंदगी में रोज ही कुछ न कुछ होता रहेगा ! कहां तक आप लोगो से कहती फिरूंगी ? मेरी किस्मत तो उसी दिन फूट गई जिस दिन मेरा जन्म हुआ। अब क्या

है? अब तो···अब तो···"—इससे आगे अनुराधा कुछ नहीं बोल पाई, उसका कंठ अवरुद्ध हो गया। जग्गू उसके निकट आकर खड़ा हो गया। स्नेह और सहानुभूति के अतिरेक से वह पागल हो उठा। उसकी इच्छा हुई कि अनुराधा को अपनी भुजाओं में जकड़ ले; लेकिन ऐसा उसने किया नहीं। केवल स्नेह के स्वर में उसने पुकारा—

"अनुराधा!"

अनुराधा ने क्षण-भर के लिए सिर उठाकर देखा और फिर दोनो हथेलियों से अपना चेहरा ढककर वह सिसकती रही। जग्गू ने करुणार्द्र होकर कहा—

"अनुराधा, क्या मुझे भी पराया समझती हो? मुझसे कहो कि तुम्हें क्या दुःख है! तुम जानती हो कि मैं गांववालों की बिल्कुल परवाह नहीं करता। मैं सच कहता हूं अनुराधा, न जाने क्यों, मेरी इच्छा होती है कि मैं तुम्हारे लिए···"

"बस-बस, अब और कुछ मत बोलिए! इस निस्सार जीवन के अन्त में किसीका स्नेह लेकर मैं क्या करूंगी! मुझमें अब क्या है! मैं तो जीवित लाश हूं!"

"मैं भी तुमसे कुछ नहीं चाहता, अनुराधा! मैं तो अपनी इच्छा-मात्र प्रकट कर रहा हूं; और मेरी इस इच्छा में, बदले या स्वार्थ की गन्ध तक नहीं है। विश्वास करो! बस, मैं इतना ही चाहता हूं कि तुम इसी गांव में रहो। चन्द रोज में ही मैंने इस गांव में बहुत कुछ देख लिया—बहुत कुछ सीख और समझ लिया है। मैं अब अपनी समझ से फायदा उठाना चाहता हूं। लेकिन मेरा मन कहता है कि यदि तुम इस गांव से चली गईं तो मैं कुछ नहीं कर पाऊंगा!"

"लेकिन मेरे यहां रहने से आपकी मुसीबत बढ़ेगी ही घटेगी नहीं! इधर रोज ही बिसेसर बाबू यहां आते हैं। उनका हाव-भाव, उनके विचार और उनकी बातचीत मुझे बिल्कुल अच्छी नहीं लगती। मुझे बड़ा डर लगता है!"

"तो मना क्यों नहीं कर देतीं? वह तो बड़ा ही पतित आदमी है! पता नहीं, ऐसे चोर और लुच्चे को गांववालों ने सिर पर क्यों चढ़ा रखा है!" जग्गू ने घृणा से दांत पीसते हुए कहा। अनुराधा चुपचाप खड़ी

रही। जग्गू क्षण-भर रुककर निर्णयात्मक स्वर में बोला—

"उस पाजी से दूर ही रहो, तो अच्छा है! वह आदमी नहीं, सांप है!"

"ऐसा मैं नहीं कर सकती। तभी तो यहां से जाने की बात सोच रही हूं।"

"ऐसा क्यों नहीं कर सकतीं? वह क्या कर लेगा?" जग्गू ने क्षुब्ध होकर पूछा। अनुराधा ने सहज दीनता के स्वर में कहा—

"वह क्या कर लेगा—यह तो मैं नहीं जानती, लेकिन उसकी करुणा और उसकी विनम्रता से मुझे बड़ा भय लगता है! मैंने उससे रुपये भी ले रखे हैं।"

"रुपये ले रखे हैं? कब लिए तुमने रुपये?"

"पिताजी का अंतिम संस्कार करने के लिए। आपसे कहते मुझे लाज लगी थी।" अनुराधा ने सहमकर कहा। जग्गू कुछ देर मौन रहा। फिर अचानक ही, संकल्पपूर्ण स्वर में बोला—

"अच्छा, तुम चिन्ता मत करो! मैं कल तुमसे मिलूंगा, और देखो—विसेसर सिंह को यहां आने से मना कर दो—या रहने दो, मैं स्वयं निबट लूंगा!"

जग्गू सीधे मुनिदेव के पास पहुंचा। मुनिदेव अपनी दुकान पर अकेला बैठा था।

"मुझे थोड़े-से रुपये चाहिए!" जग्गू ने पहुंचते ही कहा। मुनिदेव कुछ चौंक-सा उठा। बोला—

"कितने रुपये?"

"यह तो मुझे भी नहीं मालूम!" जग्गू झेंपता हुआ बोला। मुनिदेव आश्चर्य से भौंचक जग्गू को देखता रह गया। मुनिदेव की मुखमुद्रा देखकर जग्गू को अपनी हास्यास्पद स्थिति का ज्ञान हुआ। उस दिन शारदा के व्यवहार ने उसमें ईर्ष्या और विक्षोभ पैदा कर दिया था। अनुराधा की शालीनता और दीनता ने उसमें करुणा और सहानुभूति की धारा बहा दी थी। भावावेश की स्थिति में प्राप्त तुलनात्मक ज्ञान समुद्र की तरह गहरा नहीं होता, पहाड़ी नदी की तरह उथला होता है—और उसकी उद्दंड लहरों के थपेड़ों से मर्यादा, गाम्भीर्य और अनुभव की नींव भी हिल उठती है। जग्गू थोड़ा संकोच में पड़ गया। मुनिदेव ने मुस्कराते हुए पूछा—

"क्या बात है ? मकान की नींव अधूरी रह गई क्या ? मैं अब भी सावधान किए देता हूं दोस्त ! यह तुम्हारा राजस्थानी सेठ का मकान मुझे तो चमगादड़ जैसा लगता है—पूरा चार सौ कोस !"

"उसके लिए नहीं मांग रहा हूं।" जग्गू ने संकोच भरे स्वर में कहा।

"फिर किसके लिए ?" मुनिदेव ने पूछा।

"अनुराधा ने अपने पिता के श्राद्ध कर्म के लिए विसेसर सिंह से कर्ज ले लिया, और अब वह बदमाश उससे नाजायज फायदा उठाना चाहता है।"

"तो क्या विसेसर सिंह को रुपये देने तुम स्वयं जाओगे ?" मुनिदेव ने किंचित् क्रोध से पूछा।

"हां।" जग्गू मुनिदेव के क्रोध का आशय नहीं समझ सका।

"और कहते हो—हां ? तुम्हारा दिमाग आजकल कहां चरने चला गया है ?"

"क्यों, इसमें हर्ज ही क्या है ?" जग्गू ने सहज कौतूहल से पूछा।

मुनिदेव जेब से बीड़ी निकालता हुआ बोला—

"एक तो तुमने शारदा देवी को अपने घर में बैठाकर सारे गाव को अपना दुश्मन बना लिया, और अब तुम खुले आम, अनुराधा को रुपये-पैसे से मदद देना शुरू कर रहे हो। जानते हो—इसका परिणाम क्या होगा ? लोग तुम्हारा त्याग और तुम्हारी आदमीयत देखने नहीं जाएंगे। लोग देखेंगे तुम्हें और उस अकेली जवान विधवा को, और तब एक हंगामा शुरू हो जाएगा !"

"तो क्या हगामे के डर से एक असहाय विधवा को बर्बाद हो जाने दूं ?"

"पता नहीं, आजकल तुम्हें हो क्या गया है ! अजीब ढंग की बातें करते हो और अजीब-अजीब काम करते हो। एक तिकड़मी के चक्कर में पड़कर इतने बड़े मकान की नींव डलवा दी; और अब तुम्हारे सिर पर विधवाओं के उद्धार का भूत सवार हुआ है।"

"अनुराधा मेरे लिए केवल एक विधवा ही नहीं है, मुनिदेव ! तुम जानते हो कि हम दोनों बचपन से ही···" जग्गू इसके आगे बोल नहीं

सका। शर्म से उसने आंखें झुका लीं। मुनिदेव के चेहरे पर, एक साथ ही गम्भीरता और मुस्कराहट स्पष्ट हो उठी। वह जग्गू को बनाता हुआ बोला—

"तो यह बात है ! बासी कढ़ी में भी उबाल आने लगा ?"

"नहीं मुनिदेव, अनुराधा को मैं उस नजर से नहीं देखता। अनुराधा तो बचपन से मेरी मर्यादा और पवित्रता की प्रेरणा रही है। वह मेरी आस्था है ! तुम भी तो मुझे बचपन से जानते हो !"

मुनिदेव अपने मित्र की निरीहता पर दुखी हो गया। वह जानता था कि जग्गू का अनुराधा के प्रति मोह उन दोनों के विनाश का कारण होगा। वह यह भी महसूस करता था कि दोनों ही त्याग और तपस्या की भूमि पर खड़े हैं, दोनो ही निर्विकल्प भाव से एक-दूसरे में स्थित हैं, और दोनों ही निश्छल, निरीह और निरुपाय हैं। मुनिदेव गांववालों को भी जानता था। इसलिए वह आशका से मन ही मन कांप उठा। लेकिन वह धर्म-संकट में पड़ा रहा। उसकी इतनी भी हिम्मत नहीं हुई, कि वह जग्गू को इस राह पर बढ़ने से रोक दे। काफी देर की चुप्पी के बाद मुनिदेव बोला—

"अच्छी बात है ! अनुराधा से पूछ आओ कि उसने कितने रुपये कर्ज लिए हैं। इन्तजाम हो जाएगा। हां, तुम बिसेसर सिंह से इस सम्बन्ध में कोई बात मत करना। इसीमें अनुराधा की भलाई है, और मैं समझता हूं कि तुम अनुराधा की भलाई ही चाहते हो !"

"लेकिन वह रोज ही अनुराधा के पास पहुंच जाता है। अगर उस दानव ने कही कोई ऐसी-वैसी हरकत शुरू कर दी तो ?"

"तुम इसकी चिंता मत करो ! बिसेसर सिंह कायर शैतान है। वह अपनी मान-प्रतिष्ठा पर दाग नही लगने देगा। वह समाज से छिपकर पतितों जैसा काम करता है; और समाज के सामने वह बहुत ही महान और आदर्श व्यक्ति बनने का स्वाग रचता है। ऐसा आदमी, अनुराधा पर जोर-जबरदस्ती नही कर सकता !"

"तुम भी तो कायरो जैसी बातें कर रहे हो ! आखिर वह होता कौन है, अनुराधा के यहा बिना बुलाए जानेवाला ?" जग्गू ने तमककर कहा।

मुनिदेव को जग्गू की सरलता पर हंसी आ गई। बोला—

"बच्चों की तरह बातें मत करो जग्गू! आखिर तुम कौन होते हो, उसे रोकने वाले?"

"मैं? मैं···मैं तो अनुराधा की तरफ से बोल रहा हूं। मैं तो···"

"बस-बस! किसी दूसरे आदमी के सामने ऐसी बात मत बोलना, नहीं तो अनुराधा को लोग कच्चा ही चबा जाएंगे—तुम्हारा तो कुछ नहीं बिगड़ेगा! मैं जो कहता हूं, वह करते चलो। फिर देखो कि सांप भी मरता है, और लाठी भी सलामत रहती है।"

उस दिन जग्गू ने अनुराधा के यहां दोबारा जाना अच्छा नहीं समझा। वह गुमटी पर चला आया। पश्चिम में सूरज डूब रहा था। जग्गू बहुत देर तक उसी ओर देखता रहा। गांव के घरों से धुआं उठता रहा, चीख-पुकार मचती रही और गुमसुम अंधकार धरती पर उतरता रहा—बिखरता रहा, ठंडी हवा के झोंकों से कंपन-सिहरन सुलगती रही; लेकिन जग्गू संध्या के अवसादमय चित्र जैसा, जड़ीभूत बैठा रहा—न जाने कब तक! शायद बचपन से लेकर जवानी तक!! लेकिन सात बजे की गाड़ी पास होते समय उसकी धमक से जग्गू की तन्द्रा टूट गई और तब उसने अचकचाकर देखा—चारों ओर दुर्निवार अंधकार व्याप्त था।

१४

काफी रात गए जग्गू को झपकी लगी ही थी, कि चीख-चिल्लाहट सुनकर, वह लपककर गुमटी से बाहर निकल आया। उसके घर की ओर से, ब्रह्मदेव की तेज आवाज आ रही थी। ब्रह्मदेव उसीको पुकार रहा था। अंधकार में वह कुछ देख या समझ नहीं पाया, और घर की ओर दौड़ पड़ा।

शोर-गुल सुनकर गांव के बहुत-से लोग इकट्ठे हो गए थे। जग्गू ने देखा···शारदा के लगभग सभी कपड़े-लत्ते, कुछ जेवर और लगभग डेढ़ सौ रुपये, जो उसके पास कुल पूंजी शेष थी—चोरी हो गए थे। मगर शारदा बरामदे में खड़ी मुस्करा रही थी; उसके लिए जैसे कुछ हुआ ही नहीं! जग्गू को देखते ही वह बोली—

"क्यों भैया ! तुम्हारे गांव के लोग तो अपनी बहन का सामान भी नहीं छोड़ते !"

"जिसने अपने-आपको चुरा रखा है, उसके लिए बहन-भाई, मां-बाप, अपना-पराया—सब एक समान है। जिस गांव का मुखिया ही डकैत हो, उस गांव का भगवान ही मालिक है !" जग्गू का स्वर व्यंग्य में डूबा हुआ था। दरवाजे पर गांव के बहुत-से लोग इकट्ठे थे। जग्गू सही बात जानने की व्यग्रता में, सीधे घर के भीतर चला आया था। बाहर कोलाहल सुनकर उसे गाववालों का ध्यान आया। बाहर निकलकर उसने देखा—काफी सरगर्मी मची हुई थी। जग्गू को देखते ही गणेश सिंह आगे बढ़कर बोले—

"मैंने मुनेश्वर को सामान के साथ भागते देखा है। यह चोरी, बेशक उसीने की है !"

"हां-हां, यह उसी पाजी का काम है !"—कई गांववालों ने आक्रोश-पूर्ण स्वर में हां में हां मिलाई। लेकिन जब गवाही देने की बात उठी तब सबके सब एक-एक कर खिसकने लगे। बिचित्तर सिंह और गोपाल के सिवा किसीकी हिम्मत नहीं हुई कि बिसेसर सिंह के चेले मुनेश्वर के खिलाफ खुलकर सामने आए। बात वहीं खत्म हो गई क्योंकि गोपाल या उसके पिता ने मुनेश्वर को भागते नहीं देखा था। धीरे-धीरे जग्गू का घर फिर सन्नाटे में डूब गया। जग्गू मन-ही-मन क्रोध से उबल रहा था, और अपनी असमर्थता पर उसे झुंझलाहट हो रही थी।

पूरब का आकाश लाल हो उठा। अंधकार घुलने लगा। जग्गू के तन-मन की समस्त उदासी उसकी आखों में सिमट आई। 'अब वह कैसे इस गाव मे रहे ?—क्या करे ?' यही सोचता हुआ वह घर के भीतर आया। शारदा चाय बना रही थी।

"पता नही, गाव के ये तीन शैतान कब मरेंगे !" एक लम्बी उसास के साथ बोलता हुआ जग्गू उदास मन से बरामदे की खाट पर बैठ गया। शारदा ने जग्गू को देखा और स्नेह के स्वर मे कहा—

"क्यों बेचारों को कोसते हो ? ठीक-ठीक मालूम तो है नही कि किसने चोरी की है !"

"बिलकुल मालूम है ! बिसेसर सिंह और उसके दोनो चेलो को छोड़,

गांव में ऐसा कृतघ्न और कोई नही है ! असल में बिसेसर सिंह इस गांव का कलंक है ! एक सड़ी मछली, पूरे तालाब की मछलियों को नष्ट कर देती है !"

"लेकिन आप क्यों चिंतित होते हैं ? आपको तो उस तालाव से निकाल बाहर कर दिया गया है !" शारदा चाय का प्याला बढ़ाती हुई बोली। जग्गू कुछ नहीं बोला। उसी समय मुनिदेव वहा आ पहुंचा। शारदा को प्रणाम करता हुआ वह जग्गू से बोला—"सुना, यहा चोरी हो गई ? मुझे तो अभी मालूम हुआ, और भागा चला आ रहा हू।"

जग्गू कुछ नही बोला। शारदा ने एक प्याला मुनिदेव की ओर भी बढ़ा दिया। चाय की चुस्की लेता हुआ मुनिदेव बोला—

"सुबह पाच बजे की गाडी से मुनेसरा मुजफ्फरपुर गया है, शायद। क्योंकि उस समय, उसे मैंने स्टेशन पर देखा था। मुझे तो लगता है कि यह उसीकी बदमाशी है ! कल शाम को वह मुझसे ताड़ीखाने में मिला था।" अचानक मुनिदेव को कुछ याद आया, और वह जेब से एक लिफाफा निकालकर जग्गू की ओर बढाता हुआ बोला—"कल शाम को तुम्हारे चले आने के बाद, डाक-पीउन तुम्हें ढूढ़ रहा था। मैंने उससे यह चिट्ठी ले ली।"

जग्गू ने लिफाफे को उलट-पलटकर देखा और उसे शारदा की ओर बढा दिया।

शारदा विह्वलता से पत्र पढ़ने लगी, और धीरे-धीरे उसके मुखमंडल की स्वाभाविक चपलता लुप्त होने लगी और वह पीली पड़ती गई। जग्गू और मुनिदेव बेचैनी से उसकी ओर देखते रहे कि अचानक शारदा अपनी हथेलियों से मुंह ढककर रोने लगी। जग्ग अवाक् देखता रहा। मुनिदेव ने बढ़कर पूछा—"क्या बात है ?"

शारदा और जोर से रोने लगी। मुनिदेव ने फिर पूछा—"क्या लिखा है चिट्ठी में ? किसने लिखी है चिट्ठी ?"

लेकिन शारदा रोती ही रही। बोली कुछ नही।

जग्गू से नहीं रहा गया। उसने शारदा के पास पड़ी चिट्ठी उठा ली, और पढ़ना शुरू किया। उसमें लिखा था—

"...मैं लुट गया। व्यापार में मुझे ऐसा घाटा लगा कि अब मैं कंगाल

हो गया हूं। अब किस मुंह से तुम्हारे पास आऊं ! जगनारायणजी को कौन-सा मुह दिखाऊ ! मैंने उन्हें भी धोखा दिया। अब तो आत्महत्या के सिवा मेरे लिए मुक्ति का और कोई मार्ग नहीं है…।"

पूरी चिट्ठी पढ़कर जग्गू ने मुनिदेव से कहा—

"भानुप्रतापजी को व्यापार में बहुत घाटा उठाना पड़ गया।" उसने चिट्ठी को तह करके शारदा के पास रख दिया। मुनिदेव ने शारदा को समझाने-बुझाने की कोशिश की, लेकिन वह रोती ही रही। आखिर वह जग्गू से विदा लेकर चला गया। ब्रह्मदेव कही बाहर गया हुआ था।

जग्गू कुछ देर तक कुछ निश्चय नही कर पाया। दया, करुणा और सहानुभूति से उसका कलेजा फटा जा रहा था, लेकिन वह क्या बोले, क्या करे—यही बात उसकी समझ में नही आ रही थी। यदि भानुप्रताप ने सचमुच ही आत्महत्या कर ली, तो शारदा का क्या होगा ? यह सोचकर ही जग्गू का दम घुटने लगता। शारदा का रोना उससे देखा नही गया। वह शारदा के पास ही बैठ गया, और उसका कंधा पकड़कर बोला—

"अब रोने से क्या होता है ? और तुम तो बड़ी दिलेर औरत हो ! सारा सामान चोरी चले जाने पर भी अभी-अभी हस रही थी। फिर रोने क्यो लगी ?"

"वे बहुत जिद्दी हैं, कही सचमुच आत्महत्या न कर लें।" मरती हुई हिरणी जैसी आखों से जग्गू को देखती हुई शारदा बोली। उसका पूरा चेहरा आसुओं से तर था। जग्गू पूर्णतया द्रवित हो उठा। उसने अपने हाथो से शारदा के आंसू पोछ दिए और कहा—

"नही शारदा, भानुप्रताप ऐसा नही करेंगे ! तुम उन्हें यहां आने के लिए लिख दो।"

"मेरे लिखने से वे हर्गिज नही आएगे ! उन्होंने आपके रुपये मकान में फसा रखे हैं, इसलिए वे आपके सामने आने में हिचकते होगे।"—शारदा ने अवरुद्ध स्वर में कहा। जग्गू तपाक से बोला—

"तो मैं उन्हें पत्न लिख देता हू ! लेकिन शर्त यह है कि तुम चुप हो जाओ !"

"अब तो हम लोग राह के भिखारी हो गए, भैया !"

'ऐसी क्या बात हो गई ! मेरे जीते-जी, मेरी बहन भीख नहीं मांग सकती ! मुझपर भरोसा रखो ! गरीब आदमी हूं, लेकिन इज्जतवाला हूं । समझी ?"—जग्गू ने किंचित् गर्व से कहा । मनुष्य के मन से कुछ कर गुजरने की वृत्ति यदि विलुप्त हो जाए तो जिन्दगी बड़ी सरल और सुखद राह से गुजरे । जग्गू आरम्भ से ही दुनियवी नहीं था। शारदा को रोते देखकर, उसने अनायास ही संरक्षण का वचन दे दिया । परिणाम की उसने कल्पना तक नहीं की ।

उसी समय उसने भानुप्रताप को एक पत्र लिखा । शारदा किंचित् आश्वस्त होकर, उदास मन से अपने काम-धाम में लग गई । जग्गू ब्रह्मदेव को डाकघर में पत्र छोड़ आने को कहकर, प्रफुल्लित मन से अनुराधा के घर की ओर चल पड़ा । उस समय सूरज पेड़ों की फुनगियों तक चढ़ आया था । हवा में सुखद उष्णता आ गई थी । जात-पांत से निष्कासन, चोरी और दिवाला पिट जाने की घटनाओं के बावजूद, जग्गू पुलकित हो रहा था । शुद्ध मन से किया गया लघु उपकार भी उपकारी के रक्त में उत्साह का नशा उडेल देता है, और तब अभाव और दु ख मनुष्यता के पोषक तत्त्व बन जाते हैं ।

अनुराधा स्नान करके आई थी, और आंगन में गीली साड़ी फैला ही रही थी, कि जग्गू विना आवाज भीतर पहुंच गया । अनुराधा चौंककर वहीं बैठ गयी, क्योंकि उसने समुचित वस्त्र नहीं पहन रखे थे । जग्गू लजाकर उल्टे पैर बाहर लौट गया, और वहीं से चीखकर बोला—"कितने रुपये कर्ज लिए हैं !"

अनुराधा ने कोई जवाब नहीं दिया । जग्गू ने तीन-चार बार पूछा, फिर भी अनुराधा चुप रही । जब जग्गू ने घर में पहुंच जाने की धमकी दी, तब अनुराधा बोली—

"तीन सौ रुपये ।"

जग्गू न जाने कौन-सी, कैसी तस्वीर अपने मन में अंकित किए स्टेशन की ओर चला कि उसका चेहरा स्निग्धता से धुला हुआ-सा लग रहा था, और उसकी आखें रह-रहकर बंद हो जाती थीं । वह अपने-आपमें खो गया था । गहरे-नीले, मनभावन आकाश का सौंदर्य, अप्राप्य होने पर भी जग

को महान,सुखद और मादक आकर्षण से सराबोर लग रहा था।

१५

सामुदायिक योजना-अफसर रामपाल सिंह सदल-बल आ पहुंचा। वैसे उसका मुख्य कार्यालय मुजफ्फरपुर में था; लेकिन देसौरा के इलाके में अभी नया काम शुरू हुआ था, इसलिए कुछ दिनों तक उसे अधिकतर गांव मे ही रहना था।

घर में चोरी होने के बाद से जग्गू बहुत आशंकित हो उठा था। रामपाल के आने से उसे थोड़ी राहत मिली।

अनुराधा ने अचानक ही बिसेसर सिंह के सभी रुपये चुका दिए। बिसेसर सिंह को यह बात समझते देर नही लगी कि नदी का पानी ही नदी में आया है, और वे जग्गू से मन ही मन जल उठे। अनुराधा के व्यवहार ने बिसेसर सिंह के आवागमन को कोई प्रोत्साहन नहीं दिया; और तब जलन का भाव प्रतिहिंसा में बदल गया। सारे गांव मे शोर हो गया कि अनुराधा ने एक रात मे ही तीन सौ रुपये का कर्ज उतार दिया, और आश्चर्य तो यह था कि उसी दिन, सामुदायिक योजना-अफसर रामपाल जग्गू के यहां आया था। गांव की औरतें अनुराधा के लिए काल बन गईं। गुरुजी के रहते वहां बहुत कम औरतें आती थी। वैसे भी गांव में किसी विधवा की पूछ कम होती है। लेकिन इधर गांव की बहुत-सी औरतें अनुराधा के पास आने लगी। औरतें अनुराधा की अपनी बनकर उसे गाव में फैली चर्चा सुनातीं। अनुराधा सब कुछ सुन-सुनकर घुटती रही। रामपाल को उसने कभी देखा भी नहीं था। अनुराधा को इसी बात का दुख था कि एक निरपराध आदमी, उसके चलते, व्यर्थ ही बदनाम हो गया।

वह घंटों बैठकर रोती रहती। खाना-पीना उसके लिए हराम हो गया। सूनापन उसके तन-मन में श्मशान की शान्ति भर देता। गाव की औरतें आ-आकर, उसके मस्तिष्क में वीभत्स कोलाहल पैदा कर जाती। चन्द रोज में ही सुरूपा अनुराधा कंकाल-सी दीखने लगी। लेकिन उसका वह रूप भी

गांववालों के लिए ईर्ष्या का कारण बन गया। लोग कहने लगे कि अब तो अनुराधा पाप की अति करने लगी। अनुराधा यह सब सुनती और वेदना की तीव्रता से ऐंठकर रह जाती। वह क्या करे?—कहीं भाग जाए? या आत्महत्या कर ले!—ऐसी ही बातें वह सोचा करती और रोया करती।

"कैसी हो अनुराधा?" आत्महत्या के विचार में डूबी हुई अनुराधा का हृदय यह प्रश्न सुनकर धक् से रह गया। उसने आंखें उठाकर देखा—सामने जग्गू खड़ा था।

"पता नहीं, बैठी-बैठी क्या सोचा करती हो?"—जग्गू ने किंचित् झुझलाहट से कहा। अनुराधा के होठों पर मुस्कराहट दौड़ गई, लेकिन उस मुस्कराहट में भयकर चीत्कार का संकेत था, उसमें वेदना की असीमता चित्रित थी। जग्गू की ओर देखकर वह बोली—

"घर में बैठी-बैठी, तरह-तरह की बातें सुनना और उन्हें सोचना, यही तो काम रह गया है, जग्गू बाबू!"

"हा-हा, तरह-तरह की बातें मैं भी सुनता हूं, बहुत सुनता हू! लेकिन उससे क्या? कुत्तों के भौंकने से हाथी बाजार में चलना बन्द नहीं कर देता!"

"आपको मालूम है कि लोग मेरे बारे में क्या कहते है?" अनुराधा विषय की गम्भीरता को यों ही हवा होते देख जरा रुआसी होकर बोली। जग्गू स्नेहवश हंसने लगा और बोला—"तुम अकेली हो, जवान हो, और सबसे बड़ी मुसीबत यह है कि सुन्दर हो! फिर लोग तुम्हारे बारे में बात नहीं करेंगे, तो क्या झनखू चमार की दादी के बारे में करेंगे? बैठे-बैठाए परेशानी मोल लेती फिरती हो!"

"आपको तो सब कुछ ऐसा ही मालूम होता है!"—अनुराधा ने चिढ़कर कहा, लेकिन उसके स्वर में किंचित् आश्वस्त होने का भाव स्पष्ट था।

"अरी पगली, मुझे तो इस गांव ने जाति से भी निकाल रखा है। लेकिन उससे मेरा क्या बिगड़ गया? उनकी सख्या ही कम हो गई! मैं तो अभी भी जिन्दा हूं और रहूंगा! अच्छा, मैं एक जरूरी काम से आया हू। बाहर रामपाल साहब खड़े हैं। वह तुमसे कुछ बातें करना चाहते हैं।"

"रामपाल साहब !"—अनुराधा चौंकती-सी बोली।

"हां।"

"मुझसे क्या बातें करनी हैं ?"—अनुराधा के स्वर में आशंका थी। लेकिन उसे देखने के लिए जग्गू रुका नहीं। वह बाहर जाकर रामपाल को बुला लाया।

अकारण विरोध ईमानदार और भावुक को अतिवादी बना देता है। जग्गू भी ईंट का जवाब पत्थर से देना जानता था, और दे सकता था। लेकिन इसमें विरोधियों के अस्तित्व को बल मिलता, और जग्गू को अपनी राह पर रुक जाना पड़ता। रामपाल के संसर्ग ने जग्गू की भावुकता को विवेक दिया, और वह एक नई राह पर चल पड़ा। उस राह पर, अनुराधा को सहकर्मिणी बनाना वह नहीं भूला। वह राह थी—सच्चाई की, साधना की, कर्त्तव्य की ! उसने महसूस किया कि व्यर्थ की बातों में रहकर व्यर्थ ही वह अपना जीवन नष्ट कर रहा है। रामपाल ने उसकी आंखें खोल दीं और वह देश के सात्त्विक विकास में जुट पड़ा।

"नमस्ते !" रामपाल अनुराधा के सामने खड़ा था। अनुराधा लाज से गड़ गई। रामपाल ने संकोचपूर्ण शालीनता से कहा—"सुनो, आप पढ़ी-लिखी हैं, इसलिए आपको तकलीफ देने आया हूं।"

अनुराधा चुप रही। रामपाल पूर्ववत् स्वर में बोलता रहा—"आपकी बहुत-सी बहनें अनपढ़ हैं—वे न तो रहना जानती हैं और न जीना ! अगर आप जैसी देवियां चाहें, तो सैकड़ों गंवार औरतों की जिन्दगी रोशनी से जगमगा उठे।"

"मेरी बात कौन सुनेगा ? मैं तो सब औरतों की आंखों का कांटा बन रही हूं !"

"सब औरतों की आंखों का कांटा नहीं, ऊंची जाति की औरतों की आंखों का कांटा आप बेशक बन रही हैं; क्योंकि आपके वर्त्तमान जीवन की कमजोरियों का लाभ ऊंची जाति के पुरुष ही उठाना चाहते हैं, और जब उठा नहीं पाते तब बौखलाहट से भरकर आपपर आक्रमण करते हैं। किन्तु, आप गांव के एक बहुत बड़े वर्ग को भूली बैठी हैं, जो उपेक्षित, दलित, पीड़ित और आक्रांत है। वह आपकी सहानुभूति और स्नेह का भूखा है।

आप उनके बीच जरूर जाइए, उनकी सेवा कीजिए। इसके लिए पहले तो आपको खुद ट्रेनिंग लेनी होगी। आपको कुछ रोज के लिए पटना जाना होगा। वहां से लौटकर आप हरिजनों और अन्य छोटी जाति की औरतों को पढ़ाना शुरू कर दीजिए। वे आपकी बात सुनेंगी। फिर देखिएगा कि आपकी जाति की औरतें भी, ईर्ष्यावश अपने-आप दौड़ी आएंगी।"

अनुराधा गांव के वातावरण से ऊब गई थी। वहां एक पल रहना भी उसके लिए पहाड़ मालूम होता था। इसलिए वह शीघ्र ही सहमत हो गई।

जग्गू जब रामपाल के साथ घर लौटकर आया, तब देखता क्या है कि भानुप्रताप पहुंचे हुए हैं। जग्गू ने रामपाल से उनका परिचय कराया। रामपाल बड़े उल्लास और उत्साह से मिला, उसने आत्मीयता जताने के विचार से तरह-तरह की बातें पूछीं। लेकिन भानुप्रताप ने बातचीत में कोई जिज्ञासा और दिलचस्पी नहीं दिखायी बल्कि उनके स्वर से उपेक्षा और अहंकार की बू आ रही थी। जग्गू को भानुप्रताप का व्यवहार अच्छा नहीं लगा। कुछ देर तक बाहर ठहरने के बाद भानुप्रताप गम्भीर मुद्रा में, मुंह से सीटी बजाते हुए भीतर चले गए।

"बेचारे को व्यापार में घाटा लग गया है। इसलिए बड़ा दु:खी है। शारदा तो रो-रोकर जान देने पर उतारू थी।" जग्गू ने रामपाल को स्थिति से अवगत कराने के विचार से यह बात कही ताकि वह भानुप्रताप के व्यवहार का बुरा न मान जाए।

"अच्छा?···किस चीज का व्यापार करते थे?" रामपाल ने सहानुभूति और जिज्ञासा के स्वर में पूछा। जग्गू ने कहा—

"यह तो मुझे भी मालूम नहीं! लेकिन जरूर कोई बड़ा कारोबार होगा। तभी तो इतना बड़ा मकान बनवा रहे थे! आपने तो देखा ही होगा।"

"जी हां!" रामपाल कुछ सोचता हुआ बोला। दोनों कुछ देर चुप रहे।

"अब मकान की इस नींव का क्या कीजिएगा?" रामपाल ने चुप्पी तोड़ते हुए पूछा। जग्गू उदासी से हंसता हुआ बोला—

"करना क्या है ! पड़ी रहेगी, वैसी ही ! उसे उखड़वाकर, फिर से खेत बनवाने में भी तो काफी रुपये लग जाएंगे ?"

"इसे आप सरकार के हाथ बेच देंगे ?"

"क्यों ?"

"असल में, इस इलाके में बुनियादी तालीम के लिए एक स्कूल भी बनने वाला है। वह स्कूल यदि यहीं, इसी जमीन में बन जाए तो गांववालों को भी सुविधा होगी और मुझे भी जमीन के लिए कहीं भटकना नहीं पड़ेगा।"

"भला इसमें मुझे क्या आपत्ति हो सकती है ? अंधा चाहे दोनों आंखें !" जग्गू ने तपाक से कहा। बात तय हो गयी।

रामपाल कुछ देर के बाद इलाके का निरीक्षण करने चला गया। जग्गू ने भानुप्रताप से पूरी बातें नहीं की थीं। अतः वह भानुप्रताप से मिलने भीतर पहुंचा। भानुप्रताप खाट पर बैठे हुए कोई अखबार पढ़ रहे थे। उनके बायें हाथ की उंगुलियों में जलती सिगरेट दबी हुई थी। दाहिने हाथ में अखबार और बायें हाथ की हथेली गाल के नीचे-ऊपर हो रही थी। जग्गू को देखकर भी उनके चेहरे पर स्वाभाविक गंभीरता बनी रही। जग्गू चुप-चाप उनकी बगल में कुछ देर तक बैठा रहा। भानुप्रताप जग्गू को एक बार देखकर फिर अखबार पढ़ने में तल्लीन हो गए।

"कैसे घाटा लग गया ?" आखिर जग्गू से नहीं रहा गया और उसने पूछ लिया। भानुप्रताप ने सिर उठाकर जग्गू को ऐसे देखा जैसे उन्होंने प्रश्न सुना ही नहीं। जग्गू ने अपना प्रश्न दोहरा दिया। तब भानुप्रताप ने संक्षिप्त-सा उत्तर दे दिया—

"मेरे पार्टनर ने मुझे धोखा दे दिया। कुछ लिखा-पढ़ी थी नहीं कि मैं दावा करता !"

जग्गू के मन में यह बात जमी नहीं। उसे भानुप्रताप का किस्सा मन-गढ़ंत लगा। फिर भी उसने पूछा—

"तब ? अब क्या करने का विचार है ?"

"अभी तक कुछ सोचा नहीं है।" भानुप्रताप ने अखबार के पृष्ठ उलटते हुए कहा।

"रामपाल साहब जानना चाहते थे, कि आप कहां तक पढ़े-लिखे हैं।"

"मेरे पास डिग्री तो कोई नहीं है, लेकिन मैं एम०ए० पास को भी पढ़ा सकता हूं!"—बड़े दम्भ से भानुप्रताप ने कहा।

जग्गू ने महसूस किया कि भानुप्रताप अजीब खोपड़ी का आदमी है। शायद अभी यह बहुत दु.खी है—ऐसा सोचकर जग्गू चुप हो रहा। शारदा भी गुमसुम, अपने घरेलू काम-धंधे में लगी थी। कुछ देर तक यों ही बैठे-बैठे जग्गू का मन ऊब गया, और वह बिना कुछ बोले-बतियाए गुमटी पर चला आया।

काफी दिन चढ़ आया था। खाना बनाने में देर हो जाती, इसलिए उसने चिउरा और गुड़ खाकर पानी पी लिया। रामपाल अभी लौटा नहीं था। जग्गू काफी देर तक बाहर धूप में खाट पर बैठा रहा और रामायण पढ़ता रहा। वह इतनी तन्मयता से अरण्यकाण्ड में डूबा हुआ था कि बिसेसर सिंह का आना उसे मालूम भी नहीं हुआ।

"क्या पढ़ रहे हो, जग्गू भाई?" बिसेसर सिंह ने खाट पर बैठते हुए पूछा।

"रामायण पढ़ रहा था। क्या करूं बिसेसर बाबू, जब कभी थोड़ा-बहुत समय मिलता है भगवान राम की गाथा पढ़कर आत्मा को पवित्र कर लेता हूं।"

"बहुत बढ़िया काम करते हो! मुझे तो माया-मोह से फुर्सत ही नहीं मिलती कि राम का ध्यान करके परलोक की कुछ चिंता करूं।"

बिसेसर सिंह की इस बात से जग्गू को मन ही मन हंसी आ गई। लेकिन ऊपर से वह गंभीर बना रहा। थोड़ी देर तक इधर-उधर की बातचीत के बाद बिसेसर सिंह ने काम की बात शुरू की। सामुदायिक योजना के अधीन बहुत-से काम शुरू किए गए थे। उन कामों में, बिसेसर सिंह को रुपया बनाने की काफी गुंजाइश दीख पड़ी। इसीलिए वह रामपाल से सम्बन्ध बनाना चाहते थे। इस सिलसिले में जग्गू को अपने साथ ले लेना उन्होंने जरूरी समझा।

काफी देर तक बिसेसर सिंह की लल्लो-चप्पो सुनते-सुनते जग्गू ऊब गया और बोला—

"ये सारी बातें आप रामपाल साहब से कीजिए ! आप तो जानते हैं, कि मुझे इन बातों से कभी कोई मतलब नहीं रहता।"

"लेकिन जग्गू भाई, यह तो देश-सेवा का काम है ! हमारे-तुम्हारे जैसे लोग आगे नहीं बढ़ेंगे, तो काम कैसे चलेगा ? अब गंडक पर बांध की ही बात ले लो। इस काम में तो मुझे मजबूरन भी पड़ना ही पड़ेगा, क्योंकि यह बांध ग्राम-पंचायतों के अधीन ही सम्पन्न होना है। ऐसे बहुत-से काम हैं, जिनमें जनता का सहयोग बिलकुल जरूरी है ! मैं तुम्हारे पास इसलिए आया हूं कि ऐसे काम में, तुम्हारे जैसे ईमानदार आदमियों की सख्त जरूरत है।"

"जहां मैं अपनी जरूरत महसूस करूंगा, वहां बिना बुलाए ही पहुंच जाऊंगा !"

"खैर, जैसी तुम्हारी इच्छा ! लेकिन रामपाल साहब से मेरी सिफारिश तुम्हें ही करनी होगी !" बिसेसर सिंह ने अधिकारपूर्वक कहा। जग्गू जल उठा----

"मुझसे यह सब नहीं होगा !"

"देखो जग्गू भाई, तुमने ही मेरे उस काम को नापसन्द किया था, और आज तुम्हारी बात मानकर ही मैं लूट-पाट का काम बन्द करना चाहता हूं! लेकिन मेरे बाल-बच्चे हैं, इज्जत-प्रतिष्ठा है, और इन सबको बनाए रखने के लिए, मुझे कोई न कोई उद्यम करना ही है ! यदि तुम अच्छे काम में भी मेरी मदद नहीं करोगे, तो फिर मुझे मजबूर होकर अपने पुराने काम में जुट जाना पड़ेगा। मैं तो अच्छी राह पर स्वयं चलना चाहता हूं, लेकिन लोग चलने दें तब न !" बिसेसर सिंह, इस लम्बे व्याख्यान के पश्चात्, दुखी और गंभीर मुद्रा में चुप बैठ गए। उनकी बातों से अधिक, उनकी मुद्रा का जग्गू पर असर पड़ा। जग्गू को बिसेसर सिंह की बातों में सच्चाई की झलक मिली। वह बोला—"अच्छी बात है ! आप रामपाल साहब से मिलकर बातें कीजिए। मैं भी उनसे कह दूंगा।" बिसेसर सिंह जग्गू की बातें सुनकर मन ही मन खिल उठे, लेकिन वे इस ढंग से बोले, जैसे उन्होंने जग्गू की बातें सुनी ही नहीं...

"सच कहता हूं, जग्गू भाई...मुझे बड़ी ग्लानि होती है, जब मैं अपने

कुकर्मों के बारे में सोचता हूं। लेकिन क्या करूं? आखिर जिन्दा रहने के लिए कुछ न कुछ तो करना ही है।" बिसेसर सिंह बहुत ही भावपूर्ण मुद्रा में बोल रहे थे। जग्गू ने उन्हें तोष दिलाने के विचार से कहा—

"अच्छा, अब पिछली बातों को भूल जाइए! रामपाल साहब जरूर कुछ न कुछ करेंगे।"

"अच्छी बात है, मैं रात में लगभग आठ बजे तुम्हारे घर पर आऊंगा।" —बिसेसर सिंह अनासक्त भाव से बोले, और उठकर चलते बने।

जग्गू बिसेसर सिंह का जाना देखता रहा। सूरज पश्चिम की ओर झुका जा रहा था। खेत में गेहूं के बड़े-बड़े पौधे हवा के झोंकों पर लहरा रहे थे। जग्गू को धूप बड़ी सुखद मालूम हो रही थी, लेकिन उसे मुनिदेव के पास जरूरी काम से जाना था इसलिए वह उठ खड़ा हुआ कि तभी गोपाल आ पहुंचा।

"···आप कहीं जा रहे हैं क्या, जग्गू चाचा?"—गोपाल ने पहुंचते ही पूछा।

"हां, जरा स्टेशन तक जा रहा हूं। मुनिदेव से कुछ काम है।"

"चलिए, मैं भी साथ चलता हूं। रास्ते में बात हो जाएगी।"

दोनों स्टेशन की ओर चल पड़े। कुछ देर तक दोनों खामोश चलते रहे, फिर गोपाल ने किंचित् संकोच से पूछा—

"जग्गू चाचा, रामपाल साहब आपकी बात तो मानते ही होंगे?"

"क्यों?"

"मुझे उनसे एक काम था।"—गोपाल ने दीनता से कहा।

"भाई, वे बहुत पढ़े-लिखे हैं—अफसर हैं। मेरी बात वे क्यों मानने लगे?"

"नहीं, आप उनसे कह दीजिएगा, तो मेरा काम अवश्य हो जाएगा।"

"पहले काम बताओ।"

"वह···गंडक के किनारे बांध बननेवाला है। उसमें मैं भी काम करना चाहता हूं। बात यह है कि घर पर बेकार ही बैठा रहता हूं; यदि कुछ काम मिल जाए तो मन भी लगा रहेगा और कुछ जेब खर्च भी निकल आएगा। हर चीज के लिए बाबू से पैसा मांगने में शर्म लगती है। आप तो जानते हैं

जग्गू चाचा, कि मैं शादीशुदा हू; दो बच्चे भी हैं। और रूपन सिंह के मुकदमे ने तो हम लोगों की रीढ़ ही तोड़ दी।"

जग्गू ने कोई जवाब नहीं दिया। स्टेशन पर पहुंचते ही फौजा खलासी से भेंट हो गई।

"कहा चले, जग्गू बाबू ?"

"यहीं बाजार तक आ रहा हू। मुनिदेव से कुछ काम है।"

"अरे बाजार-बाजार जाना छोड़िए, बड़े साहब आये हुए हैं। अभी गुमटी पर भी जाएगे। जल्दी से गुमटी पर पहुंचकर वर्दी-पेटी में तैयार रहिए।"

"कौन साहब आये हैं ?"—जग्गू ने सहमकर पूछा।

"इंजीनियर साहब और डी० टी० एस० साहब, दोनों ही आये हुए हैं। देखते नहीं—वहां सैलून लगा हुआ है ?"

जग्गू उल्टे पैर गुमटी पर लौट आया। जल्दी-जल्दी उसने गुमटी के दोनों ओर की जगह साफ की, और वर्दी-पेटी पहनकर प्रतीक्षा करने लगा। उसके मन में तरह-तरह की आशंकाएं उठ रही थीं। उसे अधिक देर तक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। उसने देखा कि स्टेशन की ओर से मोटर ट्राली हड़हड़ाती हुई चली आ रही थी। गुमटी पर आकर मोटर ट्राली रुक गई। जग्गू ने झुककर सलाम किया, लेकिन साहब बहादुरों ने उसके अभिवादन का कोई उत्तर नहीं दिया। इंजीनियर साहब को जग्गू पहचानता था, लेकिन डी० टी० एस० साहब कोई नये आदमी थे। इंजीनियर साहब ने मुस्कराते हुए पूछा—

"क्यों जग्गू, आजकल तुम्हारी गुमटी पर बहुत चोरी होने लगी है। क्या बात है ?"

"हुजूर, मेरी गुमटी पर तो कभी चोरी नहीं हुई। हां, इसके आसपास जरूर हुई है !"

"लेकिन तुमको मालूम है कि इससे रेलवे को कितना घाटा लगता है ?"

"घाटा तो बहुत लगता होगा, हुजूर !"

"फिर तुम यहां किस मर्ज की दवा हो ?"—डी० टी० एस० ने डपट-

कर पूछा। क्षण-भर के लिए जग्गू के चेहरे का रंग उड़ गया। वह कुछ नहीं बोल पाया। उसे चुप देखकर डी० टी० एम० ने फिर पूछा—

"तुम ड्यूटी के समय कहा रहते हो?"

"यही रहता हू हुजूर!"

"झूठ बोलते हो! हमारे पास तुम्हारे खिलाफ रिपोर्ट पहुंची है कि तुम गुमटी पर कभी नहीं रहते और जितनी चोरियां होती हैं, उनमें तुम्हारा हाथ रहता है! इसके पहले कि यह मामला पुलिस में जाए, हम लोगों को तुम ठीक-ठीक बता दो कि मुजरिम कौन है।"

"हुजूर, मैं गरीब आदमी हू, लेकिन रुपये का भूखा नहीं हूं! आज बीस वर्ष से रेलवे की नौकरी कर रहा हूं लेकिन कभी किसीने मुझपर उंगली नही उठाई। आज भी मैं इतना ही कह सकता हूं, कि मैं भूखों मर जाऊंगा, लेकिन चोरी जैसा नीच काम नहीं कर सकता।"

"इसीलिए तो रिपोर्ट पाकर हम लोग पहले तुम्हारे पास आये हैं!" इंजीनियर ने विनम्र स्वर में कहा।

"हुजूर, क्या मैं पूछ सकता हूं कि यह रिपोर्ट किसने भेजी है?"

"तुम्हारे गांववालों ने ही भेजी है। कौन हैं ये लोग?"—इंजीनियर साहब ने फाइल देखते हुए पूछा—"कुलदीप, मुनेश्वर और रूपन सिंह!"

"इन लोगों के बारे में मुझे कुछ नही कहना है। आप चाहें, तो इन सज्जनों के बारे में गांववालो से या आपके साथ ही बड़े बाबू हैं—इनसे पूछ सकते हैं।"

"सो तो हम पूछ लेंगे; लेकिन तुम गरीब होकर भी इतना बड़ा मकान कैसे बना रहे हो? इतना रुपया तुम्हारे पास कहां से आया?"

"यह बात आप मुझसे पूछिए!"—गम्भीर आवाज में गूंजती हुई इस बात ने सबको चौंका दिया। जग्गू ने आश्चर्य और उल्लास से देखा—सामने रामपाल मौजूद था। जग्गू की जान में जान आई। रामपाल के चेहरे पर गम्भीरता व्याप रही थी।

"आप कौन हैं?"—डी० टी० एस० साहब ने किंचित् अहंकार के स्वर में पूछा। रामपाल ने हंसकर सहज भाव से उत्तर दिया लेकिन उसके स्वर में अनजाने ही व्यंग्य मुखरित हो उठा—

"आप ही की तरह मैं भी एक छोटा-सा सरकारी कर्मचारी हूं—लोक-सेवक !"

"आप सामुदायिक योजना के मुख्य क्षेत्रीय अफसर हैं।" बड़े बाबू ने बात को बिगड़ते देखकर जल्दी से टी० टी० एस० को बताया। तीनों अफसर आपस मे मिले। तीनों ने अंग्रेजी में कुछ बातचीत की, और फिर तीनों ही मोटर ट्राली पर बैठकर स्टेशन की ओर चले गए। जग्गू से किसीने कुछ नही पूछा। वह हक्का-बक्का रह गया। पश्चिम में जमीन के निकट पहुंचकर सूरज अत्यधिक लाल हो उठा था, लेकिन उसका तेज समाप्तप्राय हो चुका था। पूस की शाम ठड से सिकुड़कर जमी जा रही थी। ठड के मारे हवा भी बोझिल हो रही थी।

कुलदीप, मुनेश्वर और रूपन सिंह की दुष्टता पर जग्गू के मन में क्षोभ पैदा हुआ लेकिन उसका क्षोभ मौसम की ठंडक मे दबकर उसीके पास रह गया।

गांववालों के विरोध के बावजूद अनुराधा पटना चली गई। कुछ दिनों तक गांव में इसकी खूब चर्चा रही, लेकिन समय और घटनाचक्र नित्य नवीन रूप धारण करते रहे।

बिसेसर सिंह ने रामपाल को फंसाकर सीमेंट, खाद और दवाइयां हड़पने की पूरी कोशिश की; लेकिन रामपाल एक चेतन नौजवान आई० ए० एस० अफसर था। अभी उसके खून में घूस खाने और फरेब करने का नशा असर नहीं कर पाया था। बचपन से ही वह गरीबी, परेशानी, छल-प्रपंच और सामाजिक विषमता के वातावरण में पला था। उसे इन बातों से बहुत घृणा थी। वह सामाजिक अनाचार और प्रशासनिक बुराइयों से पूरी तरह परिचित था, इसलिए हमेशा जागरूक और चेतन रहता। वह जानता था कि सामुदायिक योजना के अन्तर्गत मिलनेवाला सामान मुखिया और ग्रामसेवक के थैले मे लीन हो जाता है। इसलिए वह जहा भी जाता था पूरी सख्ती बरतता था।

ग्राम पंचायत की ओर से गोपाल, बिसेसर सिंह का लड़का सहदेव, और गाव के तीन-चार नौजवान गंडक बाध के काम पर लगा दिए गए। जग्गू की घर के बगल में स्कूल की इमारत बनाने का काम भी आरम्भ कर

दिया गया। सबकी गति तेज थी। सब काम अपनी जगह आसानी से होता जा रहा था। केवल जग्गू बेचैन रहता।

भानुप्रताप अपने साथ कुछ रुपये लाए थे, जो उन्होंने मुजफ्फरपुर जाकर सिनेमा देखने, शराब पीने और बेकार चीजों की खरीद-फरोख्त में खर्च कर दिए। ब्रह्मदेव से उसे मालूम होता रहता कि किस दिन भानुप्रताप ने शारदा को मारा-पीटा और किस दिन घर में कृत्रिम शान्ति रही। कई बार जग्गू के मन में हुआ कि वह भानुप्रताप को समझाए-बुझाए लेकिन मियां-बीवी के झगड़े में नहीं पड़ना चाहिए—ऐसा सोचकर वह चुप रह जाता।

जग्गू के निरीक्षण में ही स्कूल की इमारत बन रही थी। इसलिए वह सुबह ही अपना खाना बनाकर खा लेता, और काम में जुट जाता। उस दिन जग्गू खा-पीकर गुमटी बन्द कर रहा था कि भानुप्रताप आ धमके। भानुप्रताप कभी भी जग्गू से खुलकर बातें नहीं करते थे। जग्गू भी उनकी ओर अधिक उन्मुख नहीं होता था। भानुप्रताप कुछ देर तक इधर-उधर निरीक्षण की दृष्टि से देखते रहे, फिर बोले—

"मुझे आप कुछ रुपये दे सकेंगे?"

"कुछ जरूरी काम है क्या?"—जग्गू ने सहज स्वर में पूछा। भानुप्रताप को जग्गू का प्रश्न शायद अच्छा नहीं लगा, क्योंकि उन्होंने बहुत ही बेरुखी से कहा—

"हां, कुछ ऐसी ही जरूरत आ पड़ी है।"

"कितने रुपये चाहिए?"

"सौ रुपये से काम चल जाएगा।"—भानुप्रताप ने अनासक्त भाव से कह दिया। जग्गू को उनका ढंग बुरा लगा। उसने अपनी बेरुखी छिपाते हुए कहा—

"मेरे पास इतने रुपये कहां से आए? कर्ज लेना पड़ेगा।"

"ठीक है, ले लीजिए! मैं लौटकर वापस कर दूंगा।"

"क्या आप कहीं जा रहे हैं?"

"हां।"

"क्या मैं पूछ सकता हूं कि आप अब कहां जा रहे हैं?"

"नया बिजनेस शुरू करना है।"—भानुप्रताप ने संक्षिप्त-सा उत्तर दे दिया। जग्गू के मन में आशका जगी कि कही यह शारदा को छोड़कर भागना तो नही चाहता है ! जग्गू को मन ही मन क्रोध आ रहा था। फिर भी उसने शान्तिपूर्वक कहा—

"आपके पास पूजी तो है नही, फिर भी आप बिजनेस करने जा रहे हैं ? मेरी समझ में यह बात नही आती कि आप कोई नौकरी क्यों नही कर लेते।"

"मैं अच्छी तरह जानता हूं कि मुझे क्या करना चाहिए और क्या नही करना चाहिए !"—भानुप्रताप ने यह बात धीमी रफ्तार और धीमी आवाज में कही, लेकिन उनके स्वर मे दम्भ स्पष्ट था। जग्गू ने किंचित् उग्र आवाज में कहा—

"आप कुछ नही जानते ! आपको अपने भविष्य का पता नहीं था और एक अबोध लडकी को उसके घर से भगा लाए। आपके पास पूजी थी नहीं और पता नही किस उम्मीद के बूते पर इतने बड़े मकान की नीव आपने डलवा दी। मैंने कर्ज लेकर आपको पिछली बार रुपये दिए, मकान में सैकड़ों रुपये का कर्ज हो गया। लेकिन आप जो भी रुपया लाए उसे आपने शराब में उड़ा दिया।"

जग्गू की फटकार सुनकर भानुप्रताप का चेहरा फक् पड़ गया। उन्हें उम्मीद नही थी कि एक मामूली गुमटीवाला इतना कुछ बोल जाएगा। जग्गू का चेहरा और हाव-भाव देखकर भानुप्रताप के मन मे डर समा गया। उन्होंने अपने दोनो हाथ पैंट की जेब मे डाल लिए और गला साफ करते हुए यह बोलकर वहा से चल दिए—

"पहले ही कह देते कि आप मुझे रुपये नही देंगे !"

जग्गू क्रोध से ऐंठता हुआ उनका जाना देखता रहा। जग्गू सोचता रहा कि यह कितना बड़ा उल्लू आदमी है। जब से आया है—सिनेमा, शराब और शारदा को पीटने में लगा हुआ है। नौकरी करने का नाम सुनकर शान बघारने लगता है, लेकिन भीख मांगते हुए इसे शर्म नही आती है ! जग्गू की इच्छा हुई कि अभी जाकर उन लोगों को घर से निकाल बाहर करे। लेकिन उसके हृदय ने जग्गू को फटकारना शुरू किया—भानुप्रताप पर

विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ा था, उसे लाखों रुपये का घाटा लगा था; ऐसी हालत में तो लोग पागल हो जाते हैं। लेकिन भानुप्रताप शराब पीकर अपनी विपत्ति भूल जाना चाहता होगा। ऐसी हालत में लोग चिड़चिड़े स्वभाव के हो जाते हैं और भानुप्रताप कोई अपवाद नहीं है। फिर उसने तो शारदा को बहन बनाया है, उसे संरक्षण देने का वचन दिया है।

जग्गू बहुत देर तक तर्क-वितर्क में उलझा रहा। काफी दिन चढ़ आया था। जब उसने देखा कि स्कूल में काम शुरू हो गया है, तब वह घर की ओर लपका। रामपाल कपड़े पहन रहा था। जग्गू ने रामपाल से सौ रुपये लिए और घर के भीतर पहुंचा। उसे देखते ही, संयोगवश शारदा स्वयं बोल उठी—

"क्यों भैया! मुझे सौ रुपये दोगे?"—शारदा के स्वर में निश्छल स्नेह, लज्जा और चिढ़ाने का भाव समन्वित हो रहा था। खाट पर बैठे हुए भानुप्रताप कोई किताब पढ़ने के उपक्रम में तल्लीन थे। जग्गू ने सौ रुपये शारदा के हाथ पर रख दिए और बिना कुछ बोले घर के बाहर हो गया।

स्कूल का काम लगभग पूरा होने को था। खपरैल का मकान बनाना था लेकिन उसके लिए लकड़ी, सरकंडा और खपड़ा जुटाने में काफी दिक्कत पेश आ रही थी। बिसेसर सिंह मन ही मन इन सारी योजनाओं के विरुद्ध थे, इसलिए गांववालों से सामान उगाहना कठिन हो रहा था। खुल्लम-खुल्ला तो कोई भी विरोध नहीं करता, लेकिन बला टालने का भाव अधिकांश गांववालों के व्यवहार से प्रकट हो जाता।

जग्गू दिन-भर गांववालों के दरवाजे-दरवाजे सामान के लिए निहोरा करता फिरता, फिर इमारत के काम की भी देखभाल करता; और रात में बिस्तर पर जाते ही, थकान के नशे में चूर, एक नींद में ही भोर कर देता।

उस दिन बिचित्तर सिंह के यहां से सामान उगाहकर वह लौटा ही था कि ब्रह्मदेव ने उसे एक चिट्ठी लाकर दी।

"किसकी चिट्ठी है?"—जग्गू ने पूछा। उसके पास कभी कोई पत्र नहीं आया था। मगर इस लिफाफे पर उसीका नाम था। उसने आश्चर्य-चकित होकर एक बार ब्रह्मदेव की ओर देखा, और फिर वह पत्र खोलकर

पढ़ने लगा—

"प्रिय ··!

बहुत दिनों तक उधेड़-बुन में पड़ी रही, लेकिन आज पत्र लिखने की हिम्मत हुई। फिर भी यही नहीं समझ पा रही हू कि क्या लिखू? बहुत-सी बातें मन में घुमड़ती हैं, लेकिन उन्हें कागज पर उतारने का ढग मुझे नहीं मालूम। बचपन में मैं आपको 'तुम' कहकर पुकारती थी। आज वैसी ही इच्छा हो रही है। क्या 'तुम' कहूं? मेरा जीवन बदल गया, लेकिन यह नहीं मालूम कि अच्छा हुआ या बुरा; क्योंकि परिणाम तो अभी बाकी है। अब तो जल्दी ही वहां पहुचनेवाली हूं। पता नहीं, मिलने पर मेरी क्या दशा होगी!

स्नेह-भिक्षुणी—

अनुराधा"

जग्गू को लगा—जैसे एकसाथ, अचानक ही, पन्द्रह-बीस रेलगाड़ियां हड़बड़ाकर उसके कलेजे पर से गुजर गईं; जैसे भयंकर बाढ़ की लपेट में उसका कलेजा कगार की तरह कटकर छपाक् से लहरों में समा गया। इस अनुभूति में उसे आनन्द मिला या वेदना—यह बात भी वह नहीं जान सका। लेकिन उसका अग-प्रत्यग नवीन आभा के स्पर्श से पुलकित हो उठा; उसकी धमनियों में मधुर स्वर-लहरी प्रवाहित होने लगी जिसकी गूंज में वह क्षण-भर के लिए अपना अस्तित्व भूल बैठा।

"मालकिन ने आपको बुलाया है।"—ब्रह्मदेव की आवाज सुनकर उसे होश आया।

"चलो, मैं अभी आता हूं।"—जग्गू ने कृत्रिम गभीरता से कहा। उसके स्वर में स्फूर्ति साकार हो उठी थी।

रात हो गई। अधकार ने पश्चिम-पूरब को एकाकार कर दिया था। बछड़ों के रंभाने की आवाज, ठंडे मौसम को भेदती हुई, गाव के आर-पार हो जाती, गहरे नीले, स्वच्छ आकाश के तारे भी ठंड से काप रहे थे। सारा वातावरण सुख-दु ख की समन्वित अनुभूति उत्पन्न करता-सा लग रहा था। ब्रह्मस्थान पर इकट्ठे गाव के कीर्तनिया जोर-जोर से गा रहे थे—

राभा, श्रीफल कनक कदलि हरषाहीं। रामा हो रामा।
रामा, नेकु न संक सकुच मन माहीं। रामा हो रामा।
रामा, सुनु जानकी तोहि बिनु आजू। रामा हो रामा।
रामा, हरषे सकल पाइ जनु राजू। रामा हो रामा।

ढोलक और झाल में होड़ लगी हुई थी। जग्गू बहुत देर तक गुमटी के दरवाजे पर बैठा अंधकार में देखता रहा। इतने शोरगुल के बावजूद उसके हृदय में विराट शांति व्याप गई थी और कभी-कभी कोई हल्की कचोट, उर्मियों की तरह, उसके शान्त हृदय में सुगबुगा उठती; और तब वह अपनी पैनी दृष्टि अंधकार में चुभो देता।

१६

"माफ करना शारदा—कल शाम को आ नहीं सका। बात बिल्कुल ध्यान से उतर गई!"—जग्गू ने घर में घुसते ही शारदा की मान-भरी भंगिमा देखकर कहा।

"मैं कौन होती हूं, माफ करनेवाली!"—शारदा ने चिढ़कर उदास स्वर में कहा। जग्गू आजिजी से बोला—

"तुम तो व्यर्थ ही नाराज हो रही हो! असल में, आजकल काम इतना आ पड़ा है कि···।"

"मेरे जैसे गरीबों का खयाल भी नहीं रहता!"—शारदा ने व्यंग्य से वाक्य पूरा कर दिया। जग्गू कुछ क्षण चुप रहा। शारदा उसके लिए चाय बनाकर ले आई। अन्त में जग्गू ने आरजू-मिन्नत करके शारदा का क्रोध ठंडा कर दिया। दोनों देर तक इधर-उधर की बातें करते रहे। दोनों की रुचि एक-दूसरे के अनुरूप हो चली, बातचीत में प्रवाह आया और दोनों एक-दूसरे के स्नेहभाजन होकर भावावेश में अपने-अपने मन की बात कह निकले। शारदा ने कहा—

"मैं तो आपको अपने बड़े भाई के रूप में देखती हूं, और अन्त-अन्त तक इसी भाव से देखती रहूंगी।"

"मैं भी तुम्हें शुद्ध मन से स्नेह करता हू, शारदा।"

"झूठ बात।"

"सच कहता हू। मैं अक्खड़ आदमी हूं। तीन-पांच नही जानता; बल्कि तुम ही बीच-बीच में तुनुकमिजाज हो जाती हो; और तुम्हारे भानुप्रतापजी तो बिल्कुल अजीब आदमी है।"

"हा, उनका स्वभाव तो मैं भी नहीं समझ पाई हू। दिल खोलकर तो कभी बात करते ही नही। इधर उनका स्वभाव और भी अजीब हो गया है। लेकिन मैं क्या करूं? मेरी आखें तो उसी दिन फूट गई जिस दिन घर से बाहर आई!" शारदा के मुह से भानुप्रताप के सम्बन्ध में इस तरह की बातें सुनकर जग्गू विस्मय से भर गया। शारदा की बातों से उत्साहित होकर जग्गू ने पूछा—

"मैंने सुना है कि वह तुम्हें पीटता भी है। क्या यह सच है?"

"उनके मन में जो आता है, वही करते है—लेकिन आप उनसे कभी मत पूछिएगा, नही तो वे मुझे जिन्दा ही चबा जाएंगे।"

जग्गू का मस्तिष्क आक्रोश से भिन्ना उठा। साथ ही शारदा के लिए वह करुणा और दया से द्रवित हो उठा। एकाकिनी नारी के प्रति सहानुभूति का अतिरेक भावुकता की गगोत्री है। यहीं से प्रेम की धारा फूटती है—उद्दाम, अविराम और निर्मल! यही स्वाभाविक है, सहज नियम है। लेकिन स्वाभाविकता और सहजता पर विजय प्राप्त करने का उत्साह भी मनुष्य के लिए स्वाभाविक और सहज है। इसी बूते पर मनुष्य में मनुष्यता आती है, विकास और प्रगति होती है। अग्नि का धर्म है जलाना, लेकिन दीया रोशनी देता है—इसीलिए वह मधुर है, घर-घर में उसकी पैंठ है।

जग्गू शनैः-शनै. शारदा के निकट आता गया। शारदा रोती, तो वह अब निस्सकोच होकर अपने हाथ से उसके आंसू पोंछ देता। अनुराधा के प्रेम ने जग्गू को देवता से आदमी बना दिया था; और शारदा का प्रेम उसे देवत्व की ओर अग्रसर करता।

इसी बीच एक घटना और घट गई, जिसने जग्गू को शारदा के निकट ला दिया। जग्गू का दृष्टिकोण, उसकी प्रवृत्ति विकृत होते-होते रह गई। रामपाल ने ईमान सहित नौकरी शुरू की थी। देश की परतंत्रता के दिनों

में वह सरकारी अफसरों को घृणा की दृष्टि से देखता था; क्योंकि वे अफसर घूस लेते, अन्याय करते, कामचोर होते, साधारण जनता को उपेक्षित और हीन समझते, और अहंकार की निस्सारता में डूबे रहते। स्वतंत्रता का उदय हुआ। उसके प्रकाश में रामपाल ने देखा कि अपने विपन्न देश को समृद्ध और सुदृढ़ बनाना ही परम कर्तव्य है। इसी विचार से उसने नौकरी की। देसौरा के इलाके में उसकी नियुक्ति हुई। सामुदायिक योजना-कार्य आरम्भ होते ही गांव की बेकारी कम हो गई। इसी कारण अच्छे गृहस्थों और जमींदारों की जमीन में काम करने के लिए खेतिहर मजदूरों का अकाल-सा पड़ गया। बेगार के नाम पर तो खेतिहर मजदूर साफ टाल जाते। बिसेसर सिंह तो मन ही मन रामपाल की जान के ग्राहक बन बैठे थे। रामपाल अपनी राह की आपदाओं से अपरिचित नहीं था। फिर भी उसने हार नहीं मानी, और योजना-कार्य सम्पन्न करने में सतत प्रयत्नशील रहा।

लेकिन तीन ठगों ने मिलकर बेचारे ब्राह्मण के बछड़े को कुत्ता कहकर आखिर बछड़ा ले ही लिया। एक ही बात कई मुंह से सुनते-सुनते अन्त में जग्गू को भी विश्वास हो गया कि रामपाल और शारदा में अनुचित संबंध है। वही शारदा जो भानुप्रताप के विरुद्ध कोई बात नहीं सुन सकती थी, इधर स्वयं भानुप्रताप की शिकायत करने लगी थी। रामपाल जैसा बड़ा अफसर उसके जैसे गरीब के घर महीनों पड़ा रहे—यह भी कम आश्चर्य की बात नहीं थी। रामपाल ने शारदा को पढ़ाना भी शुरू कर दिया था। ये सब बातें देख-सुनकर जग्गू ने सोचा कि निश्चय ही रामपाल शारदा के प्रति आसक्त है।

अनुराधा के पटना से वापस आने में दस दिन शेष रह गये थे। जग्गू का मन सन्ताप से कराह रहा था। रामपाल और शारदा की ओर से उसने मुंह फेर लिया था। लेकिन उसे चैन नहीं था। इस घटना से वह इस कदर विक्षिप्त हो गया था कि कभी-कभी अनुराधा के प्रति भी वह शंका से भर उठता।

शाम हो चुकी थी। जग्गू बड़ी बेचैनी और बेसब्री से गुमटी के आगे टहल रहा था। ठंड काफी कम हो गई थी, फिर भी जग्गू रह-रहकर कांप

उठता। अनमनी दशा में उसे यह भी पता नहीं रहा कि कितना समय गुजर चुका। वह दस बजने की प्रतीक्षा में पहाड़ जैसा समय ढो रहा था।

डफ और झाल की गूंज पर होली का समूह-गान समुद्र पर उत्ताल तरंगों के तांडव-सा ध्वनित हो रहा था। चारों ओर घना अंधकार व्याप्त था जग्गू अपने मन के द्वन्द्व से आप ही घुटा जा रहा था। उसे लग रहा था कि वह पतनोन्मुख हो रहा है, वह कृतघ्नता करने पर आमादा है, उसके विचार विकृत हो गए हैं और उसका व्यवहार अमानुषिक। जार-सम्बन्ध हो या प्रेम-सम्बन्ध, उसे क्या मतलब? आस्था की धारा बहे या गरल की वह क्यों जीना-मरना चाहता है? क्या उसे ईर्ष्या की आग नहीं जला रही है?···

दस बज गए। जग्गू अनायास ही घर की ओर चल पड़ा। बिसेसर सिंह ने जग्गू से आज ही कहा था कि शारदा और रामपाल रोज रात को दस बजे घर के भीतर एकसाथ होते हैं। जग्गू को बिसेसर सिंह की बातों में प्रपंच मालूम हुआ, लेकिन शंका मनुष्यता का सबसे बड़ा शत्रु है। शंका के फूटते ही मनुष्य की आस्था कराह उठती है। जग्गू ने सोचा, समझा, फिर भी अपने पर नियंत्रण नहीं रख सका।

घर के बाहर ओसारे पर रामपाल के दो आदमी सो रहे थे। कोठरी में रामपाल की खाट खाली थी। जग्गू ने एक बार इधर-उधर देखा—बाहर चारो ओर अंधकार, गाव के कुत्ते भौंकते हुए, वातावरण में भयानक सन्नाटा। वह धड़धड़ाता हुआ घर के भीतर घुस गया। ओसारे पर कोई नही था। शारदा की कोठरी का द्वार खुला हुआ था। भीतर रोशनी हो रही थी। जग्गू चुपचाप कोठरी में जा पहुंचा, लेकिन वहा पहुंचकर वह ग्लानि और पश्चात्ताप से भर उठा। जीवन में पहली बार उसने किसीपर शका की थी, अकारण ही वह रोष, प्रतिहिंसा और विद्वेष का शिकार हुआ था। रामपाल के सामने जरा हटकर शारदा बैठी हुई मनोयोग से पढ़ रही थी और रामपाल उसे कुछ बता रहा था। जग्गू को अचानक आया हुआ देखकर रामपाल सहज रूप से किंचित् चौंक उठा। तीनों में से कोई कुछ नहीं बोला। सभी एक-दूसरे के मन की बात समझ गए, लेकिन रामपाल जग्गू का मुह ताकता रह गया। और इस ज्ञान से जग्गू और भी गड़ गया। किसी तरह अपने पैर घसीटता हुआ वह बाहर भागा। रामपाल और शारदा

को अब वह अपना कौन-सा मुंह दिखाएगा। जग्गू के मन की दशा अजीब हो गई। 'मुझे क्या हो गया था?'—यही प्रश्न बार-बार उसके मन को कचोटता रहा। उसने शारदा और रामपाल पर शंका की, लेकिन उसे उल्टे मुंह गिरना पड़ा।—रात-भर जग्गू अपने किए पर पछताता रहा।

मुंह-अंधेरे रामपाल गुमटी पर पहुंचा। जग्गू खाट पर बैठा था। रात-भर में ही उसका मुंह इतना-सा निकल आया था। रामपाल को देखते ही उसे लगा कि अब वह रो देगा। रामपाल क्षण-भर खड़ा रहा, फिर बोला—

"जग्गू भाई! गांव में चलनेवाली कानाफूसी से मैं अनभिज्ञ नहीं था, लेकिन आप भी विचलित हो जाएंगे—ऐसी आशा नहीं थी! मेरे लिए यही उचित है कि अब मैं स्कूल में जाकर रहूं। लेकिन मैं एक बात आपसे अवश्य कह देना चाहता हूं कि किसी तरह का मनमुटाव लेकर मैं आपके घर से नहीं जा रहा हूं। मुझपर और मेरी बातों पर विश्वास कीजिए। आपके भरोसे ही मैं इस गांव में रहना चाहता हूं।"

जग्गू का मुंह सूखकर रह गया। उसने रामपाल से क्षमा मांगनी चाही, लेकिन उसकी जबान तालू से चिपक गई। रामपाल ने आगे बढ़कर अपना बायां हाथ जग्गू के कंधे पर रख दिया और स्नेहपूर्वक कहा—

"नाराज हो क्या? बात यह है कि आदमी जब अपने-आपसे नाराज होता है, तब वह अधिक खतरनाक हो उठता है! इसलिए मेरा आपसे अनुरोध है कि कैसा भी गुस्सा हो, *किसीपर हो, उसे थूक दीजिए!* फिर सभी राहें घर की राह हो जाएंगी।"

जग्गू फिर भी चुप रहा। कुछ देर तक रामपाल मुस्कराता हुआ जग्गू को देखता रहा और फिर—"अच्छा, अब चलता हूं" कहकर चला गया।

काफी दिन चढ़ आया। तीसरा पहर भी बीत गया। लेकिन जग्गू गुमटी से बाहर नहीं निकला। कभी वहीं छोटी सी जगह में चहलकदमी करने लगता, कभी बैठ जाता, तो कभी खाट पर औंधे मुंह पड़ जाता। लग-भग नौ बजे रात को, मुनिदेव झूमता हुआ उसके पास पहुंचा। मुनिदेव के पहुंचते ही गुमटी के भीतर ताड़ी की भभक फैल गई। जग्गू अंधकार में ही खाट पर पड़ा था।

"जग्गू भाई ! जग्गू भाई ! !"—मुनिदेव ने थोड़ी लटपटाती जवान से पुकारा।

"आओ, बैठो !"—थकी आवाज से जग्गू ने कहा।

"अरे अंधकार में क्यों पड़े हो ?"

"दिल की धुंधली रोशनी से ऐसा अंधकार ही मेल खाता है मुनिदेव ! आओ, बैठो। मैं अभी हाथबत्ती जलाता हूं !"

जग्गू ने हाथबत्ती जलाकर रख दी। मद्धिम रोशनी से गुमटी का भीतरी भाग झिलमिला उठा। "बहुत ताड़ी पी ली है ?"—जग्गू ने उदास मुस्कराहट से पूछा।

"हां, जिन्दगी में और क्या रखा है मेरे लिए ?"—'हां' को बहुत लम्बा करता हुआ मुनिदेव आंखें बन्द करता हुआ बोला। जग्गू ने अपने पूर्ववत् स्वर में पूछा—

"मुझे भी पिलाओगे ?"

जरूर ! लेकिन आज नहीं, कल ! आज तो तुम्हारे यहां चोरी होनेवाली है।"

"मेरे यहां चोरी होनेवाली है ?"

"हां ! अभी साला मुनेसरा ताड़ीखाने में बैठा ताड़ी पी रहा है। उसीने बताया। साले ने बिसेसर सिंह की शिकायत करनी शुरू की। उसके पेट से बात निकालने के लिए, मैंने उसे खूब ताड़ी पिलाई—खूब पिलाई।"

"अब मेरे घर क्या रखा है, जो चोरी होगी ?" जग्गू स्वगत स्वर में बोला। मुनिदेव ने जरा नाटकीय ढंग से कहा—

"बहुत कुछ है दोस्त ! अभी तो तुम्हारे घर में बिसेसर सिंह के लिए शारदा ही खजाने के रूप में बैठी है। साला बड़ा ही पतित हो गया है। आज वह स्वयं ही आएगा।"

इतना सुनते ही जग्गू तमककर खड़ा हो गया। उसी नीच के बहकावे में आकर उसने रामपाल और शारदा के सम्बन्ध पर शक किया था। क्रोध से उसके दांत कटकटा उठे—

"तो वह अब नीच इस हद तक उतर आया है ? अच्छी बात है, आज मैं इस झगड़े की जड़ को ही काट फेंकूंगा ! भरे गांव के बीच जब वह अपना

काला मुंह लेकर खड़ा होगा तब उसे मालूम होगा कि जग्गू कौन है।"

मुनिदेव वहीं गुमटी में सो गया। भीतर से उसने दरवाजा लगा लिया। जग्गू ने रामपाल को सारी स्थिति बता दी और गोपाल को भी खबर कर दी। तीनों घर के तीन कोने में छुपकर बैठ गए। तय हुआ कि जब बिसेसर सिंह घर में प्रविष्ट हो जाए तब उसे ही पकड़ा जाए—शेष लोगों को पकड़ने की कोशिश भी नहीं की जाए। शारदा अपने कमरे में जगी बैठी रही।

आधी रात बीत गई। कोई नहीं आया। जग्गू के मन में फिर शंका उपजी कि हो न हो, मुनिदेव ताड़ी के नशे में बहककर झूठ-मूठ बोल गया हो। और इस तरह की बातें सोचता-सोचता वह निश्चिन्तता के प्रभाव में आ गया। रात बीतती गई। जग्गू को झपकी आने लगी। गोपाल और रामपाल अपनी-अपनी जगह पर सतर्क बैठे थे। जग्गू किंचित् आश्वस्त होकर, दीवार के सहारे ओठंगने ही लगा था कि हलकी-हलकी धमक सुनकर वह चौकन्ना हो उठा। जहां पर जग्गू बैठा हुआ था, वहीं की दीवार में सेंध लगाई जा रही थी। जग्गू ने बिसेसर सिंह को पकड़कर पीटने और पूरे गांव के सम्मुख उसके मुंह पर कालिख पोतने का निश्चय कर रखा था। जग्गू ने जब देखा कि सेंध फूटने ही वाली है तब वह शीघ्रता से अनाज रखने की कोठी की बगल में छिप गया। धमक की आवाज स्पष्ट होती गई, भीतरी दीवार की परत झड़ने लगी। जग्गू खूंखार चीते की तरह घात मे बैठा रहा।

सेंध फूट गई। एक आदमी का सिर सेंध से होकर भीतर आया और क्षण-भर बाद वह फिर वापस चला गया। कुछ देर तक सन्नाटा छाया रहा कि दो पैर सेंध के भीतर आए—फिर जांघें—फिर कमर, छाती और तब जग्गू ने देखा कि एक नंग-धड़ंग आदमी कमर में एक लंगोटी मात्र पहने हुए बड़ी सावधानी से आंगन के दक्षिण ओर पिछले दरवाजे की ओर बढ़ा। जग्गू सांस रोके उसे देखता रहा। उस आदमी ने आहिस्ता से पिछला दरवाजा खोल दिया। दरवाजा खुलते ही दो आदमी भीतर घुस आए। जग्गू को बिसेसर सिंह को पहचानते देर नहीं लगी। एक आदमी वहीं दरवाजे पर रुक गया। बिसेसर सिंह धीरे-धीरे शारदा की कोठरी की

ओर बढ़ा। अभी वह कोठरी के दरवाजे तक ही पहुंचा होगा कि गोपाल कूदकर उसके पास जा पहुंचा। बिसेसर सिंह शायद ऐसी स्थिति के लिए तैयार था। वह भी पैंतरा बदलकर, आंगन के दरवाजे की ओर लपका। गोपाल की जल्दीबाजी पर जग्गू को झल्लाहट हुई, लेकिन उस समय सोचने का अवसर नहीं था। वह बिसेसर सिंह के पीछे अपना भाला सम्भालता हुआ लपका। बिसेसर सिंह बहुत तेजी के साथ, दरवाजे से निकलकर, अरहर के खेत की ओर भागा। जग्गू में और उसमें मुश्किल से पच्चीस कदम की दूरी रह गई होगी कि अरहर का खेत आ गया। उस अंधेरी रात में, घने अरहर के खेत में पीछा करना मुश्किल होता इसलिए जग्गू ने तौलकर भाला चला दिया। निशाना ठीक बैठा। बिसेसर सिंह के चूतड़ पर भाला लगा और वह चीखकर लड़खडा उठा कि उसी समय जग्गू को लगा जैसे उसके सिर पर वज्र जैसा कोई शिलाखण्ड गिर पड़ा। उसकी आंखें बन्द हो गईं और चारों ओर अंधकार छा गया।

जग्गू को जब होश आया, तब सूर्योदय हो रहा था।

"बिसेसर सिंह को पुलिस पकड़कर थाने ले गई या अभी वह गांव में ही है ?"—जग्गू ने कराहते हुए क्षीण स्वर में पूछा। शारदा सिरहाने बैठी थी। वह चिन्तित स्वर में बोली—"वह तो भाग गया।"

"एँ !"—जग्गू चौंककर उठ बैठा। शारदा ने उसे पकड़कर खाट पर बिठा दिया।

"अभी आप चुपचाप लेटे रहिए !"—शारदा ने स्नेह के स्वर में कहा। जग्गू को शारदा का स्वर बड़ा मधुर लगा। उसके मन की ग्लानि धुल गई। उसने आंखें बन्द किए ही पूछा—"मुझसे नाराज हो ?"

"नहीं तो !"—शारदा ने निश्छल किन्तु करुणार्द्र स्वर में कहा। जग्गू को शारदा के व्यवहार और स्वर में, आकस्मिक परिवर्तन की गन्ध मालूम हुई। शारदा निश्छल थी—लेकिन क्रोधी भी; सरल-मधुर थी, लेकिन स्वाभिमानी भी; और उसका रूप क्षण मे सुन्दर लगता, तो क्षण में रौद्र। वह अपने प्रेम में बहुत ही उच्छृंखल, दकियानूस और एकांगी थी। लेकिन उसी दिन जग्गू ने महसूस किया कि शारदा में परिवर्तन आ गया है, वह बहुत दुःखी है। जग्गू ने अपनी आंखें खोल दी और शारदा को

देखा। शारदा भी उसे देख रही थी। शारदा के मुखमण्डल पर सौम्यता और स्निग्धता बिछल रही थी, लेकिन उसकी आंखों में विषाद का समुद्र सिमट आया था। जग्गू ने शारदा को ध्यान से देखा, लेकिन कुछ भी अनुमान नहीं लगा सका। उसने शारदा की ओर देखते हुए पूछा—

"दुखी हो?'

"नहीं तो!"—शारदा ने कृत्रिम मुस्कराहट से कहा।

"क्या बात है शारदा? मुझसे छिपाओ मत!"

शारदा चुप रही।

"बोलती क्यों नहीं? किसीने कुछ कहा है क्या?"

"किसीके कुछ कहने से, अब क्या होता है!"

"क्या भानुप्रताप का पत्र आया है?"

"पहले तुम अच्छे हो जाओ, फिर सब बातें जान लेना!"

"अरे, मैं बीमार थोड़े ही हूं! हल्की-सी चोट है, अपनी जगह है। तुम अपनी बात तो बताओ!" शारदा फिर चुप हो गई। जग्गू सारी बातें जानने की जिद् पर अड़ा रहा। अन्ततोगत्वा शारदा को बताना ही पड़ा—

"उन्होंने लिखा है कि मैं देसौरा गांव छोड़कर, कहीं दूसरी जगह जाकर रहूं—फिर वह आएंगे! वे तुम्हें पसन्द नहीं करते। और इधर मैं मा बनने वाली हूं। लेकिन, उनका कहना है कि इसे नष्ट कर दिया जाए।" अंतिम वाक्य कहते-कहते संकोच और आक्रोश से वह रोने लगी। जग्गू क्षण-भर सोच भी नहीं पाया कि उसे क्या कहना चाहिए। आदमी इतना नीचे गिर सकता है—इसका उसे अनुमान भी नहीं था। बहुत ही नियन्त्रित स्वर में वह बोला—

"भानुप्रताप पागल हो गए हैं! खैर, मुझे क्या?—जहां तुम्हारी इच्छा हो, वहां जाओ; जो तुम लोगों के मन भावे, वही करो!"

"जब तक मुझे तुम निकाल नहीं दोगे, मैं नहीं जाऊंगी!"

"मैं क्यों निकालने लगा? लेकिन यदि तुम यहां रहीं तो भानुप्रताप को तुम्हें सताने के लिए एक और कारण मिल जाएगा!"

"अब और कितना सताएंगे? उनकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है! भला मैं बिना पैसे-कौड़ी के कहां जाकर रहूं? मैं तो कहीं नहीं जाऊंगी!"

"लेकिन शारदा, मैं समझता हूं कि भानुप्रताप तुमसे अब पिण्ड छुड़ाना चाहते हैं।"

"तुम क्या चाहते हो?"

"मैं क्या चाहूंगा, शारदा? मैं चाहता हूं कि तुम लोग सुखी रहो। इतने दिनों में ही मुझे तुमसे मोह हो गया है। लेकिन सोचता हूं, यह अच्छा नहीं हुआ!"

"क्यों?"

"समय मेरे खिलाफ जा रहा है! अपने पराये हो रहे है, फिर पराये का मोह तो और भी अनुचित है!"

"यह क्यों नहीं कहते कि तुम भी मुझसे पिण्ड छुड़ाना चाहते हो! मुझ अभागिन के लिए तो ईश्वर के यहा भी जगह नहीं होगी!"

"नहीं शारदा, ऐसा कहकर मेरा दिल मत दुखाओ। मैं तो चाहता हूं कि···लेकिन जाने दो, मेरे चाहने या न चाहने से क्या होता है!"

कुछ देर तक दोनों चुप रहे। इसी बीच रामपाल आ पहुंचा। कुशल-क्षेम पूछने के पश्चात् रामपाल ने शारदा से चाय बनाने को कहा। शारदा चाय बनाने चली गई।

"बिसेसर सिंह तो बिलकुल ही लापता हो गया! सुना है कि वह अपने समधी के यहां चला गया है—क्योंकि उसके समधी महादेव बाबू बहुत बड़े नेता हैं।"—रामपाल ने किंचित् क्षुब्ध स्वर में कहा।

"अरे, वह किस्मत का बड़ा ही जबरदस्त आदमी है! तभी तो हाथ से निकल भागा!"—जग्गू के स्वर में मायूसी थी।

दोनों देर तक बातें करते रहे। गोपाल भी आ पहुंचा था। गांव के दो-तीन आदमियों ने बिसेसर सिंह को भागते देखा था। लेकिन गवाही देने के लिए कोई तैयार नहीं हुआ—ऐसा आतंक था बिसेसर सिंह का। अछता-पछताकर तीनों चुप हो गए।

जग्गू को स्वस्थ होते चार-पांच दिन लग गए। तब तक वह घर पर शारदा के संरक्षण में पड़ा रहा। शारदा ने उसकी परिचर्या में कोई कोर-कसर उठा नहीं रखी। जग्गू शारदा के निश्छल स्नेह से आप्लावित हो उठा। जिसने कभी किसीका सहवास नहीं पाया, जो कभी किसीके स्नेह-

सम्पर्क में नही आया, और जिसने कभी किसीका आभार नहीं जाना—उस जग्गू का तन-मन शारदा के अनुग्रह से भर उठा। और उधर उस रात बिसेसर सिंह जो गांव से गायब हुआ, तो लौटकर नहीं आया।

तीसरा पहर बीत रहा था। जग्गू खाट पर बैठा पास ही खंभे के सहारे खड़ी शारदा से बातें कर रहा था कि भानुप्रताप आ धमका। जग्गू ने उठकर नमस्ते की। शारदा संकोच में खड़ी रही। भानुप्रताप के होंठों पर अर्थपूर्ण मुस्कराहट दौड़ गई। जग्गू के अभिवादन का उत्तर दिए बिना ही वह कुली के सिर पर से सामान उतरवाकर कोठरी के भीतर चला गया। भानुप्रताप के हाव-भाव से जग्गू को ऐसा लगा, जैसे उसने जग्गू को देखा ही नहीं। जग्गू को अपनी उपेक्षा पर हंसी आ गई। जिस आदमी को उसने अपने घर में शरण दी, जिसके चलते वह बदनाम और जाति-बहिष्कृत हुआ, आर्थिक सकट में आ पड़ा, उसी आदमी के मन में निरर्थक अहंकार देखकर जग्गू आश्चर्य और तरस के अतिरेक से मुस्कराता रहा। शारदा कुछ देर सिर झुकाए, लाज और ग्लानि में खड़ी रही कि भानुप्रताप ने उसे भीतर से पुकारा। जग्गू अकेला रह गया। बिल्कुल अकेला!!

१७

गाव में काफी सरगर्मी थी। बिसेसर सिंह ने गाव में आते ही सूचना दी कि राज्य के महान नेता और मन्त्री महादेव बाबू देसौरा स्कूल का उद्‌घाटन करने के लिए सहमत हो गए है। बिजली की रफ्तार से यह बात आसपास के इलाके में फैल गई। सब लोग मंत्री महोदय के स्वागत के लिए तैयारी में लग गए। चन्दा उगाहा जाने लगा। बिसेसर सिंह ने बड़े उत्साह से पांच सौ रुपया अपने नाम लिखा दिया। अभिनन्दन-पत्र छपवाने का भार मुनेश्वर पर डाल दिया गया। सब लोग भूल गए कि जग्गू के घर चोरी हुई थी, और बिसेसर सिंह उसी रात को गायब हो गए थे।

लेकिन जग्गू और रामपाल अवाक् थे। बिसेसर सिंह ने अपने-आप मंत्री महोदय को आमंत्रित कर दिया, यद्यपि उन्होंने स्कूल के लिए एक

तिनका भी उठाकर इधर से उधर नहीं रखा था। लेकिन अब क्या किया जा सकता था। सब लोग तैयारी में जुट गए। जग्गू बिलकुल तटस्थ हो गया। रामपाल तो सरकारी नौकर था। उसे हर काम में योग देना ही पड़ा।

अनुराधा पटना से वापस आ गई। उसने गांव की शूद्र औरतों को पढ़ाना-लिखाना भी शुरू कर दिया था। एक नई लहर, एक नई हलचल गांव में उठ खड़ी हुई थी। लग रहा था कि जैसे अचानक ही भूचाल के झटके से गांववाले जाग उठे हों। सभी चेतन हो रहे थे, सभी वाचाल और कर्मठ बने हुए थे। केवल जग्गू खामोश था। वह फिर से गुमटी पर आकर रहने लगा था। अनुराधा आई, लेकिन वह मिलने नहीं गया। अनुराधा ने अपना काम-काज भी शुरू कर दिया। लेकिन जग्गू से उसकी भेंट नहीं हुई। जग्गू ने घर जाना भी बन्द कर दिया; क्योंकि जिस दिन भानुप्रताप आया, उसी रात को उसने शारदा को पीटना शुरू कर दिया। जग्गू ने रोका तो भानुप्रताप घृणा और दम्भ के स्वर में बोला—

"मैं अपनी पत्नी को जो चाहूंगा करूंगा, आप बीच मे कूदनेवाले कौन होते है? यह औरत मक्कार और पतिता है! ऐसी औरतो का इलाज करना मैं अच्छी तरह जानता हूं!"

जग्गू क्रोध से ऐंठता हुआ उसी समय गुमटी पर चला आया। और तब से वितृष्णा के मारे वह गुमटी में ही पड़ा-पड़ा घुटता रहा। रामपाल आया, मुनिदेव ने पूछताछ की, लेकिन जग्गू सूखी मुस्कराहट के साथ सबको टाल गया।

ठंड भोथी हो चुकी थी। दिन में कार्य-रत रहने पर पसीना आ जाता और रात में, खुली देह रहने पर, बहुत ही हल्की सिहरन महसूस होती। जग्गू गुमटी के चौकठ पर बैठा सामने अंधेरे की गहराई में अपलक दृष्टि से देख रहा था। उसके मन में कोई विशेष बात नहीं थी, फिर भी वह कहीं खोया हुआ था कि अचानक ही पदचाप की ध्वनि से वह चौंक उठा। सिर घुमाकर देखा—अनुराधा खड़ी थी।

"तुम?"

अनुराधा चुप रही। पता नही क्या सोचकर जग्गू जल्दी से उठ खड़ा

हुआ और बोला—

"भीतर चली जाओ।"

जग्गू के साथ-साथ अनुराधा भी गुमटी के भीतर चली आई। जग्गू ने दरवाजे ओठगा दिये, और हथबत्ती उकसाकर, अनुराधा के चेहरे को ध्यान से देखा। अनुराधा ने लजाकर अपनी आखें झुका लीं।

"तुम तो बिल्कुल नही बदली !"

"लेकिन आप तो बदल गये !"

"मैं बदल गया ?"

"हां, मैं आई, यहा रहते भी इतने दिन बीत गये, लेकिन आप नही आये।"

"मैं बडा अभागा हू, अनुराधा ! जहां जाता हूं, वहीं ग्रहण लग जाता है। इसीलिए, अपनी मनहूसी लिए यहा पड़ा रहता हूं।"—जग्गू की बात अनुराधा को पूस महीने मे बर्फ के पानी के स्पर्श की तरह लगी। उसने सिहरकर जग्गू की ओर देखा। जग्गू धुधली रोशनी में खंडहर हुए मन्दिर की मूर्ति जैसा स्थिर बैठा था। अनुराधा उसके पास सरक आई। दोनों शान्त रहे। अनुराधा अपलक दृष्टि से जग्गू को देखती रही। दूर पर बछड़े के रंभाने की आवाज गूज उठी। अनुराधा का कलेजा मुह को आ रहा था। वह बहुत संयम से बोली—

"क्या आप मुझसे भी अधिक मनहूस हैं ? तनिक मेरी ओर देखिए ! मैंने क्या-क्या नहीं सहा, क्या-क्या नही देखा ! फिर भी, आपकी बदौलत आज मैं अपने दुर्भाग्य की बात भूल गई। लेकिर अब मैं सोचती हूं कि जो कुछ हुआ, बुरा हुआ ! असल में, जब से आपने मेरी खोज-खबर लेनी शुरू की तब से आपका सुख-सन्तोष जाता रहा।"

"नही अनुराधा, ऐसा नही है। ऐसी बात तुम्हें बोलनी भी नही चाहिए, सुनकर दु.ख होता है। तुम नही जानती कि तुम्हारे जाने के बाद यहां क्या कुछ हुआ ! पश्चात्ताप, ग्लानि और प्रतिशोध की भट्टी में सुलग-सुलगकर मैं समाप्त हो गया। लेकिन यह सब कुछ क्यो हुआ ? कैसे हुआ ? यही नही समझ पा रहा हूं। सोचता हूं, मेरी पहली राह ही सही थी ! आज मैं भटक गया हूं, और अब मेरे भाग्य में भटकते रहना ही लिखा है।"

"नहीं-नहीं, आपको ऐसी बात बोलने-सोचने का अब कोई अधिकार नहीं है! इतने बड़े संसार में मुझे अकेली छोड़कर अब आप अपनी जान बचाना चाहते हैं? लेकिन याद रखिए, जिधर आप भटकिएगा, उधर ही मेरी राह होगी!"

"क्या कहती हो, अनुराधा?"

"मैं ठीक कह रही हूं! मैं विधवा हूं, फिर भी आपने मुझे संसार में धकेल दिया और आप समर्थ होते हुए भी संसार से भाग रहे हैं! मैंने आज तक अन्याय ही सहा है और आगे भी सहूंगी। लेकिन आपका अन्याय कभी बर्दाश्त नहीं करूंगी, क्योंकि आपने ही मुझे जीने पर मजबूर किया है!"

जग्गू आत्म-विस्मृत होकर अनुराधा को देख रहा था। उसकी आंखों से कौतूहल और उत्साह की आभा छिटक रही थी। उसके होंठों पर उल्लास की हल्की रेखा गहरी हो रही थी, और अनुराधा निर्विकार भाव से जग्गू को देख रही थी। दोनों एक-दूसरे में कुछ ढूढ़ रहे थे; दोनों को एक-दूसरे में कुछ विचित्रता, नवीनता का आभास मिल रहा था; दोनों एक-दूसरे के मन में उठनेवाली लहरों का कलकल निनाद सुन रहे थे; दोनों एक-दूसरे की ललक बन रहे थे; और दोनों ही संस्कार के केंचुल में परिश्लिष्ट, ऊपरी शिथिलता के घेरे में उद्दाम हो रहे थे। विचित्र स्थिति थी। अजीब संयोग था कि एकाकी जग्गू के जीवन की हर नई बात उसी पुरानी गुमटी से शुरू होती थी, और उस दिन भी जग्गू का अखंड एकाकीपन उसी गुमटी मे शत-सहस्र खंडों में विकीर्ण होता जा रहा था···

"हम दोनों अकेले रहने के लिए ही पैदा हुए हैं अनुराधा!"—जग्गू खाट से उठकर अनुराधा के पास आता हुआ किंचित् कांपती आवाज मे बोला। अनुराधा ने कोई जवाब नहीं दिया। जग्गू क्षण-भर अनुराधा को देखता रहा, फिर बोला—

"अब तुम जाओ। फिर कभी मत आना! हमारा अकेले रहना भी समाज को खलता है, और कहीं किसीने साथ देख लिया तो एक तूफान उठ खड़ा होगा। जैसे हम लोग रहते आए हैं, वैसे ही रहते चलें।"

"लेकिन, मैं तो रोज आऊंगी! आप मुझे धक्के देकर निकाल

दीजिएगा, मैं तो फिर भी आऊंगी !"

"इसमें तुम्हारा ही नुकसान होगा, पगली ! मेरा क्या ? मैं तो जाति-समाज से बहिष्कृत-उपेक्षित आदमी हूं !"

"और मैं तो धूल बन चुकी हूं ! मेरा अब क्या बिगड़ेगा—धूल का कुछ और बनने-बिगड़ने से तो रहा !"—अनुराधा के स्वर में हंसी स्पष्ट थी। जग्गू ने सदा अनुराधा का भला चाहा था। अपने सुख के चलते उसने किसीको दुख नहीं पहुंचाया। फिर अनुराधा को तो वह प्यार करता था। वह जानता था कि अनुराधा अप्राप्य है। वह यह भी जानता था कि अनुराधा के प्रति उसका प्रेम अनुराधा के लिए नहीं है, मात्र प्रेम के लिए है। जग्गू ने जो कुछ जाना था, समझा था, पढ़ा था और भोगा था, उसके आधार पर उसके मन में एक बात बैठ गई थी कि त्याग और आत्मदमन से बढ़कर मनुष्य में कोई गुण नहीं आ सकता। वह बचपन से अनुराधा को प्यार करता आया था, लेकिन बोला कभी नहीं, क्योंकि उसका बोलना अनुराधा के लिए काल हो जाता। और अनुराधा का दुःख, अनुराधा का अपमान या उसकी बदनामी वह सह नहीं सकता था। फिर अब तो स्थिति और भी प्रतिकूल थी। विधवा की राह यों भी अंगुलियों, भवों और नथुनों के प्रकोप के बीच से गुजरती है; और कहीं यदि कोई बात हो गई तब तो भगवान ही मालिक है !

जग्गू को अपने लिए कोई भय नहीं था। विरोध तो दूर, यदि प्रलय भी आ जाए फिर भी वह सामना करने की हिम्मत रखता था। लेकिन वह कोई ऐसा काम करने की कल्पना भी नहीं कर सकता था, जिससे अनुराधा को दु.ख या परेशानी होने की आशका हो। इसलिए उसने कठोर स्वर में कहा—

"यह सब व्यर्थ की बातें मैं कुछ नहीं समझता ! अभी तुम यहां से जाओ !"

अनुराधा ने आश्चर्य से जग्गू के इस आकस्मिक परिवर्तन को देखा, लेकिन वह कुछ समझ नहीं पाई। जग्गू ने फिर जरा जोर से कहा—

"जाओ !"

अनुराधा सहमकर दो कदम पीछे हट गई और फिर मुड़कर धीरे-धीरे

गुमटी के बाहर हो गई। जग्गू की इच्छा हुई कि वह अपना सिर दीवार से टकराकर फोड़ ले। उसे पुक्की फाड़कर रोने की इच्छा हुई। उसकी आंखों में आसू आ गये। वेदना की तीव्रता से वह ऐंठकर रह गया, लेकिन खुलकर रो नही सका। गुमटी के द्वार खुले छोड़कर अनुराधा चली गई थी। जग्गू द्वार तक आया। अनुराधा कुछ देर तक दिखाई देती रही, लेकिन दूरी अंधकार और समय ने जग्गू का वह कष्टप्रद सुख भी छीन लिया। जग्गू शून्य दृष्टि से देखता रहा—सामने का अंधकार, दूर गाव में किसीके दालान में जलती हुई लालटेन की चिथड़ी रोशनी—घूरती हुई-सी, फीकी, पीली, बीभत्स ! !

१८

महादेव बाबू आये। मंत्री महोदय के आगमन से गाव में जिन्दगी की लहर दौड़ गई। बिसेसर सिंह की धूमिल प्रतिष्ठा फिर से चमक उठी। महादेव बाबू ने गांव के लोगों को बताया कि देश-विदेश में क्या कुछ हो रहा है। स्कूल के निर्माण में सहयोग देने पर उन्होंने गांववालों की सराहना की, विशेषकर बिसेसर सिंह की उन्होंने मुक्त कठ से प्रशसा की। उनके भाषण में जग्गू और रामपाल का जिक्र तक नही आया। गोपाल ने मंत्री महोदय के सामने अभिनन्दन-पत्र पढ़कर सुनाया। बांध के काम में बिसेसर सिंह का लड़का सहदेव और गोपाल दोनों मिलकर काम करते थे। परिस्थिति कमजोर आदमी को अस्थिर बना देती है। साथ-साथ काम करने का सिलसिला और रुपये की चमक ने गोपाल के चरित्र को निर्बल कर दिया। इसलिए मंत्री महोदय के स्वागत की तैयारी में सबके साथ-साथ गोपाल ने भी जग्गू की उपेक्षा की।

गाव में जिस समय चारों ओर धूम-धाम मची हुई थी, जग्गू अपनी गुमटी के बाहर अकेला बैठा हुआ अपने भाग्य पर मुस्करा रहा था। शाम हो चुकी थी। सामने स्कूल पर पेट्रोमैक्स जल रहा था। शोरगुल की आवाज गुमटी से टकरा रही थी। उद्घाटन और भाषणों का क्रम समाप्त

हो चुका था। मंत्री महोदय और उनके स्वागत-सत्कार में आए हुए इलाके के अन्य नेताओं को चाय पिलाई जा रही थी। आश्चर्य की बात तो यह थी, कि बिसेसर सिंह ने भानुप्रताप पर ही चाय-पानी की व्यवस्था का भार सौंप दिया था। लेकिन जग्गू जैसे यह सब बिल्कुल नहीं देख रहा था। पता नहीं वह किस विचार में डूबा हुआ था, कि अनुराधा के वहां आकर खड़ी होने की उसे आहट तक नहीं मिली।

"किस चिंता में डूबे हुए हैं?"—अनुराधा ने धीमे स्वर में पूछा। जग्गू ने अनुराधा की ओर ऐसे देखा, जैसे वह उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। लेकिन वह बोला कुछ नहीं। क्षण-भर वह फिर सिर झुकाए बैठा रहा, और तब आहिस्ता से उठकर गुमटी की ओर जाता हुआ, गम्भीर स्वर में बोला—

"तुम फिर आ गईं! यह नहीं सोचा कि तुम्हारे बार-बार यहां आने से लोग क्या सोचेंगे।"

"लोग यही सोचेंगे कि किसी निरक्षर को पढ़ाने आई होगी!"—अनुराधा ने मजाक के स्वर में कहा।

"तुम्हें हंसी सूझ रही है, लेकिन मुझे ऐसी बातें अच्छी नहीं लगतीं!" —गुमटी के भीतर पहुंचकर, जग्गू खाट पर उदास मन से बैठता हुआ बोला।

अनुराधा ने पूर्ववत् स्वर में कहा—

"आपको कुछ भी अच्छा नहीं लगता, तो मैं क्या करूं? लेकिन मुझे तो आजकल सब कुछ अच्छा लगता है!"

"तुम तो बिल्कुल पागल हो गई हो! पटना से लौटने के बाद तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है। गांव को शहर समझने लगी हो! याद रखो कि गांव में हड्डियां सूंघनेवाले आदमी बसते हैं! अगर तुम्हारा यही हाल रहा तो एक दिन ये लोग तुम्हें नोच-नोचकर खा जाएंगे।"

"वह दिन मेरे जीवन का सबसे शुभ दिन होगा!"

"सोचना और बोलना बहुत आसान है, अनुराधा—लेकिन जब वह मुसीबत सिर पर आएगी, तब तुम मेरी बातों को याद करोगी! मैं तुम्हें अपनी समझकर नेक सलाह देता हूं। तुम मेरे पास मत आया करो! मुझे

बहुत दु:ख होता है।"

"मैं आपके पास नहीं आऊंगी, तो फिर नेक सलाह कैसे पाऊंगी ?"

अनुराधा की बात सुनकर, जग्गू क्रोध से भभक उठा—

"मैं तुमसे बात करना भी पसन्द नहीं करता !" यह कहकर खाट से उठकर वह गुमटी के चक्कर काटने लगा। अनुराधा किंचित् विषाद के स्वर में बोली—"आपको मुझसे इतनी नफरत हो गई है ?"

"हां !" जग्गू ने तमककर कहा और फिर चक्कर काटने लगा। अनुराधा चुप रही। जग्गू अचानक ही बौखला उठा—

"सुना था कि औरतों के दिमाग नहीं होता और आज उसका प्रमाण भी मिल गया !"

"औरतों के पास दिमाग होता तो आज मर्द जिन्दा भी नहीं बचते ! औरतें भी लाभ-हानि की बातें सोचती, हर चीज को ठोक-बजाकर ग्रहण करतीं तो मर्द अपनी कायरता को अहंकार के पर्दे में नहीं छिपा पाते। आपको मुझसे इतना डर लगता है यह मैं नहीं जानती थी !" इतना कहकर वह तेजी से गुमटी के बाहर चली गई। जग्गू किंकर्तव्यविमूढ़-सा देखता रह गया। उसकी जुबान तालू से चिपक गई। उसने अनुराधा को पुकारा, लेकिन उसके मुंह से कोई आवाज नहीं निकली। उसने हाथ बढाकर रोकने का उपक्रम किया लेकिन वहां अंधकार की शून्यता के सिवा और कुछ नहीं था। वह अनायास ही गुमटी के बाहर दौड़ आया और वहां का दृश्य देखकर उसे काठ मार गया। सामने रूपन सिंह अनुराधा की कलाई पकड़े खड़ा था और अनुराधा अपनी कलाई छुड़ाने के प्रयास में छटपटा रही थी। रूपन सिंह गाववालों के नाम ले-लेकर पुकारता जाता था और अनुराधा को भद्दी-भद्दी गालियां देता जाता था। स्कूल पर अभी भी पेट्रोमैक्स जल रहा था। लोगों की भीड़ अभी एकत्र ही थी। क्षण-भर जग्गू कुछ भी निर्णय नहीं कर सका कि उसे क्या करना चाहिए कि रूपन सिंह की कड़वी बात ने जग्गू को राह दिखा दी। रूपन सिंह ने अनुराधा की भर्त्सना करते हुए कहा—

"अपने भरतार से मिलने आई थीं ?"

जग्गू ने दृढ़ता से आगे बढ़कर अनुराधा को छुड़ा लिया। जग्गू के कठोर पंजों मे रूपन सिंह की कलाई कड़कड़ा उठी, और वह चीख-चीखकर गांववालो को पुकारने लगा। अनुराधा बेहोश-सी हो गई थी। जग्गू उसे सहारा देकर गुमटी की ओर ले चला कि तभी गांव के बहुत-से लोग वहां इकट्ठे हो गए। ऐसे मौकों पर गांववाले अपना विवेक खो देते हैं—ऐसा सोचकर, जग्गू ने अनुराधा को गुमटी के भीतर कर दिया और बाहर से दरवाजा लगाकर वहीं जयद्रथ की तरह खड़ा हो गया। पल-भर में एक तूफान उठ खड़ा हुआ। लोग तरह-तरह की बातें बोलने लगे, गन्दी से गन्दी गालियों से अंधकार का कलेजा फटने लगा, लेकिन जग्गू चुपचाप दरवाजे के बाहर खड़ा रहा। तभी—"क्या बात है ? आप लोग क्यों शोर मचा रहे हैं ?"—प्रश्न पूछते हुए बिसेसर सिंह आ धमके। जब लोगों ने उन्हें सब कुछ बता दिया तब वह जग्गू की ओर आते हुए बोले—

"क्यों जग्गू भाई, क्या बात हुई ? अनुराधा कहां है ?"

"इन लोगों ने आपको सारी बातें तो बता ही दी हैं ! फिर और क्या जानना चाहते हैं ?"

"अजीब आदमी हो ! अरे तुम भी तो बताओ कि ये लोग जो कुछ कह रहे हैं, वह सही है या गलत ?"

"बिल्कुल सही है !"—जग्गू ने संक्षिप्त-सा उत्तर दे दिया। लोगों का शोरगुल दब गया; उत्तेजना की जगह व्यंग्य और वीभत्स मजाक के साथ हंसी फूटने लगी। बिसेसर सिंह थोड़ी देर के लिए जग्गू के सहज उत्तर पर चौंक उठे। लेकिन फिर सम्भल गए और बोले—

"लेकिन यह तो तुमने अच्छा काम नहीं किया !"

"मैंने क्या किया है, यह मैं जानता हूं ! आप लोगों को इससे कोई मतलब नहीं है !"

"मतलब कैसे नहीं है ? गांव मे रहकर गाव की मान-मर्यादा भंग कीजिएगा, सो कैसे होगा ?"—गोपाल, जो अब तक चुप था, आगे बढ़कर बोल उठा।

जग्गू को क्रोध नहीं आया। वह चुपचाप खड़ा रहा। गोपाल के चुप होते ही रूपन सिंह ने गरजकर कहा—

"निकालो उस सतभतरी को गुमटी के बाहर, नहीं तो आज खून हो जाएगा यहां ! साले ने गांव को कटरा बना रखा है। पाजी !"

"अरे ढोंगी है ढोंगी ! दुनिया को दिखलाने के लिए साधु बनने का स्वाग रचता है, और भीतर-भीतर गांव की बहू-बेटियों पर डोरे डालता फिरता है !"—मुनेश्वर ने व्यंग्य और घृणायुक्त स्वर में कहा। तभी कुलदीप ने ललकारा—

"अरे मुह क्या देखते हो ? मारो साले को चार डंडे, सारा ढोंग हवा हो जाएगा ! लातों के देवता, बातो से नही मानते !"

कुलदीप की ललकार सुनते ही बहुत-से लोग उत्तेजित हो उठे। चारों ओर से 'मारो ! मारो !' की आवाजें आनी लगीं। किसीने लाइन की बगल से रोड़े उठाकर जग्गू पर चला भी दिए। जग्गू धीरज खो बैठा और आवेश मे आकर लपककर गुमटी के भीतर से अपनी लाठी उठा लाया और उसे हवा में नचाता हुआ, आक्रोशपूर्ण स्वर में गरजकर बोला—

"मुझे क्या तुम लोगों ने औरत समझ रखा है ? खबरदार जो किसीने गाली बकी या रोडे फेंके ! मैं सिर तोड़ दूंगा। अरे पापियो ! खुद तो दिन-रात चोरी, डाकेजनी और हत्या करते फिरते हो, और मुझपर उंगली उठाते हो ? मैं एक-एक की पोल खोलकर रख दूगा ! जो बड़ा धर्मात्मा और बहादुर बनता हो, वह मेरे सामने आए !"

जग्गू की गर्जना सुनकर लोग जरा सहम गए। गोपाल को ताव आ गया—

"वाह ! उल्टा चोर कोतवाल को डाटे !"

"तू अपनी बकवास बन्द कर गोपाल ! नाजायज ढग से चार पैसे क्या *कमाने लगा, दिमाग ही खराब हो गया !"*

"कौन कहता है कि मैंने नाजायज ढग से पैसे कमाए हैं ?"—गोपाल ने चुनौती के स्वर में पूछा। तभी पीछे से आवाज आई—

"मैं कहता हूं।"—रामपाल अचानक ही वहां पहुंचकर बोला। लोग सकपकाकर उसकी ओर देखते रहे। रामपाल ने आगे बढ़कर गोपाल से कहा—"बांध के लिए मिट्टी काटने मे आप लोगों ने जो जालसाजी की है, सब मुझे अच्छी तरह मालूम हो गई है ! चिंता न कीजिए, आप लोगों की

भी जल्दी ही मालूम हो जाएगा !"

सब लोग इस आकस्मिक घोषणा से स्तम्भित रह गए। गोपाल की जीभ तालू से सट गई। खैरियत हुई कि अंधकार में उसके चेहरे पर छाई हुई भयावह मुर्दनी को कोई नहीं देख सका। तभी मुनिदेव वहां आ पहुंचा। भीड़-भाड़ का कारण वह नहीं जान सका, लेकिन जग्गू को गुमटी के दरवाजे पर लट्ठ लिए खड़ा हुआ देखकर वह झगड़े की स्थिति समझ गया। वह इधर-उधर देखकर पूछने लगा—

"क्या बात है ? आप लोगों ने भीड़ क्यों लगा रखी है ?"

मुनिदेव के आने से लोगों की जबान खुल गई। बिसेसर सिंह ने नीति-पूर्वक कहा—

"अरे कोई बात नहीं है ! अनुराधा जरा जग्गू भाई से मिलने चली आई थी, उसीपर गांव के लोग नाराज हो गए हैं, क्योंकि बात जरा मर्यादा के विरुद्ध हो गई है !"

"कहां है अनुराधा ?"—मुनिदेव ने पूछा।

"यहीं गुमटी में बैठी है !"—बिसेसर सिंह ने कहा।

मुनिदेव क्षण-भर कुछ निर्णय नहीं कर सका कि जग्गू बोल उठा—'इन लोगों ने उस बेचारी को भद्दी-भद्दी गालियां दीं, उसकी बांह पकड़कर उसे घसीटा, सो कोई बात नहीं हुई; लेकिन मैंने उसे इन लोगों के अत्याचार से बचाकर बहुत बुरा किया !"

"किसने उसे बांह पकड़कर घसीटा ?"बिसेसर सिंह ने पूछा।

"रूपन सिंह ने !"—जग्गू ने उपेक्षा के स्वर में कहा।

"तो तुम्हारे विचार में, मैं उसकी आरती उतारता ?"—रूपन सिंह ने आवेश के स्वर में व्यंग्य किया।

"आपको चाहिए था कि उसकी पूजा करते, उसपर फूल-अक्षत चढ़ाते, फिर उसके चरणों की धूल मस्तक से लगाते !"—मुनेश्वर ने व्यंग्य किया। कुछ लोग मुनेश्वर की बात पर हंसने लगे। बिसेसर सिंह ने डपटकर कहा—

"क्या बेवकूफों की तरह आप लोग हंस रहे है ?"

"आप लोगों का इरादा क्या है ?"—मुनिदेव ने गम्भीर स्वर में

पूछा।

कई आवाजें एकसाथ सुनाई दीं—"अनुराधा को हमारे हवाले करो!" "उस भ्रष्टा को बाहर निकालो!"—"उस डायन का झोंटा काटकर, उसे गांव के बाहर निकाल दो!"

"इससे अच्छा तो यह होगा कि आप लोग यहां से अपना मुंह काला कर लें।"—जग्गू ने दृढ़ स्वर में कहा। शोरगुल फिर बढ़ने लगा। रामपाल को एक उपाय सूझ गया। उसने ऊंची आवाज में कहा—

"सुनिए! अनुराधा कोई नाबालिग नहीं है। वह कुछ सोच-विचार-कर ही यहां आई होगी। इसलिए आप लोगों का इस तरह जोर-जबरदस्ती करना नाजायज है! इस तरह अगर आप लोग पागलपन कीजिएगा, तो बाद में कानून के जाल में फंस जाइएगा। अभी आप लोग जाइए। कल सुबह होने पर, जो कुछ करना हो, कर लीजिएगा!" रामपाल की इस बात पर लोग और बौखला उठे और अनुराधा को बाहर निकाल लाने पर तुल गए। जग्गू अपनी जगह स्थिर खड़ा था। बात बिगड़ती जा रही थी। रामपाल ने चिढ़कर कहा—

"आप सब लोग जेल जाने पर उतारू हैं! आपको मालूम होना चाहिए कि हर आदमी को स्वतन्त्रता है कि वह जब चाहे, जिससे चाहे मिले। आप लोगों को अनुराधा के आने-जाने पर प्रतिबन्ध लगाने का कोई अधिकार नहीं है!"

"जाइए-जाइए! बड़े आए कानून छांटनेवाले।"—रूपन सिंह ने मुंह बिचकाकर आक्रोश के स्वर में कहा। मुनिदेव ने बिसेसर सिंह के कान में कुछ कहा, जिसपर सिर हिलाकर सहमति प्रकट करता हुआ बिसेसर सिंह जोर से बोला—

"अच्छा, अब मैं एक उपाय करता हूं। आप सब लोग जाइए! गोपाल, मुनेश्वर, कुलदीप, मुनिदेव, रामपाल साहब और मुझपर अनुराधा को यहां से ले जाने का जिम्मा छोड़ जाइए! कल दिन में हम गांववाले बैठकर इस बात का फैसला कर लेंगे कि अनुराधा और जग्गू को इस जुर्म की क्या सजा मिलनी चाहिए!" बिसेसर सिंह की बात लोगों को पसन्द आ गई। जग्गू कुछ बोलना ही चाहता था कि मुनिदेव ने उसका हाथ दबाकर उसे रोक

दिया। धीरे-धीरे लोग छंटने लगे। सब लोगों के चले जाने के बाद तय हुआ कि अनुराधा अपने घर चली जाए और रात में कोई दुर्घटना न हो इसलिए गोपाल, कुलदीप और जग्गू अनुराधा के घर बाहर गुरुजी वाली कोठरी में जाकर सो जाएं। सुबह होने पर देखा जाएगा ! जग्गू ने मजबूर होकर सब कुछ स्वीकार कर लिया। लेकिन उसकी भाव-भंगिमा से उसके मन का संकल्प मुखरित हो रहा था। उसके मन में कोई विषाद नहीं था, कोई ग्लानि नहीं थी; बल्कि वह उत्साह और आनन्दानुभूति से विभोर हो रहा था। लेकिन उसकी ऊपरी आकृति से गम्भीरता, कठोरता और रुद्रता टपक रही थी। वह रात-भर जगा रह गया।

१९

सुबह होते ही गांव में सरगर्मी छा गई। सबकी जुबान पर अनुराधा और जग्गू की चर्चा चढ़ी हुई थी। प्रायः सभी लोग एकस्वर से छिः-छि. कर रहे थे। घर-घर में, कुएं पर, रास्ते में, खेत में, बथान पर—सब जगह अनुराधा की विशेष रूप से भर्त्सना हो रही थी। औरतों की जुबान को तो जैसे चलने को पटरी मिल गई थी। दिन चढ़ते-चढ़ते अनुराधा गांववालों की आंखों पर चढ़ गई। रात की घटना के अनुरूप अनुराधा और जग्गू से सम्बद्ध कई क्षेपक भी सुबह होते-होते तैयार हो गए। 'छि.-छिः' 'थू-थू' से गांव का चप्पा-चप्पा घिना गया।

लेकिन जग्गू अपनी धुन में मस्त था। सुबह होते ही जग्गू गुमटी पर चला आया था। उस दिन बड़े इत्मीनान से उसने स्नान किया, बड़े चाव से भोजन बनाया और खा-पीकर, धुले कपड़े पहनकर तैयार बैठ गया। मुनिदेव आया तो जग्गू अपने मन की बात उसके सामने खोल बैठा। मुनिदेव ने जब सुना कि जग्गू भरी पंचायत में अनुराधा से शादी करने की बात कहने जा रहा है, तब वह बहुत ही झल्लाया। उसने जग्गू को डांटा-डपटा, डराया-धमकाया, लेकिन व्यर्थ ! जग्गू अपने संकल्प पर सुदृढ़ रहा। रामपाल इस विषय पर मौन रहा।

पंचायत शुरू हुई। उस दिन की पंचायत में गांव का बच्चा-बच्चा उपस्थित था। गाव की लगभग सभी औरतें, सभा-स्थल से कुछ दूर इधर-उधर, पांच-पांच, छः-छः के गिरोह में नाक तक आंचल सरकाए खड़ी थीं।

सबसे पहले जग्गू का बयान शुरू हुआ। जग्गू ने खुले शब्दों में कह दिया कि वह अनुराधा से शादी करेगा। उसकी बात सुनकर लोग क्षण-भर स्तम्भित रह गए। फुसफुसाहट का स्वर कोलाहल में बदल गया। कुछ लोग तो गाली-गलौज पर उतर आए। कोई जग्गू को गाली दे रहा था, तो कोई अनुराधा को। दूर पर खड़ी बूढ़ी औरतों ने भी चीख-पुकार मचानी शुरू कर दी थी। इस असाधारण बात पर सब के सब क्रोध, ग्लानि और घृणा से भर गए। केवल जग्गू के चेहरे पर आत्म-विश्वास और धीरज की ज्योति जल रही थी। लाख मना करने पर भी जब शोरगुल नहीं दबा तो बिचित्तर सिंह उठे और जोर से बोले—

"आप लोगों ने जग्गू भाई के विचार जान ही लिए। जग्गू भाई लाख चरित्रवान हों या ईमानदार, लेकिन उनकी यह बात मुझे पसन्द नहीं आई।"

"इनका दिमाग खराब हो गया है!"—कई आदमी बोल उठे कि बिचित्तर सिंह ने उन लोगों को डपट दिया—

"आप लोग मेरी पूरी बात सुन लेने के बाद बोलिए—बात यह है कि देसौरा गांव मे ऐसी बात न कभी हुई और न हम होने देंगे! आखिर धर्म-कर्म भी कोई चीज होती है! हम लोगो को जग्गू भाई से ऐसी उम्मीद नही थी। लेकिन इस औरत के चक्कर में पड़कर इनकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई। जिस दिन इन्होंने इस औरत को शहर भेजा, उसी दिन हम समझ गए कि अब गाव से धरम-करम उठ गया; और अब तो अनर्थ ही हो गया। लेकिन इस पाप की जड़ में यह औरत है, जो अभी सुशीला जैसी सिर झुकाए बैठी है। आप लोग जरा इसका विचार भी तो सुन लीजिए!"—इतना कहकर बिचित्तर सिंह बैठ गए। फिर शोरगुल उभर आया। कई लोगो ने अनुराधा से डपटकर कहा—"बोलती क्यों नही है? मुंह में दही जमा हुआ है? कुल्टा कहीं की!"

अनुराधा उठी। लोगों ने देखा कि उसकी आखें सूजी हुई और लाल

थी, उसका चेहरा उतरा हुआ था और बाल अस्त-व्यस्त थे। जग्गू ने छिपी नजरों से उसे मुसकराकर देखा लेकिन अनुराधा का विषादपूर्ण मुखमंडल देखकर वह आश्चर्य-चकित रह गया। अनुराधा ने धीमे स्वर में कहा—

"मैं इनसे गुमटी पर मिलने जरूर गई थी, एक दिन और गई थी। इसके लिए आप लोग जो सजा चाहें दें! लेकिन मैं गांव की मर्यादा को तोड़ना नहीं चाहती। मैं अपनी भूल के लिए प्रायश्चित्त करने को तैयार हू। मैं विधवा हूं, और अब मेरी शादी तो चिता की लपटों के साथ ही होगी!"

जग्गू पर-कटे पक्षी की तरह धम्म से जमीन पर आ गिरा। उसकी समझ में नहीं आया कि अचानक ही क्या से क्या हो गया। उसने घूरकर अनुराधा को देखा, लेकिन उसे विश्वास नहीं हुआ कि उसके सामने वही अनुराधा बैठी हुई रो रही थी, जिस अनुराधा को वह बचपन से जानता था, जो उससे गुमटी पर मिलने आती थी, जो गुरुजी की बेटी थी! जग्गू का आत्मविश्वास आत्मग्लानि में बदल गया; उसका धीरज प्रचंड क्रोध की सीमा को छूने लगा; और अनुराधा के प्रति उसका प्रेम घृणा और प्रतिशोध के धुएं में घुटकर मर गया। वह जल्दी से उठकर वहां से भागा और भागता ही चला गया। उसे पता भी नहीं चला कि किधर जा रहा है, क्या समय है और वह स्वयं कौन है? उसके पैर थक गए, कलेजा फटने लगा, यथार्थ और सत्य की कड़ुवाहट से उसका कंठ जलने लगा, और तब वह पता नहीं कहां, किस गांव में एक पेड़ के नीचे बैठ गया। उसे महसूस हुआ कि वह एक दुःखपूर्ण स्वप्न देख रहा था। उसकी आंखों से आंसू की धारा बह चली। वह सिसक-सिसककर रोने लगा। शाम हो चुकी थी। वह किसी अज्ञात गांव के बाहर, आम के बगीचे में बैठा रहा। इसी तरह न जाने वह कब तक मायूसी में डूबा रहा कि अचानक परिचित आवाज सुनकर चौंक उठा। सामने मुनिदेव खड़ा था। मुनिदेव को देखकर उसने जल्दी से आंखें पोंछ लीं, और उठकर चलने को हुआ कि मुनिदेव ने उसकी कलाई पकड़कर कहा—

"मैंने अपनी साइकिल वहां पेड़ से लगा रखी है।"

"मुझे अब उस गांव में नहीं जाना है।"—जग्गू ने धीमी किन्तु दृढ़

आवाज में कहा। मुनिदेव हसता हुआ बोला—

"फिर मैं व्यर्थ ही चला आया !"

"मैं ठीक कह रहा हूं, मुनिदेव। मैं उस गाव में लौटकर गया, तो पागल हो जाऊंगा।"

"अरे प्यारे ! तुम होश मे कब थे कि अब पागल होने से डरते हो ! तुम्हें तो उस गांव और समाज का शुक्र-गुजार होना चाहिए, जिसने ठीक समय पर तुम्हें सही रास्ता बता दिया ! अब चुपचाप गुमटी पर लौट चलो जैसे पहले रहते थे, वैसे ही रहते चलो !"

"मैंने तुमसे कह दिया कि मुझे अब लौटकर नहीं जाना है ! मैं इस विषय में किसीसे बात करना भी नही चाहता !"

"तुम्हारे जैसे आदमी को इतनी कायरता शोभा नही देती !"

मुनिदेव की बात सुनकर जग्गू ने उसकी ओर कुपित होकर देखा। अधेरे में दोनो एक-दूसरे की आकृति को देख-समझ नही सके, फिर भी मुनिदेव जग्गू का मनोभाव भांपता हुआ बोला—

"मुह क्या ताकते हो ? मैं बिलकुल ठीक कह रहा हू ! इतना बड़ा हंगामा खड़ा करके अनुराधा को बदनामी के भवर में डाल दिया, और अब खुद किनारे हो जाना चाहते हो ?"

"उस औरत का नाम मत लो, मुनिदेव ! उसने मुझे कहीं का नही रखा !"

"उसने तुम्हे कही का नही रखा या तुमने उसे कहीं का नही रखा ? वे दिन भूल गये, जब उसके घर चक्कर लगाया करते थे ? पूरा गांव इस बात को जानता था। गांव की औरतें उस बेचारी के पास जाकर उसकी *भर्त्सना करती थी। फिर भी अनुराधा गाव छोड़कर नही भागी।* लेकिन तुम अपने स्वार्थ के चलते आज भाग रहे हो ! यही तुम्हारा प्रेम-भाव है, जिसका तुम दम भरते थे ? मेरा मुह मत खुलवाओ, चुपचाप मेरे साथ चले चलो !"

देर तक दोनो मित्र एक-दूसरे से उलझते रहे। जग्गू के मन में यह बात घर कर गई कि वह कायरतावश, अपने स्वार्थ के चलते ही, गांव से भाग रहा है। निदान वे दोनों घर की ओर लौट चले। तब तक रात उतर आई

थी। जग्गू विक्षोभ की बेहोशी में, अपने गांव से छ-सात कोस दूर पहुंच गया था सो गुमटी पर लौटते-लौटते दस बज गए।

मुनिदेव ने अपने घर से खाना लाकर जग्गू को खिलाया और तोष-भरोस देकर स्टेशन चला गया। जग्गू फिर अकेला रह गया। अकेली रात, एकांत गुमटी और सूनी, नीरस रेल की पटरी अपनी निस्तब्धता से जग्गू के साथ सहानुभूति प्रदर्शित करती रही और तब जग्गू अपने भूत, वर्तमान और अतीत की अनिश्चितता में डूब गया। लेकिन कोई बात उसकी पकड़ में नहीं आती थी। वह निरा विवेक-शून्य, भाव-शून्य, जीवन-शून्य और दृष्टि-शून्य होकर बैठा रहा। वह हर घटना से अपने को सम्पृक्त महसूस करता और जितनी ही यह अनुभूति उसमें तीव्र होती, उतना ही वह जीवन और जगत् से असम्पृक्त होता जाता। लेकिन ममत्व का स्वाद और उसके मन में कुछ व्यक्तियों के प्रति जमी हुई निश्चित धारणा उसकी बेचैनी की आग में घृत का काम करती।

जग्गू गुमटी के चौकठ पर बैठा हुआ अंधकार में देख रहा था। दूर पर गुरुजी के घर के पास कोई गा रहा था—

जेहि बाटे कृष्ण ऽऽऽऽ गइले ऽऽऽऽ··········
दूबियो जनमि गइले, आहो-आहो कि···
सेही देखी जिअरा मोरा फाटे रे ना कीऽऽऽऽ!

यद्यपि इस गीत के अर्थ और जग्गू के मनोभाव में कोई विशेष साम्य नहीं था, फिर भी जग्गू का मन, इस स्वर-लहरी के सहारे, अंधकार में भटकता फिर रहा था। गीत का दर्द उसकी लय और धुन में घुल-मिलकर घनीभूत अंधकार में सिसकता हुआ-सा प्रवाहित हो रहा था और जग्गू की समस्त इन्द्रियां चेतनाहीन होकर उसी प्रवाह में बही जा रही थीं।

२०

जग्गू पूर्ववत् अपनी गुमटी पर रहने लगा। उसने सबसे मिलना-जुलना बन्द कर दिया। कभी-कभार मुनिदेव आता तो उससे दो-चार बातें कर

लेता। गांव में वह लौटकर कभी नहीं गया।

पंचायत ने अनुराधा को प्रायश्चित्त करने का आदेश दिया था—पर साधारण प्रायश्चित्त नही, अति कठोर प्रायश्चित्त ! अनुराधा को सिर के बाल कटाकर प्रयाग में त्रिवेणी में बालू फांकना था, दान-दक्षिणा करनी थी और गो-मूत्र पीना था। जग्गू का एक मन हुआ कि वह अनुराधा से जाकर मिले, और उसे समझा-बुझाकर अपनी बात स्वीकार करा ले। लेकिन उसने ऐसा किया नहीं। वह गुमटी पर ही जमा रहा। इसी बीच, एक दिन अचानक ही उसे खबर मिली कि भानुप्रताप शारदा को अकेली छोड़कर नौ दो ग्यारह हो गया। मुनिदेव से उसे मालूम हुआ कि शारदा रो-रोकर जान देने पर उतारू है। फिर भी जग्गू वहां नहीं गया। वह पत्थर-सा बना सुनता-सहता रहा। मुनिदेव के मुंह से उसने यह भी सुना कि गांववाले भानुप्रताप के भाग जाने की बात को उसीके साथ सम्बद्ध कर रहे है। लोगों का कहना है कि शारदा पतिता है, वह जग्गू और रामपाल से भी फंसी है, इसीलिए भानुप्रताप ने उसे त्याग दिया। ऐसी कुल्टा औरतों को तो जिन्दा जला देना चाहिए ''और जग्गू इन तमाम बातों को सुनकर भी अनसुनी कर देता। उसे अब किसीकी परवाह नहीं थी। उसके मन में नफरत जनम चुकी थी—तमाम चीजों के प्रति नफरत और अपने आपसे भी नफरत !!

उस दिन वह गुमटी पर बैठा, रामायण के पन्ने उलट-पुलट रहा था कि रामपाल आ पहुंचा। रामपाल कुछ दिनों के लिए बाहर गया हुआ था। उसे अचानक आया देखकर, जग्गू नम्रतापूर्वक उठ खड़ा हुआ, और हाल-चाल पूछने लगा—

"कब आए ? अच्छे हैं न ?"

"मैं कल ही आ गया था, लेकिन आपसे मिल नहीं सका। आज मैं, सदा के लिए, आपके गाव से जा रहा हूं !"

"इस गाव से आप जा रहे है ? क्यों ?"—जग्गू ने आश्चर्य और दु:ख से चौंककर पूछा। रामपाल ने मुस्कराते हुए कहा—

"मेरी ईमानदारी का मुझे पुरस्कार मिला है !"

"बड़ी प्रसन्नता की बात है !" जग्गू उत्साहपूर्वक बोला।

"हां, बहुत जल्दी मुझे शिक्षा मिल गई और बहुत बड़ा अनुभव भी मिल गया ! यह क्या कम प्रसन्नता की बात है ?" रामपाल ने सहज भाव से उत्तर दे दिया, लेकिन उसके स्वर में वेदना स्पष्ट थी।

"मैं समझा नही ?" जग्गू ने परेशानी के स्वर में पूछा।

"इसे न समझो, यही अच्छा है, जग्गू भाई ! आज मुझे यदि दु.ख है, तो बस इसी बात का कि मैं सारी बातें क्यों समझ रहा हूं ? लेकिन खैर, इस दु.ख में प्रायश्चित्त के भाव नही हैं। मैंने आज तक ऐसा कोई काम नही किया, जिसके लिए मुझे ग्लानि हो ! तुमसे भी यही कहने आया हूं जग्गू भाई, कि जैसे हो, वैसे ही बने रहो—परिस्थिति तुम्हारे प्रतिकूल है, लेकिन तुम झुको नही ! अच्छी राह कभी सुखद नही होती ! कोई भी नया काम भयंकर विरोध झेलने के बाद ही शुरू किया जा सकता है !"

"यह सब आप क्या बोल रहे हैं ?"

"तुम्हारे मन की बात बोल रहा हूं, जग्गू भाई ! तुम पढे-लिखे पंडित नही हो, लेकिन तुम आदमियो मे देवता हो ! अपना देवत्व कायम रखना; बस, यही कहकर जाता हूं। मुझे जाना पड़ रहा है, क्योंकि मैं सरकारी नौकर हू, मजबूर हूं। किसीके प्रभाव में आकर, मेरे बड़े अफसर ने मुझे तुरन्त ही इलाका छोड़ देने का आदेश दिया है। मैं तुमसे वचन लेकर जाना चाहता हूं कि तुम अनुराधा को कभी अकेली नही छोड़ोगे, शारदा को पथभ्रष्ट नही होने दोगे, और तुम खुद भी परिस्थिति के आगे झुकोगे नही ! बोलो, वचन देते हो ?"

'वचन'—यह शब्द सुनते ही जग्गू तिलमिला उठा, कांप उठा। एक दिन उसने बिसेसर सिंह को वचन दिया था और उसका भयकर परिणाम अब तक भोग रहा था। 'न जाने क्या होनेवाला है'—यह सोचकर वह सिहर उठा। जग्गू ने बहुत कुछ देख-सुन लिया था, अब अधिक सहने की शक्ति उसमें शेष नहीं थी। उसने 'न' करने के लिए मुह खोला कि उसकी आंखें रामपाल की आंखो से मिल गई। रामपाल की आंखों में असीम विश्वास और आभा चमक रही थी, उसके होंठों पर निश्छल स्नेह की मुस्कराहट कांप रही थी, और उसके मुखमंडल पर, जीवन के प्रति अखंड आस्था भासमान हो रही थी। जग्गू के मुंह से अनायास ही शब्द फूट पड़े —

"आप मुझपर विश्वास रखिए, रामपाल साहब ! बहुत-से अफ़सरों को देखा, लेकिन आप सचमुच ही ऐसे अफसर हैं, जिनकी आज्ञा आशीष जैसी मालूम होती है !"

"तो जग्गू भाई, मुझे आशीष दो कि मैं लाख विरोध के बावजूद ऐसा ही अफसर बना रहूं, शारदा को बहुत जोरों का दर्द हो रहा है। मेरी गाड़ी के आने में अब देर नहीं है, इसलिए अब चलता हूं। तुम शारदा के पास जाओ; और यह लो !" जेब से नोटों का एक पतला-सा बण्डल निकालकर जग्गू को देता हुआ रामपाल बोला—"शारदा की सेवा-सुश्रूषा में आवश्यकता पड़ेगी। उसे शायद प्रसव-पीड़ा हो रही है। लो, रखो इसे !"

"लेकिन···"

"लेकिन-वेकिन कुछ नहीं। तुम चुपचाप, जल्दी से शारदा के पास जाओ। मैं भी अब चलता हूं !"

"चलिए स्टेशन तक छोड़ आऊं !"

"स्टेशन जाने की बिलकुल जरूरत नहीं ! काम होना चाहिए—प्रदर्शन नहीं ! और मैं जीने जा रहा हूं—जलने या दफन होने नहीं, कि साथ में पहुंचाने के लिए आदमी की जरूरत होगी।" रामपाल ने हसते हुए कहा, मगर उसकी आखें भर आईं। वह जल्दी से मुड़कर स्टेशन की ओर चल पड़ा। जग्गू हाथ जोड़े उसे देखता रहा। क्षण-भर के लिए सुध-बुध खोकर वह रामपाल को जाते निहारता रहा। लेकिन उसका मन, उसकी आखों से बहुत दूर, उसकी अपनी गहराई में ही डूब रहा था, जिससे उसकी आखों के किनारे छलक आए थे। उसके कानों में रामपाल के शब्द गूंज रहे थे, कि तभी उसे शारदा का ध्यान आया और वह घर की ओर भागा।

तीसरा पहर बीत रहा था, लेकिन गर्मी का सूरज अभी भी कनपटी पर चमक रहा था। खेतों में एक हल पड़ चुका था। सूखी मिट्टी का सोंधापन गरम हवा के थपेड़ों से मर चुका था; और हरियाली के नाम पर, कहीं-कहीं अरहर के धूल अटे पौधे मन मारे खामोश खड़े थे।

जग्गू पसीना पोंछता हुआ घर में घुसा ही था कि उसे शारदा के कराहने की आवाज सुनाई दी। वह बाहर ही थम गया। आंगन सूना पड़ा था। भीतर की कोठरी में कराहने की आवाज जोर पकड़ती जा रही थी।

ब्रह्मदेव का कहीं पता नहीं था। जग्गू ब्रह्मदेव की तलाश में एक बार बाहर आया। लेकिन वहां गरम हवा बहने लगी थी। वह फिर आंगन में आया। वहां शारदा के कराहने की आवाज सुनकर वह छटपटाने लगता, तो फिर बाहर चला जाता; और इस तरह वह कई बार बाहर-भीतर करता रहा कि अचानक शारदा बहुत जोर-जोर से चीखने-चिल्लाने लगी। जग्गू से रहा नहीं गया। वह भीतर जाने ही लगा था कि अचानक उसके पैर रुक गए—सामने अनुराधा कोठरी से बाहर निकलती हुई जग्गू को देखकर *ठिठक गई थी। लेकिन* पल-भर बाद ही अनुराधा की चेतना जैसे लौट आई और वह बिलकुल सहज स्वर में बोली—

"जरा कल्लू चमार की घरवाली को बुला लाइए! जल्दी लौटिएगा, क्योंकि समय निकट आता जा रहा है।"

जग्गू बिना कोई शब्द बोले, कल्लू चमार के घर की ओर लपक चला। मुद्दत बाद उसने अनुराधा को देखा था। वह सूखकर कांटा हो गई थी। उसका चेहरा पीला पड़ गया था और उसकी आंखें बड़ी हो आयी थीं। लेकिन जब वह ठिठककर खड़ी हो गई थी, तब क्षण-भर के लिए उसका सहज सौंदर्य जैसे सजीव हो उठा था—ऐसा जग्गू को लगा।

कल्लू चमार की पत्नी जब वहां पहुंची, उस समय शारदा की प्रसव-पीड़ा दब चुकी थी। जग्गू बेचैनी में घर के भीतर-बाहर होता रहा। कभी-कभी उसे भानुप्रताप पर क्रोध हो आता—पता नहीं क्यों। रात हो आई। शारदा का दर्द फिर उभर आया। जग्गू किसीसे क्या पूछे? क्या करे?—*यही उसकी समझ में नहीं आ रहा था*, कि अचानक ही अनुराधा उसके सामने आकर खड़ी हो गई।

दोनों एक-दूसरे को पल-भर देखते रह गए। दस बजे की गाड़ी गुमटी पर से हड़हड़ाती हुई गुजर गई जिसकी धमक से सारा घर हिल उठा। जग्गू चौंककर होश में आ गया; और फिर वहीं पर चहलकदमी करने लगा। अनुराधा चुपचाप खड़ी रही। बाहर गांव में कुत्ते लग रहे थे। शारदा की हृदय-विदारक चीख और उसकी भयावह कराह सारे वातावरण पर दुःख और उदासी का ताना-बाना बुन रही थीं। वेदना और वैराग्य गहरा होता जा रहा था।

"आप मुझसे बहुत नाराज है !" अनुराधा बोली।

[illegible] क्षण-भर बाद फिर बोली—

[illegible] !"

[illegible] तो पूरा कीजिए !" जग्गू ने बेरुखी से कहा।

अनुराधा ने कहा—"वही तो कर रही हूं ?"

"फिर मुझसे पूछने की जरूरत नहीं है," जग्गू ने भर्त्सना के स्वर में कहा—"जाइए, शारदा के पास जाइए !"

अनुराधा चुपचाप खड़ी रही। जग्गू चहलकदमी करता रहा। रात बीतती रही। शारदा को होनेवाला 'झूठा दर्द' कभी दब जाता, तो कभी उभर आता। बीच में दो-तीन बार अनुराधा शारदा के पास गई और फिर वापस आ गई लेकिन चुपचाप, एक ओर दीवार से लगकर खड़ी रही। उस समय जग्गू के घर में धीरज की परीक्षा हो रही थी। तभी चमाइन भागी हुई आई और अनुराधा को बुलाकर ले गई। जग्गू भौचक्का-सा देखता रह गया। उसे लगा कि शारदा कोठरी में पछाड़ें खाती फिर रही है। देर तक शारदा चीखती-चिल्लाती रही। रात के साथ-साथ जग्गू की बेचैनी और वेदना गहरी होती रही। वह पसीने से लथपथ चक्कर काटता रहा। उसके दिमाग में तमाम बातें चक्कर काटती रहीं—गांव की बातें, अनुराधा की बातें, शारदा और भानुप्रताप की बातें, बिसेसर सिंह की बातें और इन तमाम बातों के बीच से, एक बहुत ही वितृष्णायुक्त प्रश्न कढ़कर जग्गू को झकझोर देता'''इतने कष्ट के पश्चात् उत्पन्न नादान मनुष्य, आगे चलकर कितनी आपाधापी मचाता है, कितना कृतघ्न और अहंकारी हो जाता है ?'

अनुराधा ने आकर कहा—

"लड़का हुआ है !"

जग्गू के मन में हर्ष या विषाद कुछ नहीं हुआ। उसने अनुराधा को देखा। अनुराधा ने आंखें झुका लीं। दोनों के मन में उठता तूफान खामोशी के वातावरण को असह्य बना रहा था। जग्गू ने सहज गम्भीरता से पूछा—

"अनुराधा, यदि मैं गांव छोड़कर चला जाता, तो तुम्हें दुख भी होता ?"

"मैं अपना शरीर छोड़ देती !"

"क्यों ?"

"यही तो मैं नहीं जानती !"

"फिर उस दिन, तुमने भरी पंचायत में, मुझे बेपानी क्यों कर दिया ?"

"अपने नेह और आपके सुख को जिन्दा रखने के लिए !"

"तुम पटना जाकर बोलना बहुत सीख गई हो !"

"नहीं, मैं तो चुपचाप रहना सीख गई हूं। बोली तो आपको देखकर निकलती है। लेकिन आप समझें तब तो !"

"अब क्या होगा, अनुराधा ?"

"होगा क्या ? जैसा चलता है, चलने दीजिए !"

"नहीं ! ऐसे तो मैं मर ही जाऊंगा। चलो, हम लोग भाग चलें !"

"छि: ! मेरा जग्गू ऐसी बात सोचता है ? हम लोग क्या चोर है, जो यहां से भाग जाएं ? ऐसा करने से तो हमारा प्रेम ही कलंकित हो जाएगा; और अब तो शारदा की जिम्मेदारी भी आपपर ही है !"

"मैं नहीं जानता शारदा को ! उसने गलती की है, तो फल कौन भोगेगा ?"

"यदि शारदा की जगह मैं होती, तो ?"

"कैसी बातें करती हो ?"

"ठीक कह रही हूं ! दु:ख झेलते-झेलते, मुझे स्वयं दु:ख से ही मोह हो गया है। दुखियों को देखकर मुझे अपना ध्यान आ जाता है। अब तो जग्गू बाबू, हम लोगों को यहीं जीना है या यहीं मरना है !"

"तो तुम मेरी कोई बात मानने को तैयार नहीं हो ?"

"और सब बात मानूंगी, लेकिन भाग चलने की बात मैं सोच भी नहीं सकती।"

"सब बातें मानोगी—ऐसा वचन देती हो ?"

"हां !"

"तो मुझसे शादी कर लो ! मेरे साथ रहो।"

"शादी की रस्म तो सामाजिक स्वीकृति को प्रकट करने के लिए होती है, और समाज हम लोगों के इस सम्बन्ध को स्वीकृति देने से रहा। हां, मैं साथ रहने को तैयार हूं !"

जग्गू ने अनुराधा को देखा, और उसके निकट चला आया। उसने पहली बार अनुराधा को रागात्मक भाव से स्पर्श किया—उसकी ठुड्डी उठाकर उसे ध्यान से देखा और वह तन्मय स्वर में बोला—

"तुम कैसी हो गई हो ?"

"तुम्हारे योग्य !" अवरुद्ध कंठ से अनुराधा बोली। सवेरा हो चुका था तभी कल्लू चमार की घरवाली आ धमकी और दोनों को उस स्थिति में देखकर किंचित् सकपका गई; फिर सम्भलती हुई बोली—

"लड़का बचेगा नहीं !"

"क्यों ?"—अनुराधा और जग्गू साथ-साथ बोल उठे।

"लड़का सतमासा है। न वह आंखें खोलता है और न रोता है !" चमाइन रूखे स्वर में, उपेक्षा के भाव से बोली—"अच्छा, मैं जरा अपने घर जा रही हूं। थोड़ी देर में आती हूं !"

चमाइन के चले जाने के बाद अनुराधा शारदा के पास पहुंची। जग्गू भी प्रसूति-गृह के दरवाजे तक गया। वहीं से उसने झांककर देखा, शारदा सो रही थी—निष्प्राण ! कोठरी में काफी अंधेरा था, इसलिए वह शारदा का चेहरा स्पष्ट नहीं देख सका।

चमाइन की बात सच निकली। दस बजते-बजते नवजात शिशु चल-बसा। अनुराधा ने सही बात का पता भी शारदा को नहीं लगने दिया। उससे कह दिया गया कि बच्चा जनमते ही मर गया था; और जग्गू उस नवजात-मृत शिशु को गोद मे लेकर, यमुनापुर के आम के बगीचे में, मिट्टी के नीचे सुला आया। जन्म, जीवन और मृत्यु के इस भयंकर अनुभव का आकस्मिक बोझ जग्गू झेल नहीं पाया। वह देर तक बगीचे में चुपचाप बैठा धरती को देखता रहा, और उसकी आंखों से अविरल अश्रुधारा प्रवाहित होती रही।

२१

जग्गू आम के बगीचे से सीधे घर पहुंचा। वहां गांव की पांच-छः बूढ़ी और प्रौढ़ स्त्रियों को देखकर जग्गू का माथा ठनका। जग्गू को देखते ही सभी औरतें घुस-फुस करने लगीं, लेकिन जग्गू से किसीने कुछ नहीं कहा। जग्गू चुपचाप उस कोठरी की ओर बढ़ा, जिसमें शारदा रहती थी। कोठरी के भीतर दरवाजे के पास ही जग्गू अचानक रुक गया। वहीं अनुराधा अपने दोनों घुटनों में सिर छुपाए बैठी थी। पास में रूपन सिंह की स्त्री खड़ी अनुराधा को फटकार रही थी। जग्गू को देखते ही, वह स्त्री चुपचाप एक ओर हटकर खड़ी हो गयी। जग्गू ने अनुराधा को देखा—वह सिसक-सिसककर रो रही थी। उधर शारदा भी रोए जा रही थी। जग्गू ने समझा कि यह रोना-धोना और जमघट शारदा के प्रति सहानुभूति प्रकट करने के लिए है। फिर भी उसने किंचित् चिंता और दु:ख के स्वर में पूछा—

"क्या बात है ?"

जग्गू का स्वर सुनते ही अनुराधा ने सिर उठाकर देखा। उसका आंसुओं से भीगा चेहरा और आखें देखकर जग्गू किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया। जग्गू को देखते ही अनुराधा फफक-फफककर रोने लगी।

"अरे! यह तो रोए ही जा रही है!"—जग्गू ने अपनी परेशानी छिपाने के लिए कृत्रिम हंसी हंसते हुए कहा—"कुछ बोलोगी भी या रोती ही जाओगी ?"

"यह नाटक करती है नाटक! कलमुही, मा-बाप-भर्तार को खाकर भी भूख से छिछियाती फिरती है! आग लगे ऐसी जवानी मे!" दरवाजे के बाहर खड़ी रूपन की बहू ने अपने हाथ झमकाकर घृणा के स्वर में कहा स्थिति समझते ही जग्गू उस औरत पर चीख उठा—"चुप रहोगी या नहीं? कौन बुलाने गया था तुम लोगों को? चली जाओ सबकी सब, नहीं तो ठीक नहीं होगा!"

औरतों की घुस-फुस बन्द हो गई। जग्गू की आकृति और उसकी गर्जना सुनकर सभी औरतें सहम गईं; लेकिन गांव की ईर्ष्यालु औरतों से ही शायद प्राचीन नाटकों में स्वगत-भाषण की परम्परा आई है—वे औरतें

जोर-जोर से भद्दी-भद्दी गालियां बकती हुई बाहर निकल गईं।

कुछ देर के लिए घर में सन्नाटा छा गया। अनुराधा अभी तक सिर झुकाए बैठी थी। जग्गू का क्रोध पूरी तरह प्रकट नहीं हुआ था। ऐसे मौकों पर सरल व्यक्ति का गोधे स्वजनों पर तीव्रता से प्रकट होता है। जग्गू ने अनुराधा से आक्रोशपूर्ण स्वर में कहा—

"इसीलिए कहता था कि यहां से चली चलो ! यह गांव और रहने योग्य नहीं है। लेकिन तुम सुनो तब तो ! तुम्हें तो मेरी बेइज्जती ही भाती है। यह तीसरा मौका है कि तुम्हारे चलते मुझे बेआबरू होना पड़ा है !"

अनुराधा ने कातर दृष्टि से जग्गू को देखा। जग्गू उस दृष्टि को देखकर मन ही मन पसीज उठा। उसे अपने अंतिम वाक्य पर खुद ग्लानि हुई, लेकिन ऊपर से वह ज्यों का त्यों कठोर बना हुआ बोला—

"मुंह क्या ताक रही हो ? अब भी इस गांव को छोड़ने के लिए तैयार हो या नहीं ?"

"जैसी आपकी इच्छा !"

तो ठीक है, शारदा के स्वस्थ होते ही हम लोग यहां से चल देंगे ! यह गांव अब गांव नहीं रहा, उचक्कों और गिद्धों का अड्डा बन गया है।"

अनुराधा की स्वीकृति से जग्गू को राहत मिली। लेकिन उसके मन के भीतर कहीं कुछ खलबली मच उठी, अज्ञात वेदना के बादल से उसका भविष्य आच्छादित हो उठा, और न जाने क्यों अनागत-अदृश्य घटनाओं के धुंधले संकेतों से वह आशंकाओं से भर गया; लेकिन ऊपर-ऊपर से सुदृढ़ और क्रुद्ध आकृति लिए घर के बाहर निकल आया। अनायास ही उसके पैर गुमटी की ओर बढ़ गए।

तीसरा पहर बीत चुका था। हवा का नामोनिशान नहीं था। मन को ऊबा देनेवाली उमस से मौसम बेजान हो रहा था। जग्गू अनमना-सा भावों के तूफान में बहा चला जा रहा था कि गोपाल की आवाज सुनकर चौंक उठा—

"क्यों जग्गू चाचा, आप भी मेरी कमाई नहीं देख सके ?"

"क्या मतलब ?"—जग्गू चौंककर रुकता हुआ बोला—"तुम्हारी

कमाई से मुझे क्या लेना-देना है ?"

"यही तो आश्चर्य की बात है !" गोपाल अपने दोनों हाथ अपने वक्ष-स्थल पर बांधता हुआ चुनौती की मुद्रा में बोला। जग्गू व्यंग्य से हंसता हुआ बोला—

"तुम्हें आजकल कोई जवान पहलवान लड़ने को नहीं मिलता क्या जो मुझसे रगड़ लेने आ गए ?"

"आपसे ज्यादा जवानी इस गांव में और किसमें मिलेगी ?"

"बकवास बन्द करो, गोपाल !"

"अरे रे रे...आप तो नाराज हुए जा रहे हैं। मैं तो आपकी तारीफ कर रहा था! खैर, छोड़िए इन बातों को। आपने अपने बूते-भर तो कोशिश कर ही ली कि मुझपर माटी-कटाई का गलत माप देने के जुर्म में मुकदमा चल जाए। लेकिन गोपाल उतना बुद्धू नहीं है जितना आपने समझ लिया था। उल्टे आपके रामपाल साहब ही यहां से दफा हो गए। अब यह बताइए कि मिठाई कब खिला रहे हैं ?" गोपाल की बातें सुनकर और उसके ढंग पर जग्गू क्रोध से तिलमिला उठा। उसकी समझ में नहीं आया कि वह क्या कहे और क्या करे। एक अदना-सा लौंडा उसे अपमानित करता जा रहा था, और वह बेबस जैसा टुकुर-टुकुर मुंह देख रहा था। उसकी सहन-शीलता को गोपाल कायरता और दुर्बलता समझकर बोलता रहा—

"आपके घर में तो, सुना, रोज जल्सा होता रहता है ! लेकिन ऐसे मौकों पर आप अपने भतीजे को ही भूल जाते हैं।"

"यह सब क्या बक रहे हो, गोपाल ? तुम्हें हो क्या गया है ?"

"उसे क्या होगा ? तुम्हारे सिर पर काल नाच रहा है, जो गांव की नाक कटाने पर तुले हो !"—रूपन सिंह ने आते ही तीर छोड़ा।

"गांव की नाक कटने से पहले इनकी नाक काट ली जाएगी !"—गोपाल ने रूपन सिंह की बात पर अपनी बात जड़ दी। जग्गू को वस्तुस्थिति समझते देर नहीं लगी। लेकिन वह अपनी मान्यता, अपने विचार और अपनी प्रेम-भावना का इतना कायल था कि उन लोगों की बातें उसे अनर्गल, अनैतिक और अपमानजनक लगीं। प्रेम की तीव्रता मनुष्य को जागरूक बना देती है। जग्गू क्रोध और प्रतिकार से अभिभूत होता हुआ भी

परिस्थिति के प्रति चेतन बना रहा। उसने सहज स्वर में कहा—

"यदि तुम्हें अपनी नाक की इतनी चिंता है तो कौओं से सावधान रहो!"

"मैं तो कौओं के पंख ही काट देनेवाला हूं।"—गोपाल ने दम्भ से भरकर कहा।

"इतना अहंकार तुम्हें शोभा नहीं देता, गोपाल! लेकिन तुम भी क्या करोगे! समय, संगति और रुपया आदमी को पागल बना ही देता है! इसलिए मुझे कुछ नहीं कहना है। तुम्हें जो मन में आए, करो!" यह कहकर जग्गू गुमटी की ओर जाने लगा कि गोपाल उसके सामने आ खड़ा हुआ और बोला—

"जान छुड़ाकर आप भागना चाहते हैं, सो भागने नहीं दूंगा! अब तक मैं आपका लिहाज करता आया, लेकिन आपने हम लोगों की अच्छाई का नाजायज फायदा उठाया। गांववाले आपको ठीक ही गुप्त गुंडा कहते हैं।"

"तो तुम भी कहो! कौन किसे रोकने जाता है!"—जग्गू ने विषादपूर्ण हंसी हंसकर कहा। जग्गू के धीरज ने गोपाल के दम्भ को और अधिक उभार दिया। वह अकड़कर बोला—

"लेकिन मैं कहने-सुनने में विश्वास नहीं करता! मैं तो जय या क्षय में विश्वास करता हूं। आप अपनी गुंडागर्दी बन्द कीजिए!"

"मैं क्या गुंडागर्दी करता हूं? मेरी बातें किसीसे छिपी नहीं हैं। मैं किसीके यहां डाका डालने नहीं जाता, बेईमानी नहीं करता, किसीको सताता नहीं—क्या ये सब बातें नहीं करना गुंडागर्दी है? तुम होनहार नौजवान हो, पढ़े-लिखे हो और साफ आदमी हो, इसीलिए मैं तुमसे दो बातें भी कर रहा हूं। जानता हूं कि बिसेसर सिंह जैसे लोगों ने तुम्हें पथभ्रष्ट कर दिया है। लेकिन तुम्हें अपना विवेक नहीं खोना चाहिए!"

"अपना उपदेश अपने पास ही रखिए!"—गोपाल चिढ़कर बोला।

"अच्छी बात है!"—जग्गू फिर जाने को तैयार हुआ कि गोपाल ने तमककर कहा—

"आपने मेरे सवाल का जवाब नहीं दिया!"

"किस सवाल का ?"

"अरे बनो मत, जग्गू! गाव को कटरा बना रखा है और ऊपर से पूछते हो—किस सवाल का ?"—रूपन सिह ने व्यंग्य से, कर्कश स्वर में मुह टेढ़ाकर कहा। तभी गोपाल भी उसकी हां में हां मिलता हुआ बोला—

"आप अनुराधा और शारदा से अपने सारे सम्बन्ध तोड़ लीजिए !"

"यह असंभव है ! अनुराधा मेरी पत्नी है और शारदा मेरी बहन ! यह बात मैं किसीके सामने भी कह सकता हूं। सांच को आंच क्या ?"

"यह सब अनाचार इस गाव में नही चलेगा !"—गोपाल ने कहा। जग्गू का धीरज जाता रहा। वह फूत्कार कर उठा—

"तो गांववालों से कह दो कि मैं उनका दिया नही खाता ! और तुम जो अपनी पहलवानी के घमंड में चूर होकर मेरा रास्ता रोकने आए हो सो क्या मुझे दूध-पीता बच्चा समझ लिया है ? तुम्हारे जैसे दो-चार लौंडे अब भी मेरी भुजा में लटक जाएं—फिर भी कुछ बनने-बिगड़ने को नही है !" यह कहकर जग्गू अचानक ही बायें हाथ से गोपाल को एक ओर धकेलकर गुमटी की ओर बढ़ गया। गोपाल ने ऐसी स्थिति की कल्पना भी नहीं की थी, सो जग्गू के हाथ का झटका लगते ही वह लड़खड़ाकर दूर पुल पर जा गिरा। उसके सिर से रक्त की धारा फूट पड़ी। रूपन सिह घबराकर चीखने-चिल्लाने लगा। लेकिन गोपाल शर्म के मारे अपना प्रतिकार लेना भूल गया। 'गांववाले जब सुनेंगे कि जग्गू ने गोपाल को एक ही झटके में चित कर दिया, तब वह कौन-सा मुंह दिखाएगा'—यह सोचकर गोपाल ने रूपन सिह को शोरगुल करने से मना कर दिया, और थोड़ी देर तक वह वही पुल पर बैठकर सास लेने लगा।

जग्गू गुमटी पर न जाकर स्टेशन पर मुनिदेव की दुकान पर पहुंचा। मुनिदेव जैसे उसीकी प्रतीक्षा कर रहा था; देखते ही बोल उठा—

"आओ यार, तुमने तो पूरे गांव में धूम मचा रखी है ! कहा तो जिन्दगी-भर ऐसे अलग-थलग रहे कि लोग महीनों-वर्षों तक तुम्हारा नाम भी भूले रहते थे और अब तुमने ऐसा पल्टा लिया है कि गांव के बच्चों तक की जुबान पर तुम्हारा ही नाम टका होता है। आओ, बैठो !"

"इसीको दुर्गति कहते हैं, मुनिदेव ! पहले मैं हैरानी से हर चीज को

देखता था, और अब निश्चितता से देखता हूं।"—जग्गू ने किंचित् व्यंग्यात्मक मुस्कराहट के साथ कहा। शायद अपने झूठ पर ही वह मुस्करा रहा था। मुनिदेव इन बुझौवलों से हमेशा दूर ही रहना चाहता। उसने चट पूछ लिया—

"सुनो, रात अनुराधा तुम्हारे यहां आई थी ?"

"क्यों ? यह नही सुना कि शारदा का शिशु जनमते ही मर गया ?"

"नही, ऐसा तो नही सुना! हां, लोग यह जरूर कह रहे थे कि शारदा ने अपना गर्भ नष्ट करा दिया।" यह सुनते ही जग्गू के दांत कटकटा उठे। दबे क्रोध के अतिरेक से उसकी आंखें छोटी हो आईं। मुनिदेव ने वातावरण की गम्भीरता को टालने के विचार से कहा—

"मारो गोली, इन गांववालों को! ये साले ऐसे ही बक-बक करते रहते हैं! वह देखो, बिसेसर सिंह आ रहा है।" दोनों मित्र इधर-उधर की बातें करने लगे। बिसेसर सिंह ने आते ही मधुर स्वर मे पूछा—

"आजकल कहा रहते हो जग्गू भाई, कि तुम्हें देखने को मैं तरस जाता हूं!" ठीक उसी समय राघव भी कही से आ धमका और छूटते ही बोल उठा—

"बात यह है बिसेसर बाबू, कि आप अपनी धुन में लगे रहते हैं और हमारे जग्गू भाई अपनी धुन मे! दोनों में से किसको फुर्सत है कि एक-दूसरे की खोज-खबर ले! यह सब काम तो हम जैसे लोगों के दुर्बल कंधों पर है!"

"ठीक कहते हो, राघव! तुम ठहरे आजाद आदमी, और हम लोग ठहरे गृहस्थ! बीस तरह के झंझट हमारे सामने खड़े रहते हैं।"—बिसेसर सिंह सहज स्वर में बोले, लेकिन उनकी आकृति और मुद्रा की अत्यधिक गम्भीरता उनके मन मे छिपी घृणा का संकेत दे रही थी।

"जी हां, आपको बीस तरह के काम तो होते ही हैं—एक से एक मुश्किल और एक से एक महान काम!"—राघव ने व्यंग्य से कहा। मुनिदेव अपनी आदत के अनुसार झल्ला उठा—

"फिर तुमने बकवास शुरू कर दी ?"

"अरे बोलने दो, भाई! इसे भी अपनी भड़ास निकाल लेने दो। मेरा

क्या बिगड़ता है !"—बिसेसर सिंह ने हंसते हुए कहा। जग्गू सोच रहा था कि जहां वह जाता है, कोई न कोई झंझट उठ खड़ा होता है। राघव ने मुनिदेव को निमित्त मात्र बनाकर कहा—

"तुम बहुत ही ओछे आदमी हो, इसलिए बात-बात पर झल्ला उठते हो ! जरा बड़े-बड़े नेताओं के साथ घूमो-फिरो, उनसे नाता-रिश्ता बैठाओ, फिर बात करने का ढंग सीखोगे !"

जग्गू इन लोगों की बातचीत सुनकर भी कुछ नहीं सुन रहा था। उसका ध्यान कहीं और था। देर तक राघव व्यर्थ ही बिसेसर सिंह और मुनिदेव से उलझता रहा। अन्त में मुनिदेव राघव को अपनी दुकान से निकाल बाहर करने में सफल हुआ। बिसेसर सिंह की जान में जान आई, लेकिन ऊपर से स्थितप्रज्ञ बनने का स्वांग करते हुए वह बोले—

"पागल है !" फिर जग्गू की ओर रुख करके बोले—

"कुछ सामान खरीदने आया था, सो इस झमेले में भूल ही गया! तुम तो अभी यहां बैठोगे ?"

"हां।"

"तो बस मैं आता हूं। फिर साथ चलेंगे।"

बिसेसर सिंह के चले जाने पर जग्गू ने मुनिदेव को उस दिन की सारी बातें बता दीं, और यह भी बता दिया कि अब वह गांव छोड़कर जल्दी ही चला जाएगा। मुनिदेव ने बहुत समझाया-बुझाया, लेकिन जग्गू अटल बना रहा। निदान, मुनिदेव ने पूछा—

"कहां जाने का इरादा किया है ?"

"पता नहीं !"

"शारदा का क्या करोगे !"

"उसे उसके घर पहुंचा दूंगा।"

"और खाओगे क्या ?"

"यहां की सारी जमीन-जायदाद बेच दूंगा, और उसी पूंजी से कहीं छोटी-सी दुकान खोल लूंगा, कुछ न हुआ तो दरबान की नौकरी तो मिल ही जाएगी !"

तभी बिसेसर सिंह आ गए। जग्गू ने न जाने क्यों, किंचित् सहमते हुए

कहा—

"बिसेसर बाबू, आप मेरा एक उपकार करेंगे !"

"आज्ञा करो !" बिसेसर सिंह ने तपाक से कहा। जग्गू क्षण-भर कुछ सोचता रहा। फिर बोला—

"मैं अपना घर और जमीन बेचना चाहता हूं।"

"क्यों, क्यों ? क्या बात हुई ?"

"यों ही, सोचता हूं···" तभी मुनिदेव ने आंखों से संकेत किया। जग्गू तथ्य छिपाता हुआ बोला—

"सोचता हूं, पता नहीं कब क्या हो जाए ! मेरे पीछे उसे भोगने वाला तो कोई है नहीं ! इसीलिए क्यों न अभी से छुट्टी पा लूं। रुपया हाथ आएगा तो जरा तीर्थों का भी चक्कर लगा आऊंगा।"

"ठीक है, जब कहोगे, तभी हो जाएगा !" बिसेसर सिंह ने तपाक से कहा, लेकिन उनकी मुद्रा से प्रकट हो रहा था कि वह मन ही मन कुछ जोड़-घटाव करने में लगे हैं।

रात हो आई। बाजार में लालटेन, पेट्रोमैक्स और दीये जल उठे। थोड़ी चहल-पहल बढ़ गई। आस-पास के गांव के कुछ छोटे रईस पानी-पत्ती के लिए या यों ही चकल्लस के लिए बाजार में इधर-उधर नजर आने लगे। बिसेसर सिंह जा चुके थे। मुनिदेव ने मुस्कराते हुए पूछा—

"आज हो जाए, ताड़ी की एकाध गोली !"

जग्गू का हृदय रो रहा था। वह राहत ढूंढ़ रहा था। द्वंद्व से उसका मस्तिष्क फटा जा रहा था। विक्षोभ की घड़ी में मनुष्य प्रायः भोगवादी बन जाता है, क्योंकि विक्षोभ मानसिक शक्ति के के ह्रास का द्योतक है, या यों कहिए कि बुद्धि की विफलता का स्पष्ट संकेत है। ऐसी दशा में बड़े-बड़े सम्बुद्ध भी ढीले पड़ जाते हैं। जग्गू संभावित संघर्ष के निश्चय को सशक्त बनाना चाहता था, लेकिन उसका मन, उसकी बुद्धि और उसका संस्कार उसे हिला रहा था। मुनिदेव का प्रस्ताव अनुचित होते हुए भी जग्गू को स्वीकार कर लेने की इच्छा हुई, और उसने 'हां' भी कर दी।

दस बजे की गाड़ी का सिगनल डाउन हो चुका था। मुनिदेव और जग्गू प्लेटफार्म पर चक्कर काट रहे थे। जग्गू ताड़ी के नशे में झूमता हुआ चल

रहा था। उसे मौसम अच्छा लग रहा था। कुछ देर तक तो वह मुनिदेव के सामने रोया भी लेकिन फिर उसमें उत्साह और उमंग व्याप्त गई; और एक नई उमंग लेकर वह मुनिदेव के साथ खुलकर बातें करता हुआ घूमता रहा। उस दिन उसके सामने से एक नया पर्दा उठ गया, एक नया दृश्य पनपता दीख पड़ा। गाड़ी स्टेशन पर आकर लगी ही थी कि मुनिदेव ने कहा—

"वह देखो, मुनेसरा फर्स्ट क्लास के डिब्बे से एक बक्सा लेकर उतर रहा है। साला चारों ओर उचक-उचककर देख कैसे रहा है? निश्चय ही वह किसी पैसेंजर का बक्सा मारकर भागना चाहता है!" मुनिदेव की बात पूरी ही हुई थी कि गाड़ी पूर्णतया रुक गई और मुनेश्वर बड़े इत्मीनान से चमड़े का बक्सा हाथ में लटकाए स्टेशन के दरवाजे से न होकर उस ओर बढ़ा जिस ओर देसौरा गांव की गुमटी पड़ती थी। जग्गू ने लपककर बक्सा सहित उसकी कलाई पकड़ ली। ठीक उसी समय फर्स्ट क्लास के डिब्बे से एक नेतानुमा बाबू चिल्लाता हुआ निकला, और जग्गू की तरफ दौड़ा। जग्गू ने उस बाबू की ओर देखा ही था कि मुनेश्र अपनी कलाई छुड़ाकर भाग खड़ा हुआ। बक्सा जग्गू के हाथ में रह गया। जग्गू और मुनिदेव मुनेश्वर को पकड़ने के लिए दौड़े, तब तक वह नेतानुमा बाबू 'चोर-चोर' चिल्लाता हुआ वहां आ पहुंचा। लोगों ने जग्गू को ही चोर समझकर पकड़ लिया। मुनेश्वर तब तक प्लेटफार्म के परे अंधकार में विलीन हो चुका था। जग्गू ने लाख समझाने की कोशिश की लेकिन शोरगुल के बीच उसकी सफाई उसीके विरुद्ध सबूत बन गई।

गाड़ी स्टेशन पर रोक दी गई। जग्गू को पकड़ने वालों की गवाही ली गई, स्टेशन मास्टर की गवाही ली गई, फर्स्टक्लास के बाबू का बयान लिया गया, और गाड़ी के साथ चलने वाली रेलवे पुलिस ने जग्गू के हाथ में हथकड़ी डालकर अपने साथ ही गाड़ी में बैठा लिया। जग्गू लाख सफाई देता रह गया कि उसने चोरी नहीं की है, लेकिन किसीने उसकी बात नहीं सुनी। अचानक ही यह सारी घटना घट गई। क्या से क्या हो गया।

दस बजे की गाड़ी स्टेशन से चल पड़ी—खटखटाती-छकछकाती। जग्गू खामोश होकर बैठा रहा और खिड़की से बाहर अंधकार में देखता रहा—गहरा काला धब्बा, नीला, कहीं-कहीं पर दूर हल्की रोशनी, छोटा

क्षणिक धब्बा तेजी से गुजरता रहा, और जग्गू उन सबको एकटक देखता रहा। बीच-बीच में इंजिन चीख पड़ता—भयावने ढंग से—लेकिन जग्गू अंधकार में देखना बंद नहीं करता। थोड़ी-थोड़ी देर पर हुड़ाक् से कोई गुमटी अंधकार के ठोस टुकड़े की तरह नजर से निकल भागती। जग्गू फिर भी अन्धकार में देखता रह जाता।

२२

जग्गू को छह महीने की सख्त सजा हो गई। मुजफ्फरपुर जेल शहर के बाहर स्थित थी। जग्गू उसी जेल में बन्द कर दिया गया। उसकी चेतना जाती रही। जो कुछ करने को उससे कहा जाता, चुपचाप उस काम में वह जुट जाता। एक भयंकर डाकू सभी कैदियों का 'मेट' था। उसीके जिम्मे निरीक्षण का कार्य सुपुर्द था। सभी कैदी उससे भय खाते, उसकी खुशामद करते और उसकी सेवा में जुटे रहते। जग्गू भी उसके अधीन था। लेकिन जग्गू ने कभी महसूस भी नहीं किया कि वह 'मेट' भयंकर है, बदमाश है या डाकू है। वह चुपचाप अपने काम में जुटा रहता। जग्गू थोड़ा पढ़ा-लिखा था, इसलिए सभी कैदी उसकी इज्जत करते; उसे मौनी बाबू कहकर पुकारते। जग्गू इस तथ्य से भी अनभिज्ञ-सा रहता। वह कभी-कभी अखबारों में पढ लेता कि देश में क्या कुछ हो रहा है—गांवों के सुधार के लिए स्कूल खोले जा रहे हैं, स्कूलों को बुनियादी स्कूल में बदला जा रहा है, बांध बनवाया जा रहा है, नदियां बांधी जा रही हैं, सड़कें पक्की की जा रही हैं, गावों में बिजली उपलब्ध की जा रही है···और तब जग्गू के मस्तिष्क में उसकी पुरानी छोटी-सी गुमटी उभर आती···वैसी ही नीरस, उदास, जड़ और एकाकी ! जग्गू स्पष्ट देखता कि गुमटी ज्यों की त्यों है, रेल की पटरी वैसी ही बनी है, और उस गुमटी के आसपास के तमाम लोग भी तन-मन से वैसे ही है, जैसे पहले थे···

और जब अनुराधा या शारदा की याद आती, तब उसका सिर चक्कर खाने लगता। उन लोगों की स्थिति की कल्पना करते ही जग्गू की आंखों के

आगे अंधेरा छा जाता। एक से एक भयंकर, वीभत्स और हृदय-विदारक दृश्य अनचाहे ही उभरकर उसके सामने स्पष्ट हो उठते, और फिर अंधकार में तिरोहित हो जाते।

पांच महीने बाद ही जग्गू जेल से रिहा कर दिया गया। जेल के बाहर निकलते ही जग्गू को ऐसा लगा, जैसे अब वह सचमुच ही निहंग हो गया। फिर भी जाने क्यों, वह सीधा स्टेशन आया और वहां से अपने गांव का टिकट कटाकर गाड़ी में बैठ गया। भयावह तस्वीरों और विचारों से जूझने में ही उसका रास्ता कट गया।

संयोग ऐसा कि मुनिदेव प्लेटफार्म पर ही खड़ा था। नजर उसपर जा पड़ी। दोनों का मिलन भी अजीब ढंग से हुआ। मुनिदेव दुःख, ग्लानि और हर्ष के अतिरेक से घुटा जा रहा था। जग्गू आशंकाओं और जिज्ञासा के उफान से बेचैन हो रहा था। दोनों ने एक-दूसरे से कोई विशेष बात नहीं की। स्टेशन के बाहर आकर जग्गू ने देखा कि बाजार में दो-तीन हैण्ड-पाइप लग गए थे, सड़क पक्की बन गई थी और सड़क के एक ओर बिजली के खम्भे गाड़े जा रहे थे। मुनिदेव ने जान-बूझकर विहंसते हुए कहा—"इधर इस इलाके में काफी काम हुआ है। अब तो यहां बिजली भी आ जाएगी। कुछ गावों का तो नक्शा ही बदल गया है!"

जग्गू ने वेदना-मिश्रित मुस्कान से मुनिदेव को देखा, जैसे पूछना चाह रहा हो कि तन का हाल-चाल रहने दो, मन का हाल-चाल क्या है? लेकिन जग्गू कुछ बोला नहीं। बाजार में कई जान-पहचानवाले मिले। जग्गू सबसे विहंसकर मिला। सबको वह वेदनायुक्त प्रश्नवाचक दृष्टि से देखता—बोलता या पूछता कुछ नहीं।

आखिर मुनिदेव ने ही बात छेड़ दी—"अच्छा किया, जो जमीन-जायदाद नहीं बेची! अब तुम खेती-गृहस्थी में जुट जाओ!"

जग्गू ने मुनिदेव की ओर कातर दृष्टि से देखा। मुनिदेव उस दृष्टि को सह नहीं सका, और उसने आंखें नीची करते हुए कहा—

"जो होना था, सो हो चुका!"

"क्या हो चुका?" जग्गू ने कृत्रिम गंभीरता से पूछा। मुनिदेव किंचित् सकपकाकर बोला—

"यही, नौकरी छूटने की बात कह रहा हूं।"

"शारदा कहां है ?"—यह प्रश्न सुनते ही मुनिदेव घबरा उठा, और अपनी घबराहट छिपाने के उद्यम में, वह उपेक्षा से बोला—

"शारदा ? वह अपने किये का फल भोग रही है !"

"क्या मतलब ?"

"भई, बात यह हुई कि..."

"अरे जगनारायण बाबू !"—मुनिदेव अभी असमंजस में ही पड़ा हुआ था कि राघव आ पहुंचा—"कब आए ? खबर भी नहीं दी ?" राघव उल्लासपूर्वक, जग्गू के दोनों कंधों को पकड़कर झकझोरता हुआ बोला। कोई और अवसर होता तो मुनिदेव झल्ला उठता लेकिन उस समय राघव का आना मुनिदेव को देवदूत के आने जैसा लगा।

"सजा पूरी हो गई तो चला आया !"—जग्गू ने हंसकर कहा, लेकिन उसकी हंसी में वेदना सजीव हो उठी थी।

"कैसी सजा ? गलत बात। मैं जानता हूं कि चोरी किसने की। लेकिन अफसोस, मेरी किस्मत में हाथ-मलने के सिवा और कुछ नहीं। दिन-दहाड़े यहां लूट और हत्याकांड मचे हुए हैं, लेकिन कोई देखनेवाला नहीं। तुम समझते होगे कि गुरुजी के घर में अपने-आप आग लग गई ! लेकिन वह सही नहीं है। अनुराधा को जलाकर मार डालने के लिए लोगों ने आग लगा दी, और अनुराधा बेचारी उसमें तड़प-तड़पकर मर गई। यह क्या आदमी का काम है ? अरे, ये गांववाले आदमी नहीं—जानवर हैं जानवर ! बल्कि जानवर से इनकी तुलना करना जानवरों को अपमानित करना है ! यह तो खैरियत हुई कि शारदा यहां से भाग निकली, नहीं तो..." राघव ने अपनी बात पूरी भी नहीं की थी कि जग्गू चुपचाप उठ खड़ा हुआ। उसके चेहरे पर कोई भाव नहीं था, आंखें स्थिर थीं, होंठ खुले हुए थे और अंग-प्रत्यंग यंत्रवत् हो रहे थे। मुनिदेव घबरा उठा। उसने दांत पीसकर राघव की ओर देखा, और फिर जग्गू की बांह पकड़कर बोला—

"कहां जा रहे हो ? बैठो न !"

"कहीं नहीं जा रहा हूं। यहीं हूं। जाऊंगा कहां ?" स्वप्नवत् स्वर में जग्गू बोला, और दुकान से बाहर निकल आया।

शाम हो चुकी थी। बिजली के खंभे जमीन में निष्प्राण गड़े थे, जो बड़े मनहूस-से लग रहे थे।

इसके बाद बहुत दिनों तक···न जाने किस उम्मीद में···जग्गू दिन-भर, स्कूल के अहाते में बैठकर बच्चों को देखा करता। उन्हें खेलते-कूदते, पढ़ते-लिखते देखकर जग्गू को न जाने क्यों एक अनिर्वचनीय आनन्द की अनुभूति होती। उन्हें देख-देखकर वह सब कुछ भूल जाता—गुमटी, गुमटी में घटित घटनाएं, सद्यःस्नाता शारदा का रूप, यहां तक कि अपना अस्तित्व भी, और यदि कभी कोई बच्चा या बच्ची उसके पास चली आती, तो वह महसूस करता कि जैसे भगवान ही उसके पास चले आए हों। वह विभोर होकर उन लोगों से व्यर्थ की बातें करता, उनके साथ हंसता-बोलता और बीच-बीच मे उन लोगों से रूठ जाने का भी अभिनय करता। बच्चे तालियां बजा-बजाकर नाच उठते तो वह भी हंसने लगता···उसके घर में जहां शारदा बैठा करती थी, वहां वह घंटों बैठा रह जाता, उसमें थोड़ा भी साहस नहीं था कि शारदा के बाबत कुछ सोच-विचार करे—बस, वह प्रतीक्षा में डूबा रहा।

शाम होते ही वह गुमटी के निकट सड़क के पुल पर बैठ जाता और वहीं से गुमटी को निरुद्देश्य घंटों निहारा करता। गाड़ियां आतीं, चली जातीं, रोशनी के छोटे-बड़े टुकड़े बिजली की गति से उसके सामने से गुजर जाते, खट्-खटाक्, खट्-खटाक् की भयंकर लय जमीन को कंपाती हुई आती और क्षण-भर में दूर अंधकार की असीमता में खो जाती। लेकिन छोटी-सी गुमटी ज्यों की त्यों गुम-सुम खड़ी रहती। अनुराधा की सरलता और संवेदनशीलता मूर्तिमान हो उठती। जग्गू उसे देखकर तादात्म्य-भाव में विभोर हो उठता। कभी-कभी तो अकारण ही उसकी आंखों से आंसू की धार बंध जाती। गुमटी की तस्वीर विकृत होकर कांपने लगती। मूर्तियां डोलने लगतीं—जैसे अभी बोलेंगी। जग्गू की आखें बंद हो जातीं, उसके होंठ कांपने लगते। आस्था और आशा की आभा से जग्गू पुलकित हो उठता।

गांववाले उसे पागल कहते। बिसेसर सिंह के शब्दों में वह 'बेचारा' था। लेकिन जग्गू के लिए इन बातों का कोई अर्थ नहीं था। गुरुजी के घर

की माटी की दीवारें रक्तिम और छिन्न-भिन्न हो गई थीं। उनमें जगह-जगह दूब उग आई थी। रात के अंधेरे को भेदती हुई किसीकी स्वर-लहरी हवा में काप उठती—

जेहि बाटे कृष्ण ऽऽऽ गइले···
दूबियो ज ऽ न ऽ मि ऽ गइले, आहो-आहो कि ऽऽऽ
सेही देखी जियरा मोरा फाटे रे ना की ऽऽऽ

और तब जग्गू की आंखों से आसुओं की धारा प्रवाहित होने लगती।

□□□

शिवसागर मिश्र

शिवसागर मिश्र हिन्दी-जगत् का एक सुपरिचित नाम है। सहज गम्भीरता और शालीनता के प्रतीक मिश्र जी का जन्म ६ मार्च, १९२७ को बिहार के समस्तीपुर जनपद के श्रीरामपुर ग्राम में हुआ। विद्रोह और बलिदान की धरती पर जन्म लेने का फल हुआ कि किशोरावस्था मे ही वह स्वधीनता-आन्दोलन में कूद पड़े। परिणामस्वरूप उन्हें न केवल जेल की सजा भुगतनी पड़ी, बल्कि बिहार राज्य से निष्कासन का दंड भी मिला। हिन्दू विश्वविद्यालय मे शिक्षा-दीक्षा पूर्ण करने के बाद उन्होंने राजनीति की बजाय साहित्य को ही अपनाना श्रेयस्कर समझा। सन् १९५० से अनेक पदों पर कार्य करते हुए वे साहित्य-सृजन भी करते रहे।

२३ वर्षों तक आकाशवाणी मे काम करने के बाद इन्होने सन् १९७३ मे भारत सरकार के रेल मंत्रालय में राजभाषा निदेशक का पद ग्रहण किया। श्री शिवसागर मिश्र की अटूट निष्ठा और लगन का ही सुपरिणाम है कि राजभाषा हिन्दी के प्रयोग-प्रसार में रेल मंत्रालय भारत सरकार के समस्त मंत्रालयों मे अग्रणी है।